



# भूमिका.

इस चतुर्गति रूप संसार में परिभ्रमण करते हुए अनन्त-काल जीवों को हुआ, परन्तु कुछ कार्य की सिद्धी नहीं हुई, अर्थात् शारीरिक मानसिक दुःखों से छुटकारा नहीं हुआ. उन दुःखों से जब छूटेंगे कि जब मोक्ष में दाखिल होंगे. मोक्ष में दाखिल होने के लिये चार कारण मिलने चाहिये. यह चार कारण भगवन्त ने उत्तराध्वयन अध्वयन तीसरा में मिलाने दुर्लभ फलमाये हैं. एक तो मनुष्य का भव, दूसरा मृत्यु का सुनना, तीसरा अज्ञानता का ज्ञाना. चौथा संयम में धीरे पराक्रम का फोड़ना. मो है भाइयों! इन चार कारणों में तीसरा कारण अज्ञानता का ज्ञाना बहुत ही दुर्लभ श्री मृत्यु से फलमाया है जैसे कि ( सधदा परम दुःखदा ) इति चरुनात्. देखिये अज्ञानता इतलिये दुर्लभ है कि बहुत से मनुष्य साखंड में पड़ जाते हैं इस पंचम काल में कई मत्र मतांतर जैन मत्र में निकले हैं वे कई तरह की मरुपला भगवन्त के मार्ग से चलते कर रहे हैं उनके मत्र की और सच्चे मार्ग की ओ-लक्ष्य जरूर करना चाहिए क्योंकि सत्र असत्र का जानकार होगा वही सत्य का धारण करेगा तथा असत्र को त्यागेगा, इस मत्र असत्र का जानपणा होने के लिये श्री जी २२ मनु दास की मन्त्र से ७ मत्र तो पथिये में पूरे उन्होंने भूट उतर की पुनर्ले तराई उम भूट व मगट करने के लिये इस पुनर्ले की बहुत ही परिश्रम करके मनु पंडित मापन श्री

सुरार्गीलालजी का बनाया हुआ इस पुस्तक का कच्चा खरड़ा  
 तो उन्होंने परठा उमसे नवाशहर के भाइयों ने तयार करा  
 है परउने का डाल मस्ताबना में लिखा है वहाँ से ज्ञात हो  
 जायगा. इस विषय की दो पुस्तकें अगाड़ी भी जैन  
 भाँनासर की तरफ से मसिद्ध हो चुकी हैं परन्तु इस में  
 से बहुत ही ज्यादा करके विस्तार सहित उत्तर सम्भ्राया  
 क्योंकि महाराज श्री तेरेवाधियों के मन के पूरे जानकार हैं और  
 स्वयं तथा परमत्त के भी पूरे ज्ञाता हैं इसलिये इस पुस्तक  
 की प्रशंसा कहीं तक की जावे. पुस्तक देखने से स्वयं  
 हो जायगा यह पुस्तक मेरे को सुभ्रावक श्री मेघराजजी  
 नवाशहर बालों के पास से प्राप्त हुई इसलिये उनको  
 बाद देता हूँ. और यह पुस्तक कहीं २ अघूरी थी जिस  
 में महाराज साहब का परठा हुआ खरड़ा नवाशहर से  
 कर मंगूण करती है ताहम भी कोई २ बात खरड़े में  
 मिली निमको मैंने अपनी अल्पवृद्धि के अनुसार लिखि  
 भूज हुई हो तो ( मिच्छामि दुक्कं, ) देता हूँ.

और इस पुस्तक का छपाने का मतलब सिर्फ यह है  
 इसको देखकर सभे मार्ग की ओलखान हो और मिथ्या  
 की गंदा हो वह निवर्तन हो, फरु इसके लिये यह  
 दिया है. किंतु गणदेव बढ़ाने के लिये नहीं क्योंकि बीतराम  
 का मार्ग ही गणदेव हीराने का है. सो पाठकों से निवेदन है  
 कि गणदेव पढ़नाम छोड़ करके अमलीकन करोगे तो बहुत  
 ही गुल का कारण होगा और दिन का करने हुए भी बुद्ध  
 बन्धन होने तो उमका बनाय ही क्या है. ताहम भी जिस

दिल दुखे उससे ब्रताता हूं; समदृष्टि का लक्षण यही है. इस पुस्तक के लिखने में भीनासर स्कूल के हिन्दी मास्टर श्रीयुत पं० कालिकामसादर्जा शर्मा ने सहायता दी इसलिये उनका धन्यवाद देता हूं ।

भीनासर  
१५-११-१५

श्रीसंयका हितेच्छु—

कनीराम बांडिया

इस पुस्तक को जयश्या सहित पढ़े, दीपक के चनाले में नहीं पढ़े. इस पुस्तक के प्रक सुधारने में भूल हुई हो तो मि-  
स्त्रामि दुकदं ।

प्रसिद्धकर्त्ता.





संस्कृत-  
लेखक-  
दीवानं, (श्रीमान्)

ॐ नमः सिद्धम् ॥ ॐ जिनाय नमः ॐ अर्द्धिते नमः ॥

## अथ प्रश्नोत्तर प्रदीपिका ग्रंथस्य प्रस्तावना प्रारम्भः

विदित हो कि संप्रतिकाल में बहुत लोग श्रीमान् वर्द्धमान् स्वामी सुधर्म स्वामी के रचे हुए सत्यागम का रहस्य यथावत् न जानके विपरीत दृष्टि से शुद्ध सरल अर्थ छोड़ के मिथ्यार्थ की कल्पना कर भोले लोगों के हृदय में मिथ्या कल्पना प्रवेश कर देते हैं. इससे बहुत भोले भाई उन लोगों के पक्षपात में ऐसे बंध जाते हैं कि वह सत्यासत्य का कुछ भी निर्णय नहीं करते हैं केवल उपदेशक के कथन को ही सत्य मान लेते हैं. न वह किसी जैनग्रन्थ सिद्धांत के ज्ञाता न्यायवादी के सन्मुख हो कर ही सत्यासत्य निर्णय करते हैं उन्हीं सर्व मित्रों के लिये यह सूचना है तथा प्रार्थना है कि हे प्रिय मित्रों ! तुम पक्षपात छोड़ कर श्रीमान् वर्द्धमान् स्वामी के वचनों को यथार्थ भाव से श्रद्धायुक्त मान्य करो इसमें ही तुम्हारी आत्मा का हित है. इन प्रवचन सिद्धांत की यथावत् श्रद्धा उपरांत अधिक कोई लाभ नहीं है और इन अरिहंत देव प्रणीतागम का मिथ्याभाषण करने के बराबर अधिक कोई पाप नहीं है इससे ही सर्व भव्य पुरुषों को यह सूचना है कि सत्यासत्य को बिना निर्णय किये अपने मन कल्पित अर्थ जैन सिद्धांत का करना अत्यन्त दूषित कर्म है और संसार में जैन धर्म की अवनति का कारण है और जिससे अन्यधर्मावलम्बी पुरुषों को भी इस जैन धर्म की उपहास्यता, उगा,

निंदा करने का अवसर प्राप्त हो सका है कटिये ये कितना अधर्म है. और अत्यन्त संसार वृद्धि करने का कारण है इस समस्त वार्ता को ध्यान में रखकर सर्व भव्य जनों को अमत्य शास्त्रार्थ नहीं करना चाहिए, यह सुबचन परमहितकारक है. विशेष करके इस सूचना का प्रयोजन यह है कि इस पंचम काल में संवत् १८१५ विक्रमी में वाइस समुदाय की एक समुदाय के श्री पूज्य रघुनाथ जी स्वामी के शिष्य भीषमजी की ऐसी श्रद्धा हुई कि मरते जीव को बचाने में पाप है तथा गरीब दुखी भूखे को करुणा भाव से दान में एकांत पाप है जब गुरुजी ने शिष्य भीषम जी की यह श्रद्धा समझी तब उनको उपदेश दे समझाया परंतु भीषम जी ने श्रद्धा गुरु जी की वह हित शिक्षा न मानी. तब रघुनाथजी स्वामी ने उनको अपने गच्छ से अलग कर दिया गच्छ से निकलने के पश्चात् एक नवीन तेरापंधी मत निर्माण किया. मरते हुए जीव को बचाने में एकांत पाप होता है १ तथा साधु के सिवाय अन्य किसी को दान देने में भी एकांत पाप होता है ऐसी २ बातों की प्ररूपणा जैन सिद्धांत के विरुद्ध मनके मते कर करने लगा. और धीमन्महावीर स्वामी ही को लक्ष्मणन में चूका कहने लगे जिनका कि यह जैन शासन चतुर्विध संघ प्रचलित है उन परमेश्वर को चूका कहा इनके उपरांत अनेक बोलों को सिद्धांत विरुद्ध प्ररूपण कर भोले लोगों के हृदय में अपने कपोलकल्पित मत की श्रद्धा स्थापन करने लगे. जिससे कि अनेक सीधे सादे भोले जीव उनके मतानुयायी बने. अबतक तो इनके मत की प्ररूपणा इस्त लिखित पुस्तकादि से होती रही तन्पश्चान् जब भीषमजी

के चाँये पाट पर जीतमलजी तेरह पंथियों के पूज्य हुवे उन्हों ने भ्रम विध्वंसन नाम ग्रन्थ रचा और भी कई ग्रन्थ स्वकपोल कल्पित रचे गये. उनमें भ्रम विध्वंसन नाम ग्रंथ छप कर प्रगट हुवा है और भी कई ग्रंथ रचे गए हैं अब एक बार के प्रस्ताव संवत् १९५९ में श्री श्री श्री तपस्वी हुकमीचंद्रजी महाराज के सम्प्रदाय के श्री श्री श्री लालजी महाराज के सम्प्रदाय के आझानुसारी स्वामी श्री मोतीलालजी जुवारीलालजी ने चातुर्मास्य राजपूताना-जोधपुर में किया था वहाँ ही पर उक्त जीतमलजी रचित भ्रम विध्वंसन ग्रंथ स्वामीजी जुवारीलालजी के दृष्टिगोचर हुआ.

उस ग्रंथ की रचना देखकर स्वामीजी सोचने लगे कि आश्चर्य है कि जीतमलजी ने जैन सिद्धांत के सत्यार्थ को उलट पलट कर दया को काटने ही के लिये इतनी चेष्टा क्यों की. ग्रंथ देखकर विचारने लगे कि ऐसे दयारहित ग्रंथको जो कोई सम्पूर्णतया सत्य मानता होवे उस से इस विषय में अवश्य कुछ प्रश्न करने चाहिए. इत्तफाक उसवक्त जोधपुर में तेरह पंथियों के पूज्य डालचंद्रजी का भी चातुर्मास्य यहाँपर था तब स्वामिजी श्री जवाहरलालजी ने अपने चाँस सम्प्रदाय के श्रावकों को कहा कि यदि तेरह पंथियों के पूज्य डालचंद्रजी अपना मतका भ्रम विध्वंसनग्रंथके चंद्र सवालों का उत्तर दें तो हम उनसे चर्चा यानी शास्त्रार्थ करने को तैयार हैं तब हम भी इन सम्प्रदायके श्रावकों ने सोचा कि अपना निर्मल दयामयी जैनधर्मसे विरुद्ध भ्रम विध्वंसनादिक ग्रंथ रचे. और अब वह छपके प्रसिद्ध होने से अपना दयामय धर्मरूप चंद्रको



भ्रमविध्वंसनादि ग्रंथ राडूरूप निर्मल धर्म का ग्रसने वाले प्रकट हुये हैं तो इनके ग्रसने से धर्म रूप चंद्र तो ग्रसनहीं सक्रा परंतु कितनेक जैनदर्शन से अन्यदर्शन वाले या स्वदर्शनी जैनी भोले भाइयों को यह ग्रंथ देखने से भ्रमवृत्तपन्न होवेगा. तो जरूर तेरह पाँचियों के पूज्य से उनके भ्रमविध्वंसन ग्रंथके चंद्र सबाल पूछने चाहिए ऐसा विचार के हम श्रावक लोगों ने स्वामीजी श्री जुवारीलालजी से सात प्रश्न धारन करके एक इशतहार यानी ( नोटिस ) प्रगट किया वो यह है ॥

बाइस समुदाय के श्रावकों को प्रश्न लिखा कि इनप्रश्नों के उत्तर मविस्तर सूत्रार्थ के पाठ साहत तुम्हारे पूज्यजी से पूछ करके लिखो—प्रश्न ७ निम्नलिखित है.

१—श्रीमन्महावीर भगवंत को दीक्षा लेने के अन्तर छद्म स्थपन में चूके बतलाते हो सो पाठ दिखलाओ ?

२—साधुके सिवाय दान में एकान्त पाप कहते हो सो पाठ दिखलाओ ?

३—४२ दूषण टाल अहार के भोजी प्रतिमाधारी उत्कृष्ट श्रावक नपस्त्री को ४२ दूषणशल कर देने वाले को एकान्त पाप कहते हो सो पाठ दिखलाओ ?

४—साधुजी महाराजको किसी दुष्टने फांसी दी दयावान ने धर्म युद्धि से खोलदी, तुम उन दोनों को पाप कहते हो और अद्वैते हो सो पाठ दिखलाओ ?

५—गाँवों से बाड़ा भराहुवा है जिममें किसी दुष्टने लाय जगादी किसी दयावान ने कियाइ खोल बाहिर निकालदी

और गाएं बच गईं. तुम उन दोनों को पाप कहते हो सो पाठ दिखलाओ ?

६-असंजनी पोमणिया १५ वां कर्मदान कहते हो और सिखलाते हो सो पाठ दिखलाओ ?

७-असंयनी का जीवना नहीं बाँधना कहते हो सो पाठ दिखलाओ

इन प्रश्नों के उत्तर जल्दी लिखो बाकी बहुत प्रश्न हैं ॥

तुम्हारा मत अर्थात् भीषमजी का चलाया मत मूत्र विरुद्ध जैन सिद्धांतों से प्रगट दीखता है सो तुम्हारे पूज्यजी न्पाय से चर्चा यानी शास्त्रार्थ करे तो हमारे साधुजी महाराज चर्चा करने को तैयार हैं. स्थान तीसरा और निष्पन्न विवेकी समझदार तीसरे मतके मध्यस्थ मांजिन मुर्हर होवे ताकि गलबा न हो सके चर्चा जरूर होनी चाहिये. ॥ १ हस्तकी मियाद दी जाती है क्योंकि चउमासे के दिन थोड़े रहे हैं जो इस मोकेपर चर्चा तुम्हारे पूज्यजी नहीं करेंगे तो हमलोग तो समझते ही हैं फिर और सब लोग भी तुम्हारे को भुंटा समझेंगे ॥ संवत् १८५८ कार्तिक सुदी २

२२ सम्प्रदाय की तर्फ से

मुणांत अमरदास भंडारी किसनमल

यह ऊपर लिखित इशतहार हम श्रावक लोगों ने छपवा के बाँटे और कई एक इशतहार प्रगट करने के लिये दीवाल्लों ( भीनों ) पर चिपका दियेगये और एक इशतहार २२ सम्प्रदाय के श्रावक फतेराजजी मृता तरेपाथियों के श्रावकों को

देने लगे। परंतु उन तरेपंथियों के भावकों ने फतेरराजजी से तो यह इशतिहार नहीं लिया—और एक भीतसे उल्लाह लाये और उम इशतिहार को पाँच के प्रश्नों के उत्तर तो नहीं लिखे और लोगों को दिखलाने रूप एक पत्र लिख के कितनेक तरेपंथि धारक मिलके पत्र लेके आवाकी हवेली कि जहाँ ये स्वामी मांश्री मोतीलालजी जुवारीलालजी थे वहाँ पर आये और अपना लिखा हुआ पत्र धारक लोगों को सौंप गए यह पत्र यह है जैसा उन्होंने योग्य वा अयोग्य लिखा है वैसे अक्षर हम यहाँ पर लिखने हैं— ॥

धीनिकराजो जयति ॥

नेहमापंथी समुदाय धारकों को तन्दिने पार्श्व टॉल के धारकों को इतिहास दीजानी है कि तुम लोगोंने भोले अनजान लोगों को बहकाने और अपनी बड़ाई दिखलाने के लिये जो अनुचित और अमर्याद मान प्रश्नों का इशतिहार प्रगट किया उसका उत्तर यदि तुमको चाहिये या तो यह इशतिहार हमारे पास ले आनाया मां हम लोगों के पास न आकर खुदके से दूसरे लोगों के महानों पर चिपका दिया परंतु हमारे किसी मित्रने हम इशतिहार को हम लोगों के संबंधित मानकर भीत पर से उखड़ करके हम को लाकर दिखलाया तो हम लोगों ने परमार्थ्य महाशक्त्यादिनाम में निवेदन किया कि महाशक्त ने आज्ञा की कि इन प्रश्नों का उत्तर तो हम गुणों को भोलेपन अर्थात् मरुत है परंतु हम इशतिहार से यह मरुत जाना है कि वरुण करना भी चाहन है मां यदि वरुण इतने हीत का मरुत है तो मरुत से ही महाशक्त का ज्ञान था

फिरभी उनको बारंबार चर्चा चर्चा ऐसा कहने की जगह न रहे ॥ १ हफ्ते की मियाद लिखी सो हमतो कल परसों जब इनकी इच्छा होवे तभी तैयार हैं मियाद वह चाहता है जो उत्तर देने में असमर्थ हो ॥ और तीसरे मनुष्य के मकान पर तीसरे मत के निष्पन्न मोजि<sup>न</sup> मध्यस्थ मुकर्रर होने की भी लिखी सो बहुत ठीक है हम थावक लोग तुम्हारी सभी शर्तों के लिये मंजूरी देते हैं ॥ मकान उदेमंदिर की और मध्यस्थ स्वामीजी गणेशपुरीजी कविराजाजी श्रीमुरारीदानजी भंडारीजी श्रीदणवंतचंदजी और इनके सिवाय और भी जो कोई जैनशास्त्र का अभिज्ञ निष्पन्न हो किया जावे ॥ तुम्हारे साधुजी को चर्चा करनी होतो वेशीघ्न करें क्योंकि चातुर्मास्य के दिन बहुत अल्प रह गये हैं ॥ और श्रीभगवंत महावीर स्वामी के भापे हुए सूत्र सिद्धांत के अनुसार इस दुःखम पंचम कालमें यथार्थ धर्मका उपदेश करने वाले परमपूज्य महामुनि श्रीस्वामी भीमजी महाराज के कथन को बिना विचारे एकाएक जैन सिद्धांतों से विरुद्ध लिखने से तुम्हारी तुच्छता पाई जाती है और तुम्हारे लेख से यहभी पाया जाता है कि तुम्हारी मनसा फसाद करने की है इसलिये तुमको लिखा जाता है कि चर्चा के लिये जो दिन नियत करो उसके पहिले हमको इच्छिता दो के बलवा न होने का बंदोबस्त मुनासिब कराया जावे ॥ संवत् १९५६ रा कार्तिक सुदी ६ गुरुवासरे ॥

द. भंडारी किसनमल ॥

यह पत्र हम वाईस संप्रदाय के थावकों को देके ऐसा कहगए कि जैसा मुनासिब होवे बनाही इसका उत्तर हमको

लिखके भेजदेना- तब यह पत्र हम वाईस संप्रदाय के भावकों को पढ़ने से बड़ा आश्चर्य हुआ कि हमने जो प्रश्नों का इरित-हार प्रकाशित किया वह सर्व प्रश्न उनके ग्रंथ भूमविध्वंसन में मौजूद हैं और हमारे गुरुजी ने उस ग्रंथसे उधारके अर्थात् निकाल के ही हमको धराये हैं तो फिर हमारे तरेपंथी भोले मित्रों ने ऐसा क्योंकर लिख दिया कि अनुचित और असंबद्ध सात प्रश्नों का इरितहार प्रगट किया क्या इन मित्रों ने अपना परम पूज्य जी का बनाया भूमविध्वंसन नहीं पढ़ा शायद भूमविध्वंसन को वांचा तो होगा परंतु अब फाँसी से साधुको बचाने में पाप-और मरती गायों को बचाने में पाप ऐसी दयारहित अपनी गुरुजी की श्रद्धा लेकरसे लज्जायुक्त हो के लिख-दिया होवे कि यह प्रश्न अनुचित और असंबद्ध हैं तो उन भिय मित्रों को विचारना था कि अबतो गुरुजी की श्रद्धा पुस्तकों में छप गई वो छानी कैसे रहै सकै-और फिर हम यह सोचने लगे कि हमारे तरेपंथी मित्रों को अपने गुरुजी की श्रद्धा अनुचित और असंबद्ध मालूम हुई होवे तो फिर हमारे भियमित्रों का क्या स्वार्थ है कि जो ऐसी अनुचित और असंबद्ध श्रद्धा में बंधे हुये हैं और अपने गुरु भीषमजी को श्रीभगवान् महावीर स्वामी के भापे शास्त्रों के यथार्थ भाषणे वाले कहते हो तो फिर श्रीमान् महावीर स्वामी को भीषमजी चूके क्यों कहे या श्री भगवान् का सत्यशास्त्र कि जिसमें जीव बचाने में धर्म है ऐसे मन्यशास्त्र से उलट्टीप्ररूपणा क्यों करी कि जीव बचाने में पाप है परंतु खेर अरु बरु चर्ना हावेगी तो सत्यासत्य का पयाय मालूम हो जावेगा ऐसा विचार के एक पत्रा हम भावक

लोगों ने लिख के मोलोन अमरदासजी पट्टवा चतुरनाथजी आदि अनेक श्रावक लोग मिलके भंडारी किसनमलजी की हवेली पर गये कि जहां उनके पूज्य जी उतरे हुये थे उनके पूज्य जी को वह पत्र सुनाके उनके श्रावक कृष्णमलजी आदिको दिया.

नोट-१-इन पत्र की असली नकल नहीं मिलने से नहीं करासके म-कता.

पत्र दे उनको अमरदासजी ने कहा कि एक मकान आपने उद्दे मंदिर के बास्ते कहा वह ठीक नहीं है क्योंकि जोधपुर में क्या मकान की तंगई है सो उद्दे मंदिर में जावे और फिर उद्दे मंदिर दूर भी बहुत है और चर्चा का मामला है एक दिन दो दिन चार दिन तक भी होवे तो प्रति दिन संतों को और सभा मध्यस्थों को आन जाने में बहुत देर लगे और संतों को पुस्तकें ठोक के ले जाने लाने की भी तकलीफ होवे इस बास्ते जोधपुर में आवा की हंगेली या न्याय का लोहरा या और कोई नजीक पर ठीक मकान होवे सो विचार के कही और गणेशपुरीजी को आपने मध्यस्थ बहराये सो वह आपके तफ्दीदार होने से हमको मध्यस्थ मालूम नहीं होते हैं बाकी मध्यस्थ आपने लिखे वह मंजूर हैं और हमारी तर्फ से आप के लिखे सुजब जैन शास्त्र के अभिज्ञों में नो सुगं साहब श्री जगदामलजी पलीविजे जो और दोनों तर्फ न्याय को बोलने में कविराज जी श्री सुगरीदानजी इनको हम ने मध्यस्थ मुकर्रर किये हैं अब मकान नजीक का विचार कर कही जो चर्चा का दिन मुकर्रर किया जावे निमित्त वरे.

पंथी श्रावक भंडारी कृष्णमलनी आदि कहने लगे कि हमारी तरफ से गणेशपुगीजी तो मध्यस्थों में मुकर्रर रहेंगे, और आपकी तरफ से गुरु साहब जवारमलनी मणीविजेजी को हम मध्यस्थों में मुकर्रर नहीं करें तब मोणोत अमरदासजी ने कहा कि जो आपने अपने पत्र में लिखा कि जैन शास्त्र का अभिन्न होये उसको मुकर्रर किया जावे तो फिर तुम्हारे हमारे संप्रदाय के सिवाय तीसरे संप्रदाय के मध्यस्थ जवारमलनी मणीविजेजी गुरु साहब के सिवाय कौन ऐसा जैनशास्त्र का अभिन्न है सो मध्यस्थों में मुकर्रर किया जावे आप अपने लेख पर क्यों नहीं कायम रहते हो इत्यादि बहुत कृद्द कहा परंतु मेरेपंथियों के श्रावकों ने दोनों गुरु साहब को मध्यस्थ मंजूर नहीं किये तब मोणोत अमरदासजी ने कहा फिर आप अपने लेख पर ही कायम नहीं रहें तो ऐसा करो कि कविराजजी गुरारीदानजी को आपने मध्यस्थ मुकर्रर किये हैं और हमने भी उन्हीं को मुकर्रर किये हैं तो आप और हम दोनों तरफ के श्रावक मिलके चलिये जो कविराजजी ने अपनी इकीकत कहेदेवे निसपर कवीराजजी कहे वोना महान मुकर्रर किया जावे और यह कहे वोही मध्यस्थ मुकर्रर और जो वह कहे वोही दिन और टाड़म मुकर्रर अपने दोनों श्रावकों को मंजूर किया जावे और चर्चा नकर होनी चाहिये निमेष

लक्ष्मणदासजी ने उत्तर :

इस विषय की सरकार

पर जो ...

लक्ष्मणदासजी के सुनते ही मोणोत अमरदासजी आदि  
 बाईस सम्प्रदाय के श्रावकों को बिलकुल मालूम हो गया  
 कि चर्चा करने की इन्की हिम्मत नहीं क्योंकि अपनी शुद्धता  
 होने तो सभा के सामने चर्चा करने को आवे परंतु मूल सेही  
 ऐसी श्रद्धा है कि माधु की फासी काटने में पाप और गायों  
 को बलते नाड़े में से निकालने में पाप है तो ऐसी श्रद्धा वाले  
 सभा के सामने कैसे आसके तो खर जैसी इनकी पोलपाल  
 श्रद्धा अपने मन में समझते थे वैसी ही विदित हो गई तो  
 अब इनको नाहक ज्यादा तंग करना ठीक नहीं ऐसा अपने  
 मन में हम बाईस सम्प्रदाय के श्रावकों ने संतोष कर तरेपंथी  
 श्रावकों को कहा कि खर नुम चर्चा नहीं करावो तो तुम्हारी  
 खुशी परंतु आप के पत्र के बदले हमारा यह जो पत्र आपको  
 दिया है इसका आपको मुनासिब तुल्य वेसा उत्तर लिख भेजना  
 यह कहकर हम सर्व बाईस सम्प्रदाय की श्रावक मंडली वहां  
 से चली आई और पिच्छा पत्र आने की राह देखते रहे  
 परंतु पत्र तो आवे ही कहां से क्योंकि चर्चा करने की हिम्मत  
 नहीं तो पत्र कैसे भेजे बस इसी तरह से चाटुर्मास्य का समय  
 बीत गया परंतु न तो सात प्रश्नों का उत्तर दिया और न  
 हमारे पत्र के बदले उनका पत्र पीछा आया तब हम बाईस  
 सम्प्रदाय के श्रावक तो इन तरे पंथियों का मत जैसा था वैसा  
 जानते ही थे परंतु जोरपुर के रहने वाले जन दर्शन के मित्राय  
 अन्य दर्शन वाले बहुत मध्यस्थों को भी विदित हो गया कि  
 इन तरे पंथियों की यह श्रद्धा है और ऐसा यह नचंच है ।

बस यह चर्चा जोरपुर शहर में अविदित ( छानी ) नहीं



तत्पश्चात् श्वातुर्मास्य सम्पूर्ण होने/भे हमारे गुरुजी श्रीमोतीलालजी ज्वारीलालजी मारवाड़ चालीतरे को गये वहाँपर भी तेरे पंथियों के पूज्य भी थे तां फिर हमारे गुरुजी श्री ज्वारीलालजी ने हमारे श्रावकों को कहा कि तेरे पंथियों के पूज्य जोधपुर के सात प्रभों का उत्तर देवे तो लेने को तैयार है तब श्रावकोंने चंदनमलजी लोडा विष्णु उपाशक जगत् के दरोगेये. उनको कहा तब उनने तेरे पंथियों के पूज्यजी से कहा तब कहने मुनने से सुरतरामके मंदिर में चर्चा करने को तेरे पंथियों के पूज्यजी तो नहीं आये. और अपने मगनलालजी आदी साधुओं को भेजे. तब हमारे गुरुजी ज्वारीलालजी ने वहाँपर प्रश्न किया कि श्रीमान् महावीर भगवंत को दीक्षा लेने अनंतर लक्ष्मणने में चूका कहने हो सो पाठ दिखलाये तिसपर तेरे पंथियों के साधुजी मगनलालजी उत्तरदिया कि श्री भगवानने दश स्वप्नेदेखे जिस से चूके हैं तब वाईस संप्रदाय के साधुजी ज्वारीलालजी ने कहा कि श्री परमेश्वर दश स्वप्ना तो यथा तथ्य देखे है और यथा तथ्य स्वप्न को सूत्रदशा श्रुतस्कंधजी के ५ वें अध्यायन में तीसरी चित्त ममाधी. यानी धर्म ध्यानमें कहे है सो कभी चूकना सिद्ध नहीं होता है. वस यह एकही काफ़ी गत्युत्तर सुनतेही सभा के मध्यस्थों को तो बसूरी रोशन होगया कि सत्य यह है. परंतु मगनलालजी ने यह बात स्वीकार नहीं करी तब चंदनमलजी लोडा ने कहा कि हम कल जोधपुर से पंडितों को बुलाते हैं सो सत्यासत्यका निर्णय हो जावेगा आज सभा विमर्जन (वर्गाम्न) करो वस दूसरेदिन सादाजीना पंडिता को बुलाने की मलाह में थे परंतु बुलाकर



निर्गम है मंत्र १६५६ में कार्तिकेय गुरी २ के पूरे हुए मरन  
निगदा मंत्र १२५० के वैशाख गुरी १५ पर मंत्रोत्तर की  
पुस्तक द्वाराई अथ पाठकगणोंको विचारना चाहिये कि तेरे  
पथी विगनबलनी का अवनमन की गयाई थी तो फिर काल  
पुस्तकी में नया पथी नहीं कराने.

अथ पुस्तक छपाने में उनका मन गया तो किनी तरह  
में विद्व नहीं होता. परंतु उनका यह निद्व हुआ कि मरने  
हुए मंत्र की पथी काट कर बचाने में पाप. और मंत्रों को  
अग्नि की लपट में बचाने में पाप. अनेक मंत्र में निगम श्रुति  
और तिन श्री महावीर मनु का नाम छपाने है कि हम महा  
वीर मनु के मन में बचने हैं. उन मनु का ही छपानना में  
श्रुति निगम और तिन मंत्रों को अनुचित अथवा समझने में  
उन मंत्रों का ही अनेक आगे अथवा मूर्खानिक समझ के उपर  
निर्गम अथ इम मंत्रोत्तर पुस्तक को देख कर बहुत ही समझ  
कार मन्त्रों में बचने ही समझ जानें हैं कि कैसी अनुचित  
इनकी अथवा है. परंतु एक बात थीमान बटमान धारणी के  
मन्त्रों के प्रभाव में अथवा है कि तेरे पथी मंत्र आथक  
बचने की वद में मंत्रों और बचाने में पाप करने में या मंत्र  
के विचार अथवा का ज्ञान देने में पाप, या थीमान बटमान  
धारणी को श्रुति करने में अनेक प्रकार का बहाना जाल काके  
बलवत् करने में. अथ इनकी बचने हुए मंत्रोत्तर पुस्तक के  
मन्त्रों में इन्हें बचने या बचाने का अथवा करने  
का मन्त्र है मन्त्र वास्तु यह इन वांछित मन्त्रोत्तर के बचने

मन्त्र पुस्तक को बचने में अनेक मन्त्रों का इन्हें



मौका था. जिससे स्याही सुखाने की तकलीफ होवे और गीली स्याही माधु को गत की राखनी नहीं करे. इसमें पेन्सिल से कचे खरडे लिखना शुरु किया फिर जब मत्सुत्तर पूर्ण हुए तत्पश्चात् कचे खरडे अपने काम में नहीं आने लायक जान के स्वामी जी ने अपनी नेत्राय से कचे खरडे के पत्र अलग कर दिये तब वे कचे खरडे हमारे स्वधर्मी भाई श्रावक भंडारी जोरावरमल जी और मेघराज जी के हस्तगत हुए. क्योंकि भंडारी जी संसार के व्यवहार व्योपारादिक प्रपंच को छोड़ के फल संतो की सेवा और तप स्यादिक में अपने आत्मा को तत्पर करते रहते हैं और मेघराजजी भी ज्ञानध्यान और पठनपाठन और संतों की सेवा में तत्पर रहते हैं इससे उनके हस्तगत वह पत्र हुए-तब हम श्रावक लोगों ने उन कचे खरडे के पत्रों को सर्व भव्यजनों को लाभ पहुंचाने के लिये पंडितजी विहारीलालजी से अच्छे कागज़ पर उतराये ऊर्ध्व पंडितजी को इस विषय में बहुत परिश्रम पड़ा क्योंकि खरडे बिन्कुल कचे चलते हरफों में लिखे हुवे थे. क्योंकि घरसात का समय था और महाराज को व्याख्यानादिक अन्य काम बहुत था और ग्रंथ पूर्वपक्ष और उत्तरपक्ष की प्रकिया से बहुत बड़ा लिखने की इच्छा से चलते हरफों में लिखे हुवे खरडे थे. तथापि पंडितजी सिद्धांत कौमुदी पद्काव्य सिद्धांत-सुत्रावली इत्यादिक संस्कृत. काव्य. व्याख्यादिक ग्रंथोंके ज्ञाता थे-इससे ग्रंथ का आशयज्ञान के शुद्ध करके लिखाई. तथापि कोई विषय में दृष्टिदोष से अशुद्ध रह गया होवे तो विद्वान जन शुद्ध करलना. ॥ इति शुभभवतु ॥

पाठकगण सज्जन भव्यजनों से यह हमारी प्रार्थना है कि इस ग्रंथ को यत्न से कुटिलता द्वेषता त्याग करके चित्त की व्याकुलता छोड़ करके समदृष्टि से देखें कि जिससे इस ग्रंथ से यथार्थ तत्त्व का बोध यानी सत्यासत्य निर्णय रूप ज्ञान प्राप्त होवे-इस हेतु से इस ग्रंथ का नाम "प्रत्युत्तर दीपिका" रक्खा है. क्योंकि प्रश्न जो हमारे यानी चाईस सम्प्रदाय की तर्फ से तैर-पंथियों को प्रश्न पूछे गये. तिसका विरुद्ध उत्तर जैन सिद्धांत ग्रंथों का नाम लेकर तैरे पंथियों का श्रावक कृष्णमलजी भंडारी ने प्रश्नोत्तर नामक पुस्तक छपवाया तिसका भ्रमरूप अंधकार को दूर करने के लिये यह प्रत्युत्तर दीपिका नाम ग्रंथ है सो भव्यजनों को सत्यासत्य निर्णय में प्रवेश होने के लिये दीपक रूप समझ के कच्चा खड़ीपेंडिगुजी के पान लिखा है. परंतु द्वेष और बलेश या विरोध बढ़ाने के लिये नहीं. इस लिये भव्यजनों से प्रार्थना है कि द्वेषभाव न बढ़ावे-किंतु सत्य को ग्रहण करें ॥

इस ग्रंथ में जहां पर 'पूर्वपक्ष' ऐसा सूत्रवन आवे तहां ऐसा समझना कि तैरपंथियों कि तर्फ से ग्रंथकर्ता की कथन है. और जहां पर 'उत्तरपक्ष' ऐसा सूत्रवन होवे तहां समझना कि चाईस सम्प्रदाय के श्री संघ के तर्फ से ग्रंथकर्ता ने कथन किया है ॥ और जिस जगह इस ग्रंथ में सूत्र के पाठ का अर्थ लिखा हुआ है. वह सिद्धांतों के पढ़नों में गुजरानी भाषा में अज्ञात है तैसे ही अक्षर लिखे गए हैं परंतु मन के मन ज्यादा कमती नहीं किये गए हैं. सिर्फ सिद्धांतों की पढ़नों में तो नीचे पाठ और ऊपर उचार्थ है और हमसे मन्तना के लिये ऊपर पाठ

और नीचे आये लिखा है, यदि कोई भव्यजन को संदेह हो-  
 या कि महाराज में यह अर्थ है कि नहीं, तो महाराज साहब  
 का पुत्रागतान्तर से रुरुर यत्न से पूछेगा तो पता देवेंगे,  
 या काइ मिद्वीत की पढ़त उस वरु हमारे महाराज के पास  
 हाजिर नहीं हो और जिन संतों के पास से या सत्तों के पा-  
 स से या श्रावकों की नेश्रायक पड़ो श्रावकों के पास से या  
 और काइ जैन संतों में से भी जिन पढ़तों से पता पर अर्थ  
 लिखा है उन का पता कह देवेंगे कि अमुक स्थान की अमुक  
 पढ़त में इतने यह अर्थ पता पर लिखा है, परंतु आने मरु  
 क मरु म नहीं लिखा जिनसे जो योजना करेगा, उस भाई  
 को अन्तः परह मायून हो जावेगा या जिन शास्त्र के अर्थ  
 की जहा उपरस होवे वह शास्त्रानु पुस्तक स्वयं या किसी अ-  
 न्य विद्वान पुस्तक द्वारा प्राचीन बहूँ अर्थ की पढ़तों को देखें-  
 गा, पढ़गा, तो जहा दृष्ट हो जावेगी और जो जो मिद्वीत की  
 है का ज्ञान, है लिखता अर्थ जैसा टीका में लिखता है के-  
 गा लिखा हुआ है संदेह होवे तो संच्छत पाठी विद्वान में  
 विचारन में विद्वित हो जावेगा और जो जो लोग तेरे पंथि  
 य, इ, मन्नालम नामक पुस्तक और अश्वत्थामनादि ग्रंथ  
 के इस प्रसंग लिखा है वह जैसा उनही पुस्तक में योग्य-  
 संदेह है वेता हो लिखा हुआ है सो जान लेना ॥

### अथ प्रभावलाकन विषय कल ।

जो मरु नीचे सत्तों में का पतापन को रवायन करके  
 काइ देव जगतीय मिद्वीत की श्रुता की प्रतिज्ञा करके पृथक  
 लिखत या देव देव की अर्थलाकन करेगा तो जैसी मन्नालमती

को शुद्ध श्रद्धा की प्राप्ति हुई वैसी अन्य को भी होवेगी ।

प्रश्न—यह प्रतापमलजी कौन है. ?

उत्तर—देश मारवाड़ में पंचभद्रा नाम ग्राम के रहने वाले प्रतापमलजी चाँपड़ा तेरे पंथियों के बड़े भाविक आचक थे. पश्चान् उनका तेरे पंथियों की श्रद्धा सिद्धांतों से विन्दु मालूम हुई. तथापि विचारा कि अपने तेरे पंथियों के पूज्य जी डालचंद जी कि जिनका चातुर्मास जोधपुर शहर में है उनसे सिद्धांत का पाठ पूर के अपने शंका को निवर्तन करे और अपने तेरे पंथियों की श्रद्धा सिद्धांत से ठीक मिले ना उनके ही आचक बने रहें और अपने पूज्य जी सिद्धांत का न्याय अपने को नहीं दिखावे और अपनी शंका निवर्तन नहीं करे तो फेर जो कोई न्याय श्रद्धावान् न्याय मार्ग में चलने वाले मुनिराज मिल जाय तो उनसे सिद्धांत के पाठ से अपनी शंका का समाधान पूरे जो बह मुनि अपनी शंका को मेट देवे तो उनकी न्याय श्रद्धा धारन करनी, क्योंकि संसार समुद्र से डरने वाला भव्य प्राणी को किसी का पङ्कज में नहीं पड़ना चाहिये किंतु बीतराग कथित न्याय मार्ग की श्रद्धा का प्रतीत करना योग्य है कि जिसके आत्मा अनादि संसार से मुक्त होवे ऐसी दृढ प्रतिज्ञा करके जोधपुर में आये अपने पूज्य जी से अपनी शंका विषयक सिद्धांत पाठ पूरने लगे तो पूज्य जी ने कहा कि तुम्हारे को भीपन जी महाराज के वचनों की प्रतीत है कि नहीं, तब प्रतापमल जी ने कहा कि मेरे को तो श्री भगवंत महावीर प्रभु जी के वचनों की प्रतीत है तब पूज्य जी ने कहा कि न भीपनजी महाराज की श्रद्धा में नहीं रहा,



तब फिर भी प्रतापमलजी ने कहा कि, आप मेरे गुरु जी हो सो मेरी शंका सिद्धांतों से निवृत्त कर देवो परंतु तेरह पंथियों के पूज्य ढालचंद जी ने सिद्धांत पाठ से प्रतापमलजी की शंका निवृत्त नहीं करी ।

अब पाठकगण ! विचारो कि तेरह पंथियों के पूज्य जी प्रतापमल जी को सिद्धांत पाठ बतावे हो कैसे, क्योंकि सिद्धांतों में तो ठाप २ श्री भगवान् ने मरते जीव को बचाने में महान् धर्म फरमाया है शंका होवे तो इस पुस्तक का ५ वां या ७ वां पत्र देखना. सिद्धांतों के मूल पाठ से जीव बचाने में महान् धर्म सिद्ध किया है, और तेरह पंथी तो कोई कसाई गाय मारता होवे कोई दूगरा धर्म जान के छोड़ा देवे तो अठारों पाप गाय छोड़ाने वाले को होता है. ऐसा कहने हैं. या गायों के बाड़े में लाय लगीं होवे उसको धर्म जानके कोई खोल देवे तो १८ पाप गायों को बचाने वाले को लगना बताते हैं, शंका होवे तो देख लेना तेरह पंथियों की बनाई प्रश्नोत्तर पुस्तक का पृष्ठ ११ वां पंक्ति ८ वीं पर लिखा कि सर्वोत्कृष्ट मनुष्य शरीर को भी बचाने में धर्म नहीं, किंतु पाप माना है या इसके पूज्य जीतमलजी कृत भ्रम विध्वंसन में भी जीव बचाने में पाप माना है तो ऐसी दया रहित भ्रद्धा का पाठ सर्वोत्कृष्ट दयामय जैन सिद्धांत में कहां से आवे, कि जो तेरह पंथियों के पूज्य जी ढालचंदजी प्रतापमल जी को बतावै. तब प्रतापमलजी ने जोधपुर शहर में तलाश करनी विचारी, कि कोई न्याय मार्ग बताने वाले मुनि मिलें तो उनसे अपनी भ्रद्धा शुद्ध करे. प्रतापमलजी के पृथक् भाग में जोधपुर

मे श्री श्री श्री पृथ्वी जी महाराज श्री श्रीलालजी महाराज के  
संस्कार के श्री मोतीलाल जी जुवारीलाल जी का भी चातु-  
मास्य वहां पर था. तब प्रतापमल जी ने उनके चरण भेट के  
अपनी शंका का समाधान करने अर्थ अपना मदन निवेदन  
किया स्वामी जी श्री जुवारीलालजी ने उसी वक्ष मिहानों  
की पहने खोलके मिहाने पाठ दिखलाया. तब प्रतापमलजी  
ने सूत्र पाठ देखने ही उनका मिथ्यात्व अद्भुत अंधकार ऐ-  
सा दूर हुआ कि जैसे सूर्य की किरणों से अंधकार दूर हो  
जावे. प्रतापमलजी का मिहाने रूप सूर्य की चंचल रूप किरणों  
से अज्ञान रूप अंधकार दूर हुआ, तब प्रतापमल जी १०, दिन  
तक टहर के अपने चित्त को मत्स्य भद्रान से पूर्ण दृढ़ किया.  
पश्चात् अपने पंचभद्रा ग्राम को गए. तब वहां पर इस बात को  
लिखने का यह प्रयोजन है कि प्रतापमल जी जैसा जो कोई  
भव्य जीव निष्पन्नानी होके इस ग्रंथ को अवलोकन करेगा  
तो न्याय मार्ग वीत राग की शुद्ध भद्रा का फल को प्राप्त  
होवेगा इति ॥ शुभं भवतु ॥

इस सूचना के पश्चात् अब ग्रंथ प्रारम्भ करते हैं ॥

शापका

भावक लोग वाईस समुदाय

नया शहर ( व्यावर )

॥ ॐ श्री जिनाय नमः ॥ ॐ नमः सिद्धम् ॥

## अथ प्रत्युत्तर दीपिका प्रारंभः

तत्रादौ शार्दूल विक्रीडित छंदसा मंगलाचरणम्।

वीरः सर्वं सुरासुद्रं महिती वीरं युधाः संश्रिताः ।

वीरेणाभिहतश्च कर्म निचयो वीराय नित्ये नमः ॥

वीरात्तीर्थमिदं प्रवृत्तं मतुलं वीरस्य घोरं तपः ।

वीरः श्रीधृति कीर्ति कांति निचयः श्रीवीर भद्रदिशः ॥१॥

अस्यार्थः—हे श्रीवीर देव कल्याण देवो कैसे वीर हैं संपूर्ण जो देवेन्द्र असुरेन्द्र उन करके पूजित और संपूर्ण जो पंडित है वह वीर के ही आश्रित है और वीर ने ही संपूर्ण कर्म समूह को हना है ऐसे वीर के वास्ते नमस्कार होय, वीर से ही यह अतुल तीर्थ प्रवृत्त हुआ और वीर की घोर तपस्था है फेर वीर कैसे हैं लक्ष्मी और धीर तथा कांति कीर्ति इनका समूह है जिससे ऐसे श्रीवीर कल्याण देवो ॥इति श्लोकार्थः॥

श्रीशासन के स्वामी वर्द्धमान स्वामी के चरणारविंद में शरण प्राप्त होके भव्य जनों के हितार्थ सत्यासत्य प्रश्नोत्तर का निर्णय यानी सत्य और असत्य को मरुट दिखलानेरूप मन्व्युत्तर प्रदीपिका का अर्हंत देव के शरण हो के गुरु कृपा से रचना है ॥

प्रश्न पहिला-चाईम सम्मदाय की तर्फ से श्रीमान् महा-वीर भगवंत स्वामी को दीक्षा लेने के अनंतर द्वायस्थान में चूके बतलाने हो सां पाठ दिखलावो ?

उत्तर-तेरेपंथियों के तर्फ से प्रश्नोत्तर पुस्तक का पृष्ठ दूसरा की पंक्ति चौथी से लगा के १६ वीं पंक्ति तक लिखा वह यह है ।

( क ) श्रीभगवान् महावीर स्वामी ने दश स्वप्ने देखे तिसमें पिशाचों को जीते और भुजा से समुद्र को तारे यह बात ठाणायंग सूत्र के दशमें ठाणे में है तात्पर्य यह है कि स्वप्न का आना मोहनी कर्म का उदय है और जब तक मोहनी कर्म का उदय है जबतक राग द्वेष है जब केवल ज्ञान उत्पन्न हो जाता है तब मोहनी कर्म का क्षय हो जाता है और राग द्वेष मिट जाते हैं इसीमें केवली को वीतराग कह जाते हैं और वीतराग को स्वप्न नहीं आता निद्रा का आना दर्शनाचरणी कर्म का उदय है और स्वप्न निद्रा का संसर्ग बिना नहीं आता है क्योंकि जाग्रत और निद्रा की मध्यावस्था स्वप्नावस्था है और केवलियों के निद्रावस्था नहीं है इसलिये निद्रा का संसर्गवाली स्वप्नावस्था वाले को केवली नहीं कह सके हैं किन्तु द्वायस्थ ही कह सके हैं और द्वायस्थ के चूक जाने का संभव है इति ॥

अब इसका अनुत्तर सत्यासत्य का निर्णय एकाग्र चित्त करके श्रवण करिये. हे नेपथी मित्रो ! भगवंत का यथार्थ स्वप्न देखने को तुमने मोह कर्म का उदय उदराया. यह लेख

इतना अज्ञानता को सूचित करता है कि जिसकी हद लिखी नहीं जाये.

पूर्व पक्ष इस लेख में अज्ञानता कैसे हुई.

उत्तर पक्ष-ध्यान लगा के सुनिये. अज्ञानता यह है कि मथप तो तुम्हारा यह लिखना अत्यन्त विरुद्ध है कि जो तुमने लिखा कि ( श्री भगवंत महावीरं स्वामी ने दश स्वप्न देवे जिसमें पिशाचों को जीते ) सूत्र में तो एक पिशाच को जीतने का मुझामा पाठ है तथा च सूत्रम् । ( एकं, महं, घोरं, रुचं, दिनधरं, ताल, पिशाचं, ) इति ।

यह देखो सूत्र के तो मूल पाठ में एक पिशाच का जीतना कहा और तुम ने पिशाचों यानी बहुत पिशाचों का जीतना बरोंकर लिया क्या तुमारे पूज्य जी को इतना भी टाण्डण्टा नहीं है जो तुमको एक पिशाच भी जगह बहुत पिशाचों की धारणा कराई और एक बचन बहुत बचन का ज्ञान भी तुम उत्तर के ज्ञाने वाले को या उत्तर के धारण करने वाले को नहीं तो फिर किस जाणवने से उत्तर का पुस्तक अध्याया. वाह रे वाह, उत्तर अध्यायने वाले जी. तुम्हारी वृद्धि और दूसरा भी यह तुम्हारा लिखना बिलकुल अज्ञानता को सूचन करता है कि जो तुम ने लिखा कि ( जय केवल ज्ञान उन्मत्त हो जाता है तब मोहनी कर्म का जय हो जाता है. ) इति ।

देखो यह लिखना कितना अज्ञानपन का है क्योंकि सिद्धांत में तो यह ज्ञान है कि मोहनी कर्म का जय तो द्वादश में गुण ध्यान व १००० है अज्ञान नगरीया गुण ध्यान

प्राप्त होवे जब केवल ज्ञान उत्पन्न हो जाता है और हे मित्रों तुम ने ऐसा क्योंकर लिख दिया कि केवल ज्ञान उत्पन्न हो जाता है तब मोहनी कर्म का क्षय हो जाता है आदाहा तुम्हारे पूज्य जी ने कैसे ऊटपटांग लेख सिखलाये और तुम्हारे स-रसीसे शल्यज्ञों ने भी क्रुद्ध नहीं विचारा कि जो एक साधारण जैन का जानपनेवाला समझदार लड़का भी समझ सकता है कि मोह कर्म के क्षय हुए वगैर केवल ज्ञान उत्पन्न नहीं होता है तो फिर तुम ने केवल ज्ञान हुए पश्चात् मोह कर्म का क्षय होना कैसे लिखा. अगर तुम्हारे को छोटे से लड़के के बरा-बर भी ज्ञान नहीं तो फिर पुस्तक बनाने का साहस कैसे किया पाठकगण विचारना चाहिये कि तेरह पंथियों के पूज्य जी और श्रावक जी कैसे विद्वान हैं वस भोजन के पहिले ग्रास में ही कटु या जहरादिक है तो अगाड़ी शुद्ध भोजन होवे ही कहाँ से, ऐसे ही संपूर्ण प्रश्नोत्तर चोपड़ी को समझ-ना तथापि आगे को फिर दिखाते हैं नीसरी इस लेख में यह अज्ञानता है कि स्वप्न देखना भगवंत ने क्षयोपशम भाव में कहा है और तुमने मोह कर्म का उदय बनलाया यह अत्यन्त अज्ञानता हुई और मोह कर्म में है इसकी साक्षी भी किसी सिद्धांत की तुम ने नहीं लिखी फकत केवल ज्ञानी स्वप्न नहीं देखने से ही मोह कर्म के उदय में कह दिया अब बुद्धिमान पुरुषों विचारो कि थोड़ा भी जैन सिद्धांत का ज्ञान होता तो ऐसी मिथ्या वार्ता नहीं लिखते क्योंकि केवल ज्ञानी नहीं देखे उन सर्व कामों को मोहनी कर्म का उदय कहना अनंत संसार की वृद्धि का कारण है क्योंकि चार ज्ञान मति १ धृति २ अ

यदि ३ मन पर्यय ४ और तीन दर्शन चतु १ अचतु २ अ-  
 पि ३ भी केवली जी महाराज के नहीं हैं तो क्या यह मोह  
 कर्म के उदय में हो सक्ता है कभी नहीं हो सक्ता या चार  
 चारित्र यानी सामयिक चारित्र छै दोष स्थापनीया चारित्र परि-  
 हार विशुद्ध चारित्र मूढम सांप्रत्य चारित्र यह सरागी कहाते  
 हैं यानी राग द्वेष मोह कर्म महित जीव के होते हैं और के-  
 ली महाराज के तो एक यथात्म्यात चारित्र होता है क्योंकि  
 मोह कर्म राग द्वेष नहीं होने से तो कही राग द्वेष मोहनी कर्म  
 चाने के ४ चारित्र क्षयोपशम भाव में है कि मोहादि कर्म के उ-  
 दय भाव में है ।

पूर्वोक्त—चारि चारित्र तो क्षयोपशम भाव में हैं ऐसा  
 मूत्र में मूलात्मा लेग है.

उत्तर—तो है भव्य यह जो मुग्धाग कथन है कि रा-  
 ग द्वेषवान् का स्वप्न देखना होता है इसमें मोह कर्म का उदय  
 कर्मा निम्नोक्त हुआ क्योंकि राग द्वेष का संपूर्ण क्षय तो १२  
 वां गुण टाण होता है तो राग द्वेष या मोह कर्म महित चारि-  
 का मर काम मोह कर्म के उदय नहीं इसमें स्वप्न देखना भी  
 मोह कर्म के उदय में नहीं किन्तु क्षयोपशम भाव में है ऐसा  
 सिद्धांत में स्पष्ट कहा है.

पूर्वोक्त स्वप्न देखना क्षयोपशम भाव में है यह सिद्ध  
 सिद्धांत का लेग है.

उत्तर—मुनिवें भई मूत्र तंदी जी में मनि ज्ञानाधिकार  
 में स्वप्न देखना जो इन्द्रिय यानी मन करके अपोशारी मनि  
 ज्ञान का भंड है ना मर वाट निम्न है मुनिवें—मूत्र निम्न-  
 निम्न है

सेजहा. नामए. केडपुरिसे. अच्वत्तं, सु.मिणं, पासिज्जा, नेणं, सुमिणेत्ति, उगाहिए, नांवेवण, जाणइ, केवेम, सुमिणेत्ति. तच्चोइंइं, पविसइ, नच्चो, जाणइ अनुगे, एस. सुमिणे, नच्चो. अवायं, पविसइ, नच्चो. सेउवगयं, इवइ, तच्चो, धारणं. पविसइ. तच्चोणे, धारेइ संखिज्जं, वावा. कालं, असखिज्जं-वा, कालं ॥ इति ॥

अर्थः ( से जहा. 'नेम के' ) यथा दृष्टान्ते नाम इति सं-  
भावनाई ( केई. पुरिसे. के० ) कोई पुरुष ( अच्वत्तं. सुमिणं.  
पासेम्मा, के० ) अवायं स्वप्न प्रते देखे ( नेणं. सुमिणेत्ति. उगा-  
हिए. के० ) ने स्वप्न सुते ग्रे परं ( खोत्ते. के. ) नही निश्चय  
परि जाये जे ( केवेम० के० ) कोख ई यह स्वप्न ( तउ०  
के० ) तिवारे विचारणा मापे से ( तउ के० ) तिवारे जाये  
जे ( अनु० के० ) अनुकोपय स्वप्न है ( तउ० के० ) तिवारे  
पई निश्च थाई ( तउ० के० ) तिवारे धारणा मा प्रवेस करे  
( तउणे के० ) तिवारे पई धारे. ( मंगे० के० ) मंगयाना  
काल लगे अथवा ( अमं० के० ) अमंगयाना काल लगे ॥  
इति सूत्रार्थः ॥

एतद्देवो भारी परां सूत्र के मूल पाठ और अर्थ में कहा  
कि स्वप्न का देखना जो इन्द्रियमति ज्ञान वाली मन करके  
मतिज्ञानरूप 'उमे' इरा 'अवाय धारणा रूप मतिज्ञान का  
भेद में है फिर जो इन्द्रो मतिज्ञान का भेद में स्वप्न है ऐसा  
इसी सूत्र के टीकाकार जी लिखते हैं तथा च टीका—

एवं स्वप्न मतिज्ञानो इन्द्रियव्याप्यं च ज्ञातादयः मति-  
पाहिदव्याः । ज्ञानेन चोद्भवने नाप्यत्रापि विषयवेदिदव्याः ॥  
इति ॥



श्रीकार्यः-ऐसे स्वप्न का अधिकार करके जो इन्द्रिय अर्थात् प्राण उगे इहाँ अथाय धारणा की संरूपणा कथन की इस कथन करके अन्य विषय में भी जानना ॥ इति ॥

हे बुद्धिमानों अथ तो जरा सिद्धांत शैली से विचारो कि स्वप्न का देखना तो जो इन्द्रिय मति ज्ञान में है ऐसा मूत्र का मूल पाठ अर्थ श्रीका में खुलासा स्पष्ट लिखा है तो फिर तुम ने स्वप्न देखना मोह कर्म के उदय में कैसे लिखा.

पूर्वपक्ष-सर्वोपशमभाव में स्वप्न है ऐसा खुलासा पाठ दिव्यज्ञानों.

उत्तरपक्ष मूत्र मार्गी तो लिख ही दी है क्योंकि मति ज्ञान सर्वोपशम भाव में है और स्वप्न का देखना मतिज्ञान में है तो स्वप्न का देखना सर्वोपशम भाव में स्पष्ट रीति से सिद्ध हुआ है अथ बुद्धिमानों विचार लोको कि यह मति ज्ञान सर्वोपशम भाव में है यह भी पाठ अन्वयों के धारने लिखने है मूत्र अनुयोग द्वार में मूत्र पाठ—

मेदिने, मत्तमनिर्वाणे, २ अणोग, विदे, पणणे, संभदा, मत्तमनिष्ठा, आनिष्ठा, वादिव. गुण, लदी ॥ इति ॥

अन्वयः—( मेदिने मत्तमम, निर्वाणे, २ अं० ) अथ हे मने काईह एत काईह उपशम थी नीतनीने ( अणोग, विदे, पणणे संभदा, अं० ) अनेह प्रकार मन्त्रोने कहें हैं ( मत्त, मनिष्ठा, आनिष्ठा, वादिवगुण, लदी, अं० ) आनिष्ठावादिह ज्ञान ने मति ज्ञान वादिव नेहनी लदिव वादिवे संभदा अथवा ल ना उपशमम नहीं लिखने ने मर्ती सुतो एतने वा वादिव इति मत्तम



विहं, सुमिण, दंसणे, पणुत्ते, तंजहा अहातचे, १ पयाणे २ चिंता सुमिणे ३ तच्चिवरीए ४ अच्चत्त दंसणे ५ इति ॥

अस्यार्थः--( कइ, विहेणं, भंते, सुविण, दंसणे, पणुत्ते, के० ) के तले भेदे हे भगवन् स्वप्न दर्शन कथा शयनक्रिया, अगतार्थ विकल्पतेहनो दर्शन कहिये अनुभवन ते प्ररूप्यो इति प्रश्नः--उत्तर ( गायमा, पंच, विहं, सुविण, दंसणे, पं० तं० के० ) हे गौतम पांच भेदे स्वप्न दर्शन प्ररूप्यो ते कहे छे अहातचे षि० के० ) तिणे प्रकारे सत्य तिणे करियेते ते ययातय्य कहतां सांचो १ पयाणेत्ति के० प्रतान कहिये विस्तार ते रूप जे स्वप्न ते यथातय्य तेहयो अनेरो अतान एहवो कहिये विशेषण कुतहीज एवेऊंते विपे भेद इम आगे पणि कथा हवो २ चिंता, सुमिणेत्ति, के० जागतां यथा चिंता अर्थ चिंतन ते स्वप्न मादि देते ते चिंता स्वप्न कहिये. ३ तच्चिवरीए. के ) जेह वचस्तु स्वप्न ने विपे दीठा तेहयो चिरगीत अर्थनो पापवो जाग्या हुवे ते चिवरीत स्वप्न कहिये ४ अच्चत्त, दंसणे के० ) अच्चत्त ते प्रकट नहीं दर्शन अनुभव स्वप्नार्थ नो तिहां ते अच्चत्त दर्शन ५ इति सूत्रार्थः ॥

अइ देखिये यहां सूत्र के मूल पाठ में कहा कि स्वप्न का देखना पंच प्रकार का है और सूत्र नंदी जी में स्वप्न देखना चतुर्विध भाव में कहा है क्योंकि मनि ज्ञान में जाने में और जैसे ही ज्ञान ५ और अज्ञान तीन यह भी चतुर्विध भाव में कहे हैं परंतु ज्ञान को ज्ञान और अज्ञान को अज्ञान समझना जैसे ही यथातय्य स्वप्न प्रकट और उमकी अर्थः में अन्य विद्वान् जंतान् स्वप्न कुम्भित जानना



भेदमें दो प्रकार का स्वप्न होता है. अर्थात् जैसे दूरे वैसे ही अर्थ को प्राप्त होवे और जैसा देखे वैसा ही फल को प्राप्त होवे निम्नमें दृष्टार्थी विसंवादी स्वप्न तो जैसे कोई स्वप्न को देखे कि मेरे हृन्म में फल दिपा फिर जागता हुआ उसका तैम ही देखता है और फला विसंवादी स्वप्न तो जैसे कोई भी बल हस्ति आदिक पर चढ़ता हुआ अपने को देखता है फिर जागता हुआ कालान्तर में संघाति को प्राप्त होता है ॥ इति

टीकापत्रः ॥ अब देखो यहाँ टीका में भी कहा है कि यथातथ्य स्वप्न दो प्रकार से जानना कि जैसा स्वप्न देखे वैसा ही अर्थ को प्राप्त होवे और जैसा स्वप्न देखे वैसा ही फल को प्राप्त होवे, जैसे कि कोई बलहस्ति आदिक पर चढ़ा हुआ अपने को देखे. और कालान्तर में संघाति रूप फल को प्राप्त होवे. उसको यथातथ्य स्वप्न कहिये तो फिर श्री भगवान् महावीर स्वामीजी भी मेरे पूर्वज की शूलिका पर स्वप्न चढ़े जैसा स्वप्न देखा. निम्नका फल में श्री भगवान् समस्त शरण में निहागन के विराज के दृष्टार्थ प्रकार का प्रपदा को यथातथ्य देग देते हुये और स्वप्न में समुद्र निरने में संसार रूप सार को निरे और पिशाच को नीरने से मोहरूप को भीने. और स्वप्न को स्वप्न में देखने में केवल ज्ञान को प्राप्त हुए, इत्यादिक विचार सहित मूलपाठ में आगे लिखेंगे, परंतु यह ज्ञान में नहीं आता कि तुम्हारे मेरे पूर्वजों के पुत्रवती जीतपत्नी ने अब विध्वंसन में जैसा बर्षाकर कर दिया कि भगवान् ने दृष्ट स्वप्न देख वह विरहित स्वप्न है मा हम अवशिष्टमन का छेद लूना करता है अब विध्वंसन के अब ०-२ मा में ( बलि

भगवंत द्दशस्थपने १० सुपना दीया ते पीण विपरीत द्वै ) इति ॥

यह देखो तुम्हारे गुरुजी ने सूत्र अर्थ टीका से विपरीत लेख कपोल कल्पित क्योंकर लिख दिया. जीतमलजी को यह भी ख्याल नहीं आया कि जो मैं मतपन्न करके श्री भगवान् दश स्वप्न देखे तिन को मैं विपरीत कह देऊंगा तो फिर कोई मेरे से पूछेगा कि भगवान् ने देखे वह स्वप्न विपरीत है तो फिर यथातथ्य कौनसे हैं तब मैं क्या उत्तर देऊंगा. शोक है कि इतना भी ख्याल उनको नहीं आया तो जान लिया कि मतपन्न का कारण है, परंतु श्री भगवान् ने स्वप्न देखे वे तो यथातथ्य मूलपाठ से ही सिद्ध हैं क्योंकि सूत्र भगवतीजी के १६ मां शतक के छठे उद्देश में श्री भगवान् ने स्वप्न देखे वहां ऐसा पाठ है सो मुनिये ॥ सूत्र

समणं, भगवं, महावीरे, द्दशमत्य, कलियाए, अंतिम,  
राइयं, सि, इमे, दस, महा, सुविणं, जाव, पडिबुद्धे ॥

अस्यार्थः—( समणं, भगवं, महावीरं, द्दशमत्य, कलियाए,  
अंतिम, राइयंसि, के० ) अथमणं भगवंत श्री महावीरं स्वामी  
द्दशस्थ कालपणानि रात्रिने अंतिमभागे ( इमे, दस, महा,  
सुविणं, पासि, चाणं; पडि, बुद्धे, के० ) एह दस स्वप्न देखी  
ने जाग्या इति सूत्रार्थः ॥

यह देखो श्री सूत्र के मूल पाठ में कहा कि दश महा स्वप्न श्री भगवान् ने द्दशस्थ पने की छेली रात्रि के अंत भाग में देखे तो सूत्र में महा स्वप्न कहा इमने तो स्पष्ट गीति से ही सिद्ध है कि पंच प्रकार के स्वप्न के भेद हैं तिसमें श्री भगवान् ने स्वप्न देखे वे पहिले भेद में यानी यथातथ्य स्वप्न में है.

तथा फेर इसी भगवतीजी के १६ मां शतक के द्वादश उद्वेग  
में ऐसा पाठ है तो सुनिषे ॥

सूत्र—संबुदेयं, भंते, सुविणं, पामड, असंबुडे, सुविणं  
सुविणं, पामड, संबुडा, मबुडो, सुविणं, पासड, गोचमा,  
संबुडेवि, सुविणं, पामड, असंबुडा, विमुविणं, पासड संबुडा,  
संबुडेवि, सुविणं, पासड, संबुडे, सुविणं, पासड, अहानव,  
पामड, असंबुडे, सुविणं, पामड, तहा, वानं, टाभा, अण्डा,  
वानं टाभा, संबुडा, संबुडे, सुविणं, पामड, एवं चेत्, इति ॥

अर्थार्थः—दिवे स्वप्ननोज तथ्य अतथ्य विभाग देखाइ-  
वाने अर्थे स्वप्न हीज कहे है ( संबुडेयं, भंते, सुविणं, पासड,  
असंबुडे, सुविणं, पासड, संबुडा, संबुडे, सुविणं, पासड के० )  
संभूते हे भगवन् रुंध्या जणे आश्रव द्वार ते सर्वे विरति इत्यर्थे  
ते स्वप्न प्रते देखे इत्यर्थः ॥

जिणे आश्रव रुंध्या नहीं ते असंबुत अविरति इत्यर्थे ते  
स्वप्न देखे. अथवा संबुत असंबुत एतले देश विरति ते स्वप्न  
देखे. इति प्रश्न ॥

उत्तर—( गोचमा, संबुडे, सुविणं, पामड, असंबुडे, वि,  
सुविणं, पासड, संबुडा, संबुडे, वि, सुविणं, पासड, संबुडे,  
सुविणं, पासडः के० ।

हे गौतम संबुत न पणि स्वप्न देखे, असंबुत ते पणि  
स्वप्न देखे संबुत असंबुत पणि स्वप्न प्रते देखे ते संबुत  
स्वप्न देखे इति प्रश्न । उत्तर—( गोचमा, संबुडे, वि,  
सुविणं, पासड, संबुडा, संबुडे, वि, सुविणं, पासड, संबुडे,  
सुविणं, पासडः के० । अहानव, पामड,  
जमड, सुविणं, पासड, के० ) मन्वस्वप्न हीज देखे असंबुत

स्वप्नदेखे। ( तदा, वातं, होज्जा खूँछदा, वातं होज्जा, के० )  
 तेनि महीज एतले यथायं ने स्वप्न देखे छथवा कल्पथा एणि ते  
 स्वप्न दुवै, ( संवुभा, संवुभं, सुविखंई पामद, एवं चैव के० )  
 मंदन अनंतन स्वप्न देखे ते पाणि इपहीन कडे छे। इति सुत्रार्थः॥

अब देखो यहाँ सूत्र के मूलपाठ में कहा कि संवृत साधु  
 स्वप्नदेखे तो यथातथ्य हीज देखे, तो फिर श्रीमान महावीर स्वा-  
 मी तो प्रधान संवर में वर्तने वाले थे, और छद्मस्थ पने की  
 लेली रात्री में दस स्वप्न देखे, यानी रात्रि का तो स्वप्न देखे,  
 और दिनको केवल ज्ञान पाये, और सूत्रद्वारा धुनसंस्थ के  
 पंचमे अध्ययन की थीका, और अर्थ में भी श्रीभगवान के दस  
 स्वप्न का देखना यथातथ्य महा कन्याणकारी कहे है, सो  
 आगे लिखेंगे, तिसमें सूत्र का लेख से ही श्रीभगवान महावीर  
 स्वामीजी ने यथातथ्य स्वप्न ही देखे, परंतु अन्य विपरीत  
 स्वप्न का देखना, किसी भिद्धान्त प्रमाण से सिद्ध नहीं होता,  
 फिर टेभाई यह विचारो कि जब संवृत आत्मावंत साधु को भी  
 स्वप्न ही देखना कहा, और तुम यथातथ्य स्वप्न देखने में भी  
 पाप लगना कहते हो या चूक जाने में कहते हो, और फिर  
 तुन्हारे गुरु की श्रद्धा ऐसी है कि एक दोष सेवन करे उसमें  
 भी साधुपना नहीं, तो फिर स्वप्न देखने में दोष लगा तो संवु-  
 दा अनगार यानी साधुपना कैसे रहा, तो तुन्हारी श्रद्धाके  
 अनुसार तो, संवृत साधु यानी निर्दोष साधु का स्वप्न देखना  
 ही नहीं दहरेगा, या स्वप्न देखना दहगवांगे तो, संवुदापना  
 नहीं दहरेगा, परस्पर विरोध आवेगा, और भगवंत ने तो,  
 संवुदा अनगार को स्वप्न देखना कहा है और संवुदेखने का





माइं, दश, चित्त, समाहि, द्वाणाहिं, असमुपण, पुव्वायं, स-  
 नु, पञ्जिभा, तंजाहा, धम्मचिंतानासे, असमुपणपुव्वा, सुनु-  
 प्पज्जेभा, सब्ब, धम्मं, ज्ञाणित्तए ॥ १ ॥ मन्दिणाणे, वासे,  
 असमुपणपुव्वे, समुपपज्जेभा, अहंसरामि, अरलो, पाराणिय,  
 जानी, समारीत्तए ॥ २ ॥ सुमित्त, इंसणे, वासे, असमुपण-  
 पुव्वे, समुपपज्जेभा, आहा, तच्च, सुखिणं पासित्तए ॥ ३ ॥

अस्यार्थः—आयटीणं के० ) मोक्षनाअर्थी एतलं दीघे का-  
 लनी विधिना अर्थी.

आयद्वियाणं के० ) ३६३ पासंडो तेहनो संग वज्जेवोने  
 आत्माना हेतु.

आयज्जियोणं के० ) आत्मा ना मक्काशवंत.

आयपरिकमाणं के० ) आत्मा सुत्त भणी माक्रम फोरइ  
 एवा माक्रमी ।

परिवय पासदिए के ) पत्ती ते अट्टमास निके पत्ती तेह-  
 नो पासो उपवास करइ धर्म ते पासं ते पासो कहिये सुत्तमाहि,  
 पत्ताणं के० ) पासो करवइ भली समाधि पासो छइ तेह नइ  
 भ्रियाय, माखाणं, के० ) धर्म शुवल ध्यानना ध्यावणहार  
 इमाइ के० ) ए आगलि कहै स्वयंते ।

दश के०) दस संख्या चित्त के० ) चित्त ने समाहि ठा-  
 खाइ के० ) समाधियानिक भाव समाधिना यानिक असमु-  
 पण, पुव्वाय के० ) किवारे पणि अतीत बाले पूर्वइ जीवनइ  
 उपना न थी एतले पान्या नथी ते ।

समुपपज्जिभा के० ) उपनइ तंजाहा के० ) तेजीम छै  
 दिन कहै छै पूर्व गुण सहित साधु माध्वी ने धम्म, चिंता-

चाम. के० ) धर्मनी चिंता ते जीव द्रव्य अजीव द्रव्य तेह विषय चिंता जे नित्य छे किंवा अनित्य छे रूपी छे किंवा अरूपी छे एहवीं चिंता असमुपपण, पुष्पा, के० ) पूर्वइ उपनी न थी तेहनेइ समुपपजेभा-के० ) उपजे तिवारे सब्य, धम्मं. जाणित्तण. के० ) सर्व धमे जाणे तिवारं परवा दीनाधर्म असोपनीक पूर्वा परे विरुद्ध माटे श्री जिन धर्म निर्वाण हेतु जाणै ॥ १ ॥

सन्नित्तणे, वासे के० ) सम्यक् पुकारइ जाणै ते संज्ञी पंचेदी मन सहित तेहने जाति स्मरण असमुपपण, पुष्पा, के० ) पूर्व उपनो तो नईः ।

समुपपजेभा के० ) ते जानि स्मरण सम्यक् प्रकार प्रगट होइ अहसराभि के० ) हं पूर्व भव न विपइ एहवो इतो संभारे अपैखी, पोरणिय, के० ) आपणी पादला भवनी जाती, सारीत्तण, के० ) जाति नइ पूर्व भव में हं कण हुतो संभारे ॥ २ ॥

सुमिण, दंसणे, वासे के० ) स्वप्न नो देखन उते स्वप्न दर्शन जिम भगवंतइ भगवती मूत्र शत १६ उ० ६ स्वप्न ना फल कहा ते हवा यथानध्य ।

असमुपपण, पुष्पा, के० ) अतीत काले उपनान थी समुपपजेभा के० ) ते उपजे देखेइ श्रीवीरनी परइ-आहातच, सुविणं पासित्तये. के० ) यथानध्य स्वप्न देखै तेह बोहीज फल पामइ ॥ ३ ॥ इति मूत्रार्थः ॥

अब हे मित्रो ज्ञानूनेत्र खोल के देखो कि यहां मूत्र के मूल पाठ में श्री भगवान् ने अपने साधु साध्वी को बुला के

कहा कि इन जिन शान्तन के जो निर्दोष चरित्र के पालनेवाले और ज्ञान दर्शन चरित्र की समाधि वाले और धर्म शुद्ध ध्यान के ध्यावने वाले ऐसे महा गुणवान् साधु साध्वी को दश चित्त समाधि के स्थान यानी भाव धर्म प्राप्ति के स्थान जाय को गए काल में कभी उत्पन्न न हुए ऐसे अपूर्व महा कल्याणकारी उत्पन्न हुए तिन दश चित्त समाधि यानी भाव धर्म की समाधि के स्थान में यथातथ्य स्वप्न का देखना तीसरी चित्त समाधि में श्रीमुख से परमेश्वर ने फरमाया है तो फिर हे भव्य तुम लोग ऐसे यथातथ्य स्वप्न देखने में श्री भगवान को चूक जाना या पाप लगना कैसे कहते हो और पुस्तकों में द्वाँपते हो ।

पूर्वपक्ष-हमारे को तो हमारे पूज्य जी ने जैसी धारणा कराई है तैसी ही हमने पुस्तकों में लिपवाई है.

उत्तरपक्ष-हे भव्य अदभ्य तुम्हारे पूज्य जी ने ऐसी सिद्धांत विपरित धारणा तुमको कराई होगी. परंतु तुम लोग पूज्य जी के कपोल कल्पना को ही मन्य मानते हो. कि श्री त्रिलोकीनाथ महावीर प्ररूपे सिद्धांत को सत्य मानते हो.

पूर्वपक्ष-सत्य तो हम अर्हत प्रभु प्रलीत ( प्ररूपे ) सिद्धांत को ही मानते हैं परंतु यह दशा धुतस्कंध सिद्धांत का पाठ हमारे पूज्य जी ने क्या नहीं पढ़ा. जो ऐसे महाकल्याणकारी चित्त समाधी भावधर्म की प्राप्तिरूप यानि श्री भगवान् महावीर प्रभु ने देखे तिन स्वप्नों को मोहकर्म के उदय में और श्री भगवान् को चूक जाने में हमको कैसे भिन्वाया. नागद हमारे पूज्य जीने इस दशाधुतस्कंध के सूत्रपाठ की टीका

में कोई दूसरी तरह का अर्थ होवे. उससे हमको धारणा कराई होगी तो क्या जाणिये. क्योंकि हमारे भ्रम विध्वंसन में दशा श्रुतस्कंध की टीका की साक्षी १ महिने की साधू की पडिमा को अधिकार में दी है सो हमको टीका दिखलाओ.

उत्तरपक्ष-हे भाई ग्रंथ बहुत बढ़ जावेगा तथापि तुम्हारी शंका दूर करने को हम टीका लिखते हैं सो मुनिये.

टीका-समाधिपक्षाणंति. समाधि प्राप्तानां ज्ञानदर्शन चाग्नि रूप समाधिवतां. भ्रियायमाणंति धर्म शुक्र ध्यान ध्याय मानानां. डमोइंति मानि अनंतर वक्ष्यमाण स्वरूपाणि दश चित्त समाधि स्थानानि. अस मुष्ण पुष्वाइंति असमुत्पन्न पूर्वाणि इत्यर्थः समुत्पन्नरहितिशेषः तद्यथाधम्मत्यादि सेति निर्दिशे तस्य एवं गुणजातीयस्य निग्रंथस्य. निग्रंथ्यावा धम्मचित्तति धर्मोनाम स्वभावः जीव द्रव्याणामजीव द्रव्याणां चतद्विषया चिंता कथंरूपा अमीनित्या उतानित्या रूपिण उतारूपिण इत्यदिरूपा. असमुष्ण पुष्वाति प्राग्वत्सत्यं धर्म ज्ञानं अथवा धर्म चिंता यथा सर्वकुसमया अशोभना अनिर्वाह का पूर्वा पर विरुद्धाः॥ अयसर्वेषु धर्मेषु शोभन तरोयं धर्मो जिन प्रणीतः एवं रूपा इत्येक १ सणीत्यादि सम्यग् जाना-तीति संज्ञः तस्य यत् ज्ञानं संज्ञि ज्ञानं यथा पूर्वान्दे गां दृष्ट्वा पुनरपरान्दे प्रत्याभिजानीते असां गौरिति अप्पणेत्यादि प्राग्वन् अहं सरामीनि अहं स्पराभि अमुकोहे पूर्वभवे आसं सुदर्शनादिवन्.इति ॥ २ ॥

सुमिणेत्यादि स्वप्न दर्शनं यथा भगवतो चर्द्धमानस्वाभिनः मङ्गलानिवादिनं स्वप्न फलं तथा. अथ म्ही वा पुरुष वा एकां मह-

नी इव पंक्ति आद्या तद्यन्ति यथातथ्य फलं स्वप्नं दृष्टुं ज्ञानि स्वप्नं  
 न ज्ञानः परमात्मिकी जातिरुक्तुं चिन्ता उत्पद्येत ॥ इति टीका ।

टीकाः—नकारि यो न न् अर्थात् ज्ञान, दर्शन, चारित्र्य,  
 स्वर, समाधि वाले और धर्म पुरुषार्थान को ध्याने वाले ऐसे  
 सुनियों के अग्र कथन करने स्वल्प जिनका ऐसे दया विना  
 समाधि के स्थान पूर्व नहीं उत्पन्न भये ऐसे वह उत्पन्न होये,  
 ऐसे सुखा विशिष्ट जो निग्रंधुनि और निग्रंधी साध्वी विनकी  
 धर्म विना धर्म नामस्वभाव विमर्शी चिन्ता अर्थात् जीव द्रव्य-  
 विनाशक चिन्ता कैलीक चिन्ता यह जीव द्रव्य अजीवद्रव्य नित्य  
 है कि अनित्यहै, स्त्री है कि अस्त्री है, इत्यादि न्य चिन्ता,  
 अस्य दुष्पण पुष्पति, इति पूर्ववत् नित्य धर्म जानने को अथवा  
 धर्मचिन्ता जैसे जैन अतिरिक्त संपूर्ण दुःखमयहै अर्थात् शोभा-  
 यमान नहीं है, अनिर्वाहक अर्थात् अपने कथन को सिद्ध नहीं  
 कर सके ! पूर्ववासर विरुद्ध ऐसे अतः इसी कारण ने संपूर्ण  
 धर्मों के विषय जिन वर्तान धर्म है सो ही शोभायमान है, १ ।

सर्वा इत्यादि, सम्यग् जानानीति संज्ञः अच्छी तरह ये  
 जो ज्ञाने उसको संज्ञ कहने हैं, जिसको जो ज्ञान उनको  
 संज्ञीक ज्ञान कहेंगे हैं, जैसे ज्ञानः ज्ञान गौ देख करके फिर साथ  
 काल में जानता है कि यह गौ है, अथवा इत्यादिक पूर्ववत्  
 में स्मरण करताहें कि पूर्वभद्र में अहक में होताभया सुदर्शना  
 दिक्ता की नाई ॥ २ ॥

सुमित्यादि स्वप्न दर्शान् जैसे श्री भगवान् ब्रह्मज्ञान  
 स्वामी वा भगवती जी में प्रतिगहन यानि कथन किया जैसे  
 अथ सीको वा पुत्रा को एक बड़ी घोड़ी की एक यथाथ्य



सूत्र-आदातच्चं तु सविणं, खिपं पासति, संबुडे ससव्वंवा, उहंत  
गति, दुखा, दोयवि, मुचति ॥ इति ॥

अस्यार्थः—आदातच्चं के०- यथातथ्य ते- सुविणं. के०-  
स्वप्नएतलै सफल एहवो स्वप्न । खिपं. के-’ तेतत्कालइ पास-  
ति के०’ देखइ-संबुडे के०’ संवर द्वारनोधनी साधु- सव्वं’  
वाउ, हतरंति. के०. सर्वते निखशेष एहवो शोध कहिए संसार  
समुद्रनी परे समुद्र अपार एहवा संसार समुद्र नइतरई एतले  
पुनरपि संसारी न थाय. कर्मना अभाव धकी दुखादोय के०’  
दुख ते शरीरी मानतीथ की विमुचति के०’-मुकाइ अथवा  
विविध प्रकारना दुख धकी मुकाइ ॥ इति सूत्र गाथार्थः ॥

अब देखिये देवानुमिया जी श्री भगवंत ने फरमाया कि  
यथातथ्य स्वप्न के देखने से मुनि संसार समुद्र को तिरै  
और दुख रहित होवे यह सूत्र के मूल पाठ में कहा. तो हे  
भव्यो! अब तो विचार लो कि ऐसे मोक्ष फल के देने  
वाले स्वप्नों को मोह कर्म के उदय में कह के श्री भगवंत म-  
हावीर प्रभु ने यथातथ्य दश स्वप्न केवल ज्ञान लाभादि के  
देने वाले देखे, तिसमें तुम परमेश्वर को चूके या पाप लगने  
का महा भयंकर आल चढा के तीर्थंकर भगवान् की आशा-  
तना क्यों करते हो ? भाई संसार का भय होवे तो अब भी  
छोड़ दो तथा इस चित्त समाधि की तीसरी गाथा की वृत्ति  
यानी टीका में भी ऐसा खुलासा है कि ऐसे चरम तीर्थंकर  
वर्द्धमान स्वामी ने दश स्वप्ने देखे और तत्काल फल को प्राप्त  
हुए और संसार समुद्र का तिरके मोक्ष प्राप्त होने का फल  
को प्राप्त हुए सो टीका लिखने हैं सो मुनिये ।



तथा च श्रीका - अहानमिति यथानध्यमवि संवादि फलं  
 एतत्तथा तद्वर दिव्यवृत्तमे गथा चर्षे तीर्थे कृता दश स्वप्नादृष्टाः  
 विद्वेषर फलम अति तथा निरं फलदं पश्यति संवृतात्मा निरुद्धा  
 नारदः । सर्व विभावगेण न शब्दः स्वगतानेक भेद सूचकः शोच  
 शात्त नून मरुद ममार समुद्र विव समुद्रं श्रवाण पारं एवं  
 विद्वेषरं न पुनः संसारी भवति दुःख दो यति दुःसादृशः  
 न सादृशः शरीर मानपिच्छाद्वि विधानेक पुहागमु  
 चोरे ॥ इति साधारणः ॥

अथ दोषाः - अवि संवादि मो फलं यानी सारं ई  
 फल विवहा उगका यथानव्य कहते ई अंत चर्षे तीर्थेकर ने  
 दन सादृश दन श्रं र मो छ फल माम दृष्ट्या तथा नगे ही शी-  
 छ फल दन यान गेमे स्वप्न दो देमना ई वद यान ई, मोरा  
 ई अ थरुद र विमन एमा पृथग फल रहा ई मराट विममे  
 एमा अमार समुद्र की र्षे नादि समुद्र नरीं मात ई पार दि-  
 यहा येन यथा समुद्र को दम प्रकार का अनुष्ठ विवता ई  
 दि. मेम र नई. दोता ई दुःख का उपादन करने वाला जो  
 दन अथरु जरीर र. एम का दुःख ज. वा अनेक मराट का  
 न. एम र विमम यह हाता ई ॥ इति टीकापि ॥

अथ दश स्वप्नादृष्टाः - न. शोचगरान् अहान्शरु स्वप्नाः  
 श्री द दृष्टाः न. शोचगरान् अहान्शरु स्वप्नाः  
 का विवहा उगका यथानव्य कहते ई अंत चर्षे तीर्थेकर ने  
 दन सादृश दन श्रं र मो छ फल माम दृष्ट्या तथा नगे ही शी-  
 छ फल दन यान गेमे स्वप्न दो देमना ई वद यान ई, मोरा  
 ई अ थरुद र विमन एमा पृथग फल रहा ई मराट विममे  
 एमा अमार समुद्र की र्षे नादि समुद्र नरीं मात ई पार दि-  
 यहा येन यथा समुद्र को दम प्रकार का अनुष्ठ विवता ई  
 दि. मेम र नई. दोता ई दुःख का उपादन करने वाला जो  
 दन अथरु जरीर र. एम का दुःख ज. वा अनेक मराट का  
 न. एम र विमम यह हाता ई ॥ इति टीकापि ॥

फल भगवंत कर्म तत्र श्रीग मोक्ष का श्रीमुच्य मे फलानि हैं.  
 तो फिर इनमें ज्यादा लाभदायक क्या फल है. जो बुद्धि में  
 विचार के परमेश्वर की छाया तथा का लोडना उचित है. श्रीग  
 इसी विल समाधि में सर्व्वी धर्म १ जातिस्मृत्यु ज्ञान २  
 यथातथ्य स्वप्न ३ देवदर्शन ४ अक्षयिज्ञान ५ अक्षयिदर्शन ६  
 मनः पर्यवृत्ति ७ वेदलक्षण ८ वेदलक्षण ९ वेदलक्षण १०  
 यह दश गोल फल हैं. तो फिर दर्शन में एक तो दृग् और  
 ६ अक्षयि धर्म ही बुद्धिमान् मनमानी बनना करे. अक्षयि  
 कभी नहीं करे. और श्रीभगवंत ने दर्शा दीशो का भाव  
 समाधि धर्म शुद्ध ध्यान में फलपाये है वैसी ही श्रेष्ठ और जो  
 अपने सुखी में यथातथ्य स्वप्न विल समाधि को सिद्धान्त  
 में विरह में ह कर्म के उदय में या भगवंत का पृष्ट जानें में  
 धर्म. उभया विनाइ अपने सुखी में समझे जो कि ऐसी  
 विरह धारणा दगा वैसी बुद्धि वाले का फल है.

पुनरुक्त यह विचार हमें सुखी करेगा कि भगवंत ने जो  
 धर्म देयक में धर्म मन में ह क उभयों का ह फल है  
 धर्म धर्म धर्म १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० ३१ ३२ ३३ ३४ ३५ ३६ ३७ ३८ ३९ ४० ४१ ४२ ४३ ४४ ४५ ४६ ४७ ४८ ४९ ५० ५१ ५२ ५३ ५४ ५५ ५६ ५७ ५८ ५९ ६० ६१ ६२ ६३ ६४ ६५ ६६ ६७ ६८ ६९ ७० ७१ ७२ ७३ ७४ ७५ ७६ ७७ ७८ ७९ ८० ८१ ८२ ८३ ८४ ८५ ८६ ८७ ८८ ८९ ९० ९१ ९२ ९३ ९४ ९५ ९६ ९७ ९८ ९९ १००

धर्म धर्म धर्म १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० ३१ ३२ ३३ ३४ ३५ ३६ ३७ ३८ ३९ ४० ४१ ४२ ४३ ४४ ४५ ४६ ४७ ४८ ४९ ५० ५१ ५२ ५३ ५४ ५५ ५६ ५७ ५८ ५९ ६० ६१ ६२ ६३ ६४ ६५ ६६ ६७ ६८ ६९ ७० ७१ ७२ ७३ ७४ ७५ ७६ ७७ ७८ ७९ ८० ८१ ८२ ८३ ८४ ८५ ८६ ८७ ८८ ८९ ९० ९१ ९२ ९३ ९४ ९५ ९६ ९७ ९८ ९९ १००



उत्तरपक्ष—हे भव्य देवदर्शन की महत्त्वता भी. श्रीभगवान् ने इसी दशाधुनस्कंध में पंचमाचित्त समाधिनामा अध्ययन में फुरमाई है सो मूलपाठ से दिखलाने हैं ॥

सूत्रगाथा—पत्ताइ. भयमाखस्म विवित्तं. सयखामणं, अप्य, हारस्स, दंतस्स. देवदेसेति. ताइणो. ॥

अस्यार्थः—पत्ताइ. भयमाखस्सके० अल्पमूलना अथवा जी.एणं तेह नइ सेवे एतले प्रांतना सेवनहार. विवित्तं. सयखामणं के०, स्त्री पशु पंडकर हित तथा जीव रहित सेवया जीव रहित आसन-अप्य, हरिस्स, दंतस्स. के०—अल्प आहार लेणहार नइ. इन्द्रीना दमण हारनइदेव, देसेति, ताइणो, के० देवगानो. दर्शन होइ छकायना रख पालनइ ॥ ४४ ॥ सू. दशा. अ. पंचमा. इति सूत्रार्थ

अब विचारो भाई! इस सूत्र पाठ में देवदर्शन का महत्त्वता श्रीभगवान् ने श्रीमुख से फुरमाई है, कि जो मुनि आन प्राप्त यानी अल्प मोल के वस्त्र पात्रादिकन का सेवन वाला और निर्वृद्ध उपान्तरा, यानी मकान या पाट पटले आसन के सेवने वाले और अल्प आहार के करने वाले और छ काय जीव की रक्षा करने वाले, ऐसे महामुनि को देवदर्शन होवे यह प्रगट देव दर्शन की महिमा सूत्र में श्रीभगवान् ने फुरमाई है. सो बुद्धिमान् श्रद्ध लेवो कि देवदर्शन भी चित्त समाधि धर्म प्राप्ति के दश बोल में से चौथे बोल में है.

पूर्वपक्ष—सिद्धांत में अत्रती को आन जाने की तारीफी अनुमोदनी करनी बर्नी है इसहेतु से देवदर्शन नी तारीफी क्योंकर होवे--

उत्तरपक्ष—हे भोलेभाई! आन जाने का तो कयन यहां है

ही नहीं, तो फिर तुम बिनाही विचारे तर्कना क्यों करते हो यहाँ तो देवदर्शन का हीज कथन है. आने जाने का नहीं.

उत्तरपक्ष—आने जाने बिना नहीं होवे परंतु आने जाने की प्रशंसा नहीं, देव दर्शन की प्रशंसा है. जैसे साधु का बंदना करने को गृहस्थलोग कोई पैर से चशके, कोई सवा करके, कोई स्नान करके आते हैं, क्योंकि आये बिना तो सा को बंदना होना संभव नहीं होता है, परंतु भगवान् तो महत्त्व यानी प्रशंसा, बंदना करने की हीज करी है, परंतु आने जाने की नहीं. सो सूत्र उत्तराध्ययनत्री का २६ मा अध्ययन दशमें बोल में कहा है सो मुनिये.

सूत्र—बंदण एणं, भंते, जीवे, किं जणइ; बंदण ए नीया; गोत्तं कम्मं, खावइ, उच्चा, गोयं, कम्मं, निबंधइ, सो षीणं, अप्पडिइयं, आणाफलं, निव्वत्तेइ, दाहिण, भावंच जणयति. ॥ १० ॥ इति सूत्रपाठः

अस्यार्थ—बंदण एणं, भंते, जीवे, किं जणइ; के० वां एणआचार्यादि कानी उचिन प्रतिपत्ति नइ करीवेकरी हे भगा जीव कींउं उपजावइबंदण, एणं, नीया, गोत्तं, कम्मं, खवे के० गुरु कहइ अथम कुल नइ विपे उत्पत्तिनु हेतु कारण. या नीचे गोत्र कर्म खावइ-उच्चा, गोयं; कम्मं, निबंधइ, के० इ तीर्थकर चक्रवर्त्यादिकन उकारण उच्चगोत्र कर्म अनिशय करी वांधइ सोइगां, चणं, अप्पडिइयं, आणाफलं, निव्वत्तेइ, के० यली सौभाग्य सर्व लोके नै सृष्टणीकषणु, कोई इणी न सकइ यह थूं आजा फल आजा सारपणुं निवर्तावइ उपजावइ दाहिण भावं, चणं, जणयति, के० यली दक्षण भाव भाई



पूर्वपक्ष-अगर हमारे गुरु जीतमलजी यथातथ्य स्वप्न को सावध कर्म नहीं मानते तो फिर हमारे गुरु टालचंदजी ने इनको ऐसी धारणा क्यों कराई कि राज देखना ही सावध कर्म है, क्या हमारे गुरु टालचंदजी की श्रद्धा हमारे गुरु जीतमलजी से विपरीत हो गई है, जो हमको हमारे गुरु जीतमलजी से विपरीत धारणा कराई.

उत्तरपक्ष-हे भैया ! तुम्हारे गुरु टालचंदजी की श्रद्धा तुम्हारे गुरु जीतमलजी की श्रद्धा से विपरीत हुई या नहीं जिसको तो तुम युद्धिमान होओ ता स्वयं समझ लेना. हमको तुम्हारे दिनाथ के नियम तुम्हारे गुरु जीतमलजी ने यथातथ्य स्वप्न को जैसा माना है वैसा तुम्हारा ग्रंथ भ्रमविध्वंसन में दिखाने हैं ध्यान लगा के सुनिये. भ्रमविध्वंसनपत्र ७६ मा पृष्ठ पर लिखा है ( टीकाकार पी.एण इम कथं दि संवृत रवेऽ विमोष्ट तरसंष्टर युष्ठा अथ वा ) इति टीका में पी.एण इम कथं मांसां सुपनो देयां तो संवृतां विशीष्ट अत्यन्त निर्मल प्रणाम नो पणी. संवृता. प्रणो. इति अत्यन्त निर्मल पारिप्रदान आर्था संवृतां सायां सुपनो दत्त कथं. इति भ्रमविध्वंसन का लेख.

यह देखो भाई तुम्हारे गुरु जीतमलजी ने तो माना कि अत्यन्त निर्मल पारिप्रदान मन्त्रि यथातथ्य यानी सत्य स्वप्न देखने को अत्यन्त निपत पारिप्रदान का कार्य तो सावध होता ही नहीं, क्योंकि सावध यानी सावध कर्म का कर्मका अत्यन्त निर्मल मन्त्रि क यामने काले को कर्मो नहीं होते तो सावध निपत इति. कि यथा तथ्य स्वप्न का देखना सावध कर्म नहीं. तः इ पृष्ठिन ना यह जग विवाग कि तुम्हारे गुरु टाल

तुम्हारी ही श्रद्धा कैसे हुई जो तुम्हारे गुरु जीवन्तुओं की श्रद्धा से विरुद्ध तुम को स्वप्न देखना ही साव्य कर्म में पानी पान कर्म में और मोहनी कर्म के उदय में बाधना कराना है बुद्धिमानों! न्यायवान् होवो, जो ज्ञान नाम खोल के झुठो दण्ड से विचारना- दूमरा यह भी लिखना विरुद्ध है कि भगवंत विशाचों को जीते, बरोहि सूत्र में तो ( राग, भई योग, हव, दिग्गयं, वात, पिनायं ) ऐसा पाठ है यहाँ तो एक विशाच को भगवंत ने जीता ऐसा लेख है और तुम्हें विशाचों पानी बहुत विशाचों को जीतना लिख दिया, यह जैन सिद्धांत में तुम्हें अति विरुद्ध लिखा, क्या जीतना भी कइ तरह का है सिद्धांत जटांग के चौंटे वाले का चौंया चंद्र में भी श्री महात्मा महावीरजी के ४०० सातु देवता मनुष्यों की प्रपञ्च को पराजय करने की अर्थोत् जीतने की सन्दिग्धारी मुनि कहे हैं जो कहे वे मुनि देवता मनुष्यों को जीते तो क्या बलेश करके जीते कि ज्ञानवत्त से ?

पूर्व पत्र-ज्ञानवत्त से जीते.

उत्तर पत्र-जो महावीर स्वामी ने भी विशाच को पराजय दिया ऐसा सूत्र में कहा परंतु बलेश करा ऐसा कुर अर्थ धीमदिक कही भी नहीं कहा, तो सूत्र से व्यतिरिक्त प्रत्यक्षा उनके भावना महावीरजी को बलेश करने का आज देना अच्छा नहीं, भगवंत ने तो विशाच को जीतने का स्वप्न देखा परंतु विशाच से बलेश दिया ऐसा स्वप्न = कही भा नहीं और यह भी विचारो कि उक्त पत्र में पत्र व का जीते, और केवल पत्र में उसी विशाच का जीतना यदादप्य स्वप्न में



कहा और यथातथ्य स्वप्न का देखना चित्त समाधि रूप में ध्यान में हो जेना, अनि महत्त्वता श्रीमुख में कही तो फिर भगवंत तो महत्त्वता कहते हैं आर तुम चूकना किम भगवान् का वचन में कहते हो और सिद्ध करने हो सो जरा बुद्धि में विचारो, और समुद्र का निम्ना रूप समुद्र का समान ऐसे समझना, कि कच्चा पानी का संघट्ट नहीं करना भी भगवंत ने फुर्माया और कारण में नहीं उतरने का भी विधिवाद श्रीभगवंत ने फुर्माया, तो भगवत के विधिवाद आज्ञा से साधु भी नहीं उतरने हैं और तुम भी साधुने में कुछ भी दोष नहीं उतरने का नहीं, निम्ना हा, तो फिर प्रत्यक्ष नदी उतरने से कच्चा पानी को उपमदने जाने में तो तुम साधु को चूकना नहीं शक्यता हो तो फिर भगवत तो स्वप्न में समुद्र तिर परतु सत्त्वन् समुद्र तिर नहीं, तो भगवत को चूके कहने में कितनी बड़ी आशातना दानी है नो सोच के अब भी बोलें देवो ?

पूर्वज्ञ-नदी का निम्ना तो साधु को कारण से है और विधि आज्ञा भी है परंतु समुद्र तिरण का क्या कारण है और विधि आज्ञा भी क्या है ?

उत्तर पक्ष-हे भिद्यो ! तुमने दश स्वप्नों का फल सहित सूत्रपाठ भगवतीर्जा का १६ मा शतक का छठा उद्देश में या टाण्णिक का दशमा टाण्ण से अच्छी तरह से शुद्ध समकितवंत विद्वान् गुरुमुख से सुना होता तो यह तर्कना नहीं उत्पन्न होती परंतु गैर अब भी सूत्रपाठ एकाग्रचित्त से मुनिये कि भगवंत का तिरने का स्वप्न और विशाच को जीतना रूप स्वप्न का

देखना सार्थक यानी परमार्थ सहित कहा कि निरर्थक कहा है सो सूत्रपाठ लिखते हैं सुनिये ।

सूत्र-जणं, समणे, भगवं, महावीरे. एगं, महं, योगरूवं, दित्तधरं, ताल. पिप्सायं. सुविणे. पराजियं, पासित्ताणं, पडिबुद्धे, तंणं, समणेणं, भगवया, महावीरेणं, मोहणिजे. कम्म, मूलह, ग्यातिडं. ॥ १ ॥ जणं. समणे. भगवं. महावीरे. एगं. महंसागरं, जावपडिबुद्धे, तंणं, समणेणं. भगवया. महावीरेणं, अणादीए. अणवदग्गे. जाव, संसार. कंतारे. तिणे इति सूत्रपाठः

अस्यार्थः-जणं, समणे, भगवं. महावीरे. एगं, महं. योगरूवं, दित्तधरं, तालविप्सायं, सुविणे. पराजियं, पासित्ताणं, पडिबुद्धे के जेह श्रमण भगवंत श्रीमहावीर स्वामी एक मोटा भयानक रूप दीप्ति धर ताल पिशाच प्रेत स्वप्न ने विषे जीतो एहवो स्वप्न ने विषे देखी ने जाग्या-तंणं. समणेणं, भगवया, महावीरेणं, मोहणिजे, कम्म, मूलओ, घातिओ, के तेह समान श्रमण भगवंत श्रीमहावीरे मोहनीय कर्म मूल धकी घात कीधो ॥ १ ॥ जणं, समणे, भगवं, महावीरे; एगं, महं सागरं, जाव, पडिबुद्धे. के जेह श्रमण भगवंत श्रीमहावीर स्वामी एक-मोटा सागर यावत् प्रति देखी जाग्या, तंणं, समणेणं, भगवया, महावीरेणं. अणादीए. अणवदगो, जाव. संसार, कंतारे, तिणे. के-तेह श्रमण भगवंत श्रीमहावीरे जेहनी आदि नहीं तथा जेहनी अंत नहीं यावत् संसार कानार तिरयो ॥ इति सूत्रार्थः ॥

यह सूत्र भगवतीजी और टाणांगजी में एकसाही कथन है इति ।

यहां सूत्र के मूलपाठ में कहा कि श्रीभगवान् पिशाच

कौं जीते जिस समान मोहकर्म को जीते और जो श्रीभगवान् समुद्र को तिरने निम समान श्री भगवान् संसार समुद्र को तिरने तो हे बुद्धिमानों ! जरा विचारो कि जिस स्वप्न के देखने में महाघोर जो मोहकर्म के जितने रूप और महा संसार रूप समुद्र तिरने रूप प्रयोजन है तो फिर इससे ज्यादा क्या कारण यानी परमार्थ श्रद्धे के प्रयोजन होता है सो जरा गंभीर बुद्धि से विचारो और यह भी खयाल करो कि एक ग्राम नगर या देश में रहने से प्रतिबद्ध का प्रसंग करके चारित्र्य मलिन होजाता है इससे चारित्र्य का निर्मलपना रखने के वास्ते. माधु नदी अर्थात् उतर काके भी विहार काजाते हैं तथापि भगवान् श्री भगवान् को उल्लापन नहीं करते हैं और अन्यथा विना कारण से माधु एक विदुषात्र भी अपकाम की अपमर्दना करे तो सूत्र नसीय जीका १२ मा उद्देश का ६ सूत्र में लघु चार्तुमास प्रायश्चित्त कहा है. तो विचारना चाहिये कि थोड़ी सी भी चारित्र्य की शुद्धि के वास्ते माधु नदी उतर जायतो दोष नहीं, तो फिर मात्र म्रज में समुद्र तिरने से संसार समुद्र को तिरजाय और मोक्ष का लाभ होवे उम परमार्थक स्वप्न को देखने में पाप लगना या चूरु जाना कहना कौन बुद्धिमान् का काम है. हा अन्यथा अपकाम का मघटा से चारित्र्य विराधना होती है. तैसे ही यथातथ्य स्वप्नके भिवाय विमलरूप जजाल में विराधना होती है परंतु भगवन्त जिस स्वप्न की महत्प्रता फुरमाई और प्रशंसा करी उममें किर्मा तरह से दोष विद्ध नहीं होता है.

पूर्वपक्ष-क्या आप नहीं जानते हो कि आवश्यक सूत्र में परमार्थ सिक्ताय की पाठी में ( सुयण, वक्तियाए ) ऐसा पाठ है.

इसमें प्रकट स्वप्न निद्रा में देखा होय तो मिथ्यापि दुर्लभ इमी पाटी के अन्त में है तो फिर स्वप्न देखना अच्छा यानी श्रेष्ठ कैसे होवे.

उत्तरपक्ष-हे भोले भाइयो! इसका अर्थ तुमने अच्छी तरह में जाना. मूलपाठ में भी तुम्हारी दृष्टी नहीं पहुंची. परंतु हम तुम्हारे दिव्य के लिये सूत्र पाठ सहित लिखते हैं तो सुनिश्चि ॥

सूत्र-आउत्त, मउत्ताए, १ मूयल, वचियाए, २ इच्छि, विपरियासियाए, ३ दिष्टी, विपरिया, निराए, ४ मल, विपरिया, मियाए, ५ फाल, भोयल, विपरियासियाए, इति ॥

अस्यार्थः—इस का अर्थ से भावार्थ देना है कि भांग से आहुत व्याहुत चित्त विभ्रनही १ स्वप्नमाई अनेक विष संज्ञाल देखने करि २ स्वप्न मांही छोकरे भांगों की बांझा ३ सूत्र का अर्थ स्वप्नमांही उत्पन्न होवे यानी सम्पत्काल नजर स्वप्न में होवे. ४ स्वप्नमांही जो विहार उपदान में वस्तु भोजन पान करना. अन्नपानीक वस्तु खाना पीना. यह पूर्वक वाणी स्तन में होवे. उनको मूयल, वचियाए ऐसे कहते हैं. यह अर्थ का भावार्थ लिखा. अइ टीका का भावार्थ संज्ञा में लिखते हैं. मयन जो लिखे सूत्र के ६ पद हैं निम्न आदि के २ पद यानी आउत्त, मउत्ताए, मूयल, वचियाए. इन दो पद की व्याख्या पीछे है और पीछे के चारपद यानी इच्छि, विपरियासियाए, १ दिष्टी विपरियामियाए, २ मल, विपरियामियाए, ३ फाल, भोयल विपरियासियाए, ४ इन चारपद की व्याख्या पहिले है.

इससे व्याकरण के नियमानुसार अच्छी तरह से श्रय होता है ( इच्छि, विपरियासियाए ) साधू को स्त्री नहीं सेवने योग्य है उसको सेवने के भावमें विपरियासिया, कहिए १ ( दिष्टि, विपरियासियाए ) स्त्रीका विपरीत पना करके दृष्टि विपरीत होय है.

( गण, विपरियासियाए ) दृष्टि विपरीत होने में मन विपरीत होता है मन स्त्री में नहीं रखणा. रखणसे विपरीत होय है. ३ ( पाण, भोयण, विपरियासियाए, ) जो मन की विपरीतता में नहीं विपरीत होवे तो उस विपरीतता करके पान भोजन में विपरीत होय है. रात्रि में अथवा दिन में अकल्पनीक या एक भक्त से अधिक या उपवास में भोग लिया तो पाण, भोयण, विपरीयास हुवा ( सुयण, वत्तियाए ) यह पूर्वोक्त काम नहीं करने योग्य स्वप्न में करलेवे उसको स्वप्नति यानी सुयण वत्तिया कहते हैं ५ ( आउल, माउलाए ) अति आकुलता करके साधू स्वप्न में काम भोग पर आकुला करे ऐसा मन स्वप्न में होवे उसको मिच्छामि दुकडा है. इति

इसकी मूलटीका आवश्यक जी सूत्र में देखलेना हमने यहां ग्रंथ गौरव के भय से संक्षेप से भावार्थ लिखा है अथ वृद्धिमान पुरुषों विचारों कि टीकाकारजी और टवाकार जी स्वप्न रीति से लिखने हैं कि विपरीत काम का स्वप्न यानी स्त्री आदिक का संमग करने में मिच्छामि दुकडा है तथा तुम्हारे भ्रमविचलन में भी इस विषय का ऐसा अर्थ किया है ( सुयण वत्तियाए ) कहनां सुपना में जेजालादिक देखवे करी तथा आगलकको ( पाण भोयण, विपरियासियाए ) कहनां सुपना में पाणी नो पीनां भोजन नो करवाने अनिचार नो मिच्छामि

दुकदो. इहां स्वपना जंजालादिक जूठा साधने थावना कहा  
है इति—

भ्रमविध्वंसन का पत्र ७६ श्रीली ३॥

ब्रह्म ! यह लेख देवके विचारना कि यथातथ्य स्वप्न का  
भगवंतने किमी सिद्धांत में प्रायश्चित्त नहीं कहा है. बल्कि  
नपत्रायांग भगवती. स्थानांग. दशाधुतस्कंध में यथातथ्य स्वप्न  
की भगवंतने प्रशंसा और संसार समुद्र तिरने का फल कहा है  
भावधर्मरूप चित्त समाधि में यथातथ्य स्वप्न कहा. और हे  
बाल मित्रो ! तुमने स्वप्न को एकांत नावश्यक में कह दिया.  
बाहरे मित्रो ! तुमारा भोल. पन. तुमने प्रत्यक्ष प्रमाण का भी  
हुद ख्याल नहीं किया. कि प्रत्यक्ष में कईक साधु थावक  
समष्टि को ऐन स्वप्न भी ध्याते है कि स्वप्न में गुरु महाराज का  
दर्शन किया. और गुरु महाराज का व्याख्यान सुन. किमीसाधु  
ने र. न में स्वाध्याय किया. किमीने नोकारगुणा. वही भई यह  
फाल नावध है कि निरवध है.

पूर्वपक्ष—गुरु महाराज का दर्शन करना. स्वाध्याय करना.  
नवकार स्मरण यह पाये तो निरवध है.

उत्तरपक्ष—तो हे भाई ! तुम तो पंथियों ने ऐना बयौकर  
लिय दिया कि नर स्वप्न नावध करे है. लक्ष्मण ने है कि  
ऐमी प्रत्यक्ष ज्ञान का भी तुमको ज्ञान नहीं हुआ. तो फिर  
सिद्धांत की बात को बरोकर समझ सकोगे और समुद्र तिरना  
विज्ञान का जीतना. नावध करे करके हो तो साधु का नहीं  
उत्तरना. साधु की जल में डूबी हुई को काट लाने. यह स्वप्न  
दालांग ५ का उक्त दुनग में कहातो. तो वही भाई यह प्रत्यक्ष

जल की उपमर्दन का कार्यनिरवध कहते हो कि सावध. अगर कहोगे कि इन कामों की सूत्र में आज्ञा है. इसमें निरवध है तो विचारो कि सूत्र में तो विधिवाद आज्ञा है. कि साधु कारण से नदी उतरे तो इस तरह से उतरना परंतु अवश्यमेव नदी को उतरनी ही चाहिये ऐसी आज्ञा नहीं. और चित्त समाधि को तो अवश्यमेव प्राप्त करने की सूत्र में श्रीभगवान ने एकांत आज्ञा फरमाई है. सो हमने ऊपर सूत्र के मूलपाठ से लिखा है. और यथातथ्य स्वप्न का देखना, चित्त समाधि को भीमुर से कहा है और हमने सूत्र के मूलपाठ से लिख दिया है सो समझ लो. भ. ई. कि मन्वन्त नदी उतरने से साधु को विराधिरुपना नहीं हो यथातथ्य स्वप्न को देखना तो भावधर्म चित्त समाधि का कार्य है तो ऐसे उत्तम कार्य में तो चारित्र्य का विराधना या चूड़ जाना मुनि कबे होवे ही कैसे. अपितु, कभि नहीं होवे. चेतो चेतो चेतो. अब भी सूत्र वचन श्रद्धो यही आत्मा का कल्याण है. इति तजो इटवाद भजो अपमार्द ॥ १ ॥

इतना सिद्धांत का पाठ सहित हमने खुलासा भव्य प्राणियों के हिनार्थ के लिये किया है तथापि दश स्वप्न का फल सहित पाठ सर्व भव्यों के लिये या जिनका भगवंत के स्वप्न देखने में चूक जाने की शंका है उनके लिये विस्तार से सूत्रपाठ लिखते हैं

सूत्र ॥ जणं, समणं, भगवं महावीरं' एणं, महं, घोररुवं, दिनधरं, तालपिसायं, मुविणं, पराजियं. पासित्ताणं, पडिबुदं, तंणं, समणं, णं, भगवया, महावीरेण, मोहणिज्जे, कम्मं, मूल उटवानिउ. ॥ १ ॥

जलं, समलं, भगवं, महावीरे, एगं, महं, सुकिलं, जाव, पडि  
 बुद्धे, तंलं, समलं, भगवं, महावीरे, सुकिलभाषां, वगए,  
 विहरइ ॥ २ ॥

जलं, समलं, भगवं, महावीरे, एगं, महं, चित्तचित्त,  
 जाव, पडिबुद्धे, तंलं, समलं, भगवं, महावीरे, विचित्तं, ससमय,  
 परसमय, दुवाल, संगं, गणपिडगं, आयवेति, पणवेति, पल-  
 वेइ, दंसेइ निदंसेइ उदंसेइ, तंजहा, आयारं, सृयगहं, जाव,  
 दिट्ठिवायं ॥ ३ ॥

जलं, समलं, भगवं, महावीरे, एगं महं दानदुगं, सव्वरयणा-  
 मयं, सुविणं, पासित्तालं, पडिबुद्धे, तंलं, समलं, भगवं, महावीरे,  
 दुविहे वन्मं, पणवेइ, तंजहा, आगार, थम्मवा, अणगार, थम्मं,  
 वाः ॥ ४ ॥

जलं, समलं, भगवं, महावीरे, एगं, महं, सेयं, गोवग्गं,  
 जावपडिबुद्धे, तंलं, समलं, भगवं, महावीरस्य, चाउछाईं,  
 समलसेयं, पणवेइ, तंजहा, -समलउ, समलीउ, सावियाउं,  
 सावियाउं ॥ ५ ॥

जलं, समलं, भगवं, महावीरे एगं, महं, पउमसरं, जाव-  
 पडिबुद्धे, तंलं, समलं, जाव महावीरं, चउत्विहे, देव, पजावेइ,  
 तंजहा भवणवासीः वाणामंवर, जोइसिए, वेमाणिए, ॥ ६ ॥

जलं, समलं, भगवं, महावीर, एगं, महं सागरं, जावपडि-  
 बुद्धे, तंलं, समलं, भगवया महावीरेणं अखादीए अणवदुगोः  
 जाव संसार कंतारे तिले ॥ ७ ॥

जलं, समलं, भगवं, महावीरे, एगं महं, दिणवरं, जाव-



पडिबुद्धे, तंणं समणस्स भगवउ, महाविरस्स, अणंते अणुत्तरं  
जाव केवल वरणाण दंसणे, समुप्पण ॥ ८ ॥

जणं समणंणं जान वीरेणं एणं मंइं हरिय वेरुलिय जाव  
पडिबुद्धे तंणं समणस्स भगवउ महावोरस्स उराला कित्तिवण  
सदसिलोयास देव मणुया सुरे लोणे. पग्भिभवन्ति, इति, खलु-  
समणे भगवं, महावीरे इति खलु० २ ॥ ६ ॥

जएं, समणं, भगवं, महावीरे, मंदिरे, पव्वए, मंदिर, चूलियाए,  
जाव, पडिबुद्धे, तंणं, समणं, भगव, महावीरं, सदेव, मणुया,  
सुराए, परिसाए, मज्झगए, केवली, धम्मं, आशेवइ, जाव,  
उवदं, सेइ, ॥ १० ॥ इति सूत्रपाठ : ॥

सूत्र ठाणांग का दशवां ठाणा का यह पाठ है. और भग  
वती जी का १६ मां शतक का छठा उद्देश में भी ऐसा ही  
पाठ है. इसका अर्थ सुगमही है. तथापि संक्षेप से लिखते हैं.

जो भगवंत स्वप्न में पिशाच को जीता. तिस समान भग  
वंत ने मोहकर्म को घात किया ॥ १ ॥ अरु जो भगवंत उज्ज  
लपंखवाला कोकिल पत्नी स्वप्न में देखा. तिस समान भगवंत  
शुक्र ध्यान में अरूढ हो के विचरे. ॥ २ ॥ अरु जो भगवंत  
विचित्र विचित्र पंखवाला कोकिल पत्नी स्वप्न में देखा. तिस  
समान भगवंत ने विचित्र स्वसमय के पर समय के भाव यानी  
कथन सहित द्वादश अंगरूप आचार्य की सिद्धांत की पंटी  
मरूपी. आचारांग से ले के यावदृष्टि वाद पर्यंत ॥ ३ ॥ अरु  
जो भगवंत एक रत्न की माला का युगल यानी जोड़ा स्वप्न में  
देखा. तिस समान भगवंत ने दो प्रकार का धर्म मरुपा-आगत  
धर्म, और अणुगार धर्म ॥ ४ ॥ अरु जो अणु भगवंत ने

नगं यानी गायें का यूय देखा. तिस समान भगवंत ने  
 कीर्णानादि गुण करके युद्ध वरण श्रमण संघ प्ररूपे साधु  
 ध्वी, श्रावक, श्राविका. ॥ ५ ॥ अरु जो भगवंत १ मोटा  
 नरवीर स्वप्न में देखा. तिस समान भगवंत चार जाति  
 देवता प्ररूपे. भवणपति, वाणमंत्रा, ज्योतकी, विमाणिक.  
 ६ ॥ अरु जो श्रमण भगवंत महावीर जी एक मोटा समुद्र  
 नैक कलोलों से संकीर्ण को भुजा से स्वप्न में तिरे. तिस  
 समान भगवंत अनादि अनंत दीपि चतुर्गति रूप महाश्रणव यानी  
 सार समुद्र को तिरे ॥ ७ ॥ अरु जो भगवंत एक मोटा दिन  
 र यानी सूर्य करणों करके देदीप्यमान स्वप्न में देखा. तिस  
 समान भगवंत को जिसका अंत नहीं, प्रधान ऐसा केवल ज्ञान  
 केवल दर्शन उत्पन्न हुआ ॥ ८ ॥ अरु जो भगवंत एक  
 मोटा वैदूर्य रत्नमय मानसोत्तर पर्वत को अपनी आंता से एक  
 रीचीटा, अनेक वीरवीटा, ऐसा स्वप्न देखा तिस समान भग  
 वत की उदार प्रधान तीन लोक में कीर्ति फैली ॥ ९ ॥ अरु  
 जो श्रमण भगवंत महावीर स्वामी, एक मोटा मेहगिरि तिसकी  
 ल का ऊपर सिंहासन पर आप बैठे हुए स्वप्न देखा. तिस  
 समान भगवंत देवता मनुष्यों की प्रपदा में बैठके धर्मोपदेश  
 करे भये. ॥ १० ॥ इति संज्ञेय स्वप्नार्थ. अत्र विचारो र बुद्धि  
 यानों की भगवंत के स्वप्न में देखने में कैश्री महत्त्वता की श्लाघा  
 और प्रधानता है कि जिन स्वप्नों को रात्रि के विषे देखें और  
 दिन में केवल ज्ञान को प्राप्त हुए हैं क्योंकि सूत्र के पाठ में  
 कहा कि द्वापयपने की देली रात्रि में ऐसे ऊपर लिखे हुना  
 केवल केवल ज्ञानादि महत्त्व फल का महास्वप्न आये हैं तो है

भाई ! अचरती चेत जावो, चेत जावो, सूत्र में, टीका में, अर्थ में, भगवंत के स्वप्न मोहकर्म में या चूक जाने में कहीं भी नहीं का है, तो हे मित्रों यथातध्यस्वप्न को देखने से भगवंत को चूक जाने कहने रूप महापाप से बचजावो यह हमारा हितपूर्वक नम्रता से चेत कराना है ।

पूर्वपक्ष—क्या यथातध्य स्वप्न देखने से संसार समुद्र के तिर जाय और तिर जाय तो फिर संयम लेने का क्या प्रयोजन है ?

उत्तरपक्ष—भाई यथातध्य स्वप्न में समुद्रादि तिरने से संसार समुद्र भगवंत तिर गए, ऐसा कथन मूल पाठ से दिस चुके और अर्द्धत गणधरजी महाराज जिस बात को कह चुके तो फिर सिद्धांत का मूल पाठ को छोड़ के विपरीत बात के युद्धिमान् तो कभी नहीं उठावे, और संयम लेने का क्या प्रयोजन है यह भी भोले भाई का विपरीत तर्क है क्योंकि प्रथम तो हम ऊपर कथन ही कर आए हैं कि सूत्र दशाधुत स्कंध के पंचमे अध्ययन में वैसे गुणवंत साधु साध्वी के वैसे स्वप्न आता है और जो समुद्रादि तिरने का यथातध्य स्वप्न देखेगा, वह निश्चय संयम लेवेगा और संयम लेवेगा वह ही स्वप्न वैसे देखेगा दूसरा सामान्य पुरुष या स्त्री वैसे स्वप्न नहीं देखेगा सो फिर हम तुम्हारे हित के लिये सूत्र भगवती जी का शतक १६ मा उद्देश छटा में स्वप्न का माहात्म्य चला मा लिखने ह. श्री वा पुरुष स्वप्न के मध्य में घोड़ों की पंक्ति दम्तियों की पंक्ति दंगना हुआ उनके ऊपर चढ़ा ऐसा अपने आत्मा को मान यानी उनके ऊपर चढ़ गया ऐसा देख

के तन्काल जाग जावे तो वह उसी भव में मोक्ष जावे १. ऐसे ही कोई पुरुष या स्त्री स्वप्न में एक रस्सी पूर्व पश्चिम में लंबी दोनों तरफ समुद्र में फसी ऐसी देखके उसको इकट्ठी करे. इकट्ठी मँने करली ऐसी निश्चयना देख करके उसी ज्ञान में जागे वह पुरुष उसी भव में मोक्ष जावे २. ऐसे ही स्वयं रस्सी का छेदना देखे. यानी रस्सी का मँने काट डाली ऐसा स्वयं देखे वह भी उसी भव में मोक्ष जावे ३. ऐसे ही पंच वर्ण का सूत्र को उखले सुल जाय ऐसा स्वयं देखे तो वह उसी भव में मोक्ष जावे ४. ऐसे ही लोहे ताँबे तलु वा शीसा इनकी राशि को देखे उनपर चढा हुआ माने यानी उनपर में चढाया ऐसा स्वप्न देखे वह दो भव करके मोक्ष जावे ५ ऐसे ही सुवर्ण. रूपा. रत्न. वज्र. इनकी राशि पर स्वयं चढा हुआ स्वप्न देखे वह उसी भव में मोक्ष जावे ६. ऐसे ही घास काष्ठ. गोबर इनकी राशि का और कंचर की राशि को बिखेरी हुई देखे यानी पूर्वोक्त राशि को मँने बिखेर डाली ऐसा स्वप्न देखे वह उसी भव में मोक्ष जावे ७ ऐसे ही अनेक प्रकार के स्तंभ को मँने उखाड़ डाले ऐसा स्वप्न देखे वह उसी भव में मोक्ष जावे ८ ऐसे ही दूध. दधि. घृत. मधु. इनके घड़े को स्वयं तोका हुआ स्वप्न में देखे वह पुरुष उसी भव में मोक्ष जावे ९ ऐसे ही मंदिरा का घड़ा चर्ची का घड़ा उनको स्वयं फाँडे ऐसा स्वप्न देखे वह पुरुष दो भव से मोक्ष में जावे १० ऐसे ही पद्ममगंवर फूलों में छाया हुआ आप तिरा ऐसा स्वप्न देखे वह पुरुष उसी भव में मोक्ष जावे ११ ऐसे ही एक मोटे मगंवर में मँने डों कले लों सहित स्वप्न में देखे



उदय में है. परन्तु स्वप्न दर्शन मोह कर्म का उदय कोई सिद्धांत में नहीं कहा है. वस इतने लेख का सारांश यह है कि स्वप्न मोह कर्म में नहीं. अपितु जयोपशम भाव में है. और नेइन्द्रिय यनिज्ञान का भेद में है. सो सूत्र से सिद्ध किया. और स्वप्न देखने से भगवंत को चूकना कोई प्रमाण से सिद्ध नहीं होता है. और बहुत सिद्धांत पाठ से सिद्ध किया है सो सज्जन पुरुष समदृष्टि ने समझ लेना. इति स्वप्न का यथार्थ निर्णयः ॥

पूर्वपक्ष-हमने और भी कारण चूक जाने के विषय के प्रश्नोत्तर के पृष्ठ पहिले में कहे हैं. प्रथम प्राणातिपात जीव की हिंसा कर लेवे १ दूसरा मृषावाद झूठ बोल लेवे २ तीसरा चोरी कर लेवे ३ चाथा शब्द. रूप. रसगंध. स्पर्श. में रतिभाव मान लेवे. ४ पांचवा पूजा श्रायामें हर्ष लावे. ५ छटा सावध आहारादिक भोग लेवे. ६ सातवां प्ररूपणा के अनुसार नहीं चले. ७ इन मान बोलों से साधु तद्रथ कहा जाता है ) यह हमारा लेख है और भगवंत भी तद्रथ ये चूक जावे उसमें क्या अन्वय है.

उत्तर पक्ष-हे अन्य बुद्धिवाले भिक्षो तुम्हारा प्रथम कारण स्वप्न देखने से ही चूकना किमी सिद्धांत से सिद्ध नहीं हुआ तो दूसरा तो होवे ही कहा में तथापि हम तुम्हारे हित के लिये उनका भी उत्तर लिखते हैं ध्यान लगा कर सुनिये. प्रथम तो हमारा पृथना भगवंत महावीर स्वामी का था. और हमने तद्रथ का चूक जाना बतलाया और भगवंत को चूक जाना बतलाया. पर एने एना किमी बुद्धिमान ने किमी साधु महा पुण्य भगवंत की आज्ञा में बतने वाले के मुक्त बतने किये कि यह



पापी ही तुमको मानने पढ़ेंगे तो फिर तुम्हारे द्दयस्थ गुरु जी को साधु कैसे मानत हो. सो तुम तेरे पंथीजीजरा मध्यस्थता से विचार लीजियेगा और सर्व द्दयस्थ मुनि को तुम सात बातों के सेवने वाले या चूक जाने वाले मानोगे तब तो तुम को एक श्री महावीर प्रभु जी को द्दयस्थ अवस्था में चूके मानने से फिर तुम को ऋषभदेव जी आदिक तेईस तीर्थंकर परमेश्वर भी द्दयस्थ अवस्था में रहके पीछे केवल ज्ञान पाए हैं तो उनको भी द्दयस्थ अवस्था में तुम को चूके श्रद्धेने पढ़ेंगे अगर फिर मतपक्ष के लिये ऐसी विपरीत श्रद्धा करके सर्व द्दयस्थ तीर्थंकर भगवान् को चूके मान लेवांगे तब तो तुम सर्व तीर्थंकर भगवान् की आशातना करण के भागी बनने से अनंत संसार में परिभ्रमण करने रूप आंग दुर्लभ बोधरूप महा मिथ्यात्व मोहनी कर्मबंध का हासिल करने वाले ठहरोगे सो जरा जन्म मरण का भय होवे तो तुम तेरेपंथी विचारना.

पूर्वपक्ष—जब सात प्रकार से द्दयस्थ जानना ऐसा सूत्र टाणांग जी में कैसे कहा ?

उत्तरपक्ष—भाई सिद्धांत के दचन तो अनेकांत और सापेक्ष हैं सो सिद्धांत का आशय तो यह है कि यह सात कार्य द्दयस्थ को लागे परन्तु केवली को नहीं तो जो द्दयस्थ हिंसादिक करे उसको उस पाप का भागी कहना. परंतु सर्व द्दयस्थ मुनि पूर्वोक्त सात कार्य के कर्ता नहीं सो हम तो टाणांग जी के वाक्य को ऐसे श्रद्धेव हैं और तुम को भी ऐंस हीन भद्र के श्री भगवान् महावीर जी की आशातना छोडनी



उचित है नहीं तो तुम्हारा श्रद्धा से छद्मस्थ पत्र में साधुग ही नहीं ठहरेगा सो विचार लीजियेगा.

पूर्वपक्ष-हम ने प्रश्नोत्तर के तीसरे पृष्ठ की पहली पंक्ति ले के २५ मी तक लिखी है जिसका मतलब यह है कि गौतम स्वामी जी महाराज आनंद श्रावक को अवधिज्ञ विषय का उत्तर देने में चूके हैं विचारियें जैसे केवल ज्ञान प्रथम श्री भगवान में ४ ज्ञान थे और गौतम स्वामी ४ ज्ञान लेते चूके हैं तो वैसेही श्री भगवान् के भी छद्मस्थपत्र में चू जाने का असंभव नहीं यह हमारा लेख है इसका प्रत्युत्तर क्या है.

उत्तरपक्ष-हे मित्र यह तुम्हारा लेख विभ्रम है. क्योंकि गौतम स्वामीजीका खलाने का दाखला देके श्रीभगवान् चूके कहना अति अज्ञानता का काम है. क्योंकि गौतमस्वामीजीको और श्रीभगवानका सदृशपना नहीं है सो देखो श्री भगवान तो देवलोक से चबके गर्भमें आये तहांभी तीन ज्ञान सहित आये. और दीक्षा लेतेही चौथा ज्ञान उत्पन्न हुए वैसे गौतम स्वामीको दीक्षा लेने से चौथाज्ञान उत्पन्न नहींहुं और ३ ज्ञान सहित गर्भ में भी नहीं आये और भगवान् कल्याणतीर्थ और गौतमस्वामी स्थिवर कल्पी. तथा भगवान् स्वयंशुद्धि और गौतमस्वामी भगवानके उपदेश से बोध पाये इत्यादिक श्री भगवान के और गौतमस्वामीजी के बहु विषय का फर्क है सो गौतमस्वामीजी के खलाने से श्रीभगवान को चूके कहना. महामिथ्यात्व का प्रताप है तथा यह भी विचारो कि प्रथम तो गौतमस्वामीजी आनंद श्रावक को उच

देने में खलना पाये तभी भगवंतने उनको खलना बतलाई। परन्तु गौतम स्वामीजी की खलना से श्रीभगवंत की खलना जिस पाप से बनाते हो। क्या यह नियम है कि एक ४ ज्ञानवाला खलना पावे तो वैसे सर्वही ४ ज्ञानवाले खलनापावे इस गोलमाल लेख से तो पूर्वोक्त द्वायस्थ का समुच्चय कथन में भगवन्त को चूक जाने कहने में जो दोष आते हैं। वैसे यहाँ भी आते हैं सो यह कहना बिल्कुल अनुचित है क्योंकि गौतमस्वामीजी को तो आनन्दका सम्बन्ध से खलना होने से ही खलना कहा है परन्तु श्री भगवान में तो कोई खलनाका कारण किसी सूत्र में नहीं है तो फिर तुम क्योंकर द्यानीचलाकर परमेश्वर दोष टहराने दो और स्वप्नको कारण बतलाया वह तो बिल्कुल जैनसिद्धान्त से विरुद्ध है सो हम ऊपर अच्छी तरह से सूत्रपाठ सहित खुलासा कर चुके हैं।

पूर्वपक्ष—स्वप्नके सिवाय औरभी तीन कारण हमने भगवंत के प्रश्नोत्तर के चोथे पृष्ठ की तीसरी पंक्ति में लेकर १३ पंक्ति तक लिखे हैं कि

( ग ) श्री भगवान महावीर स्वामी ने गौतमजी की टीका टीका यह बना भगवन्त सूत्र के १३ में जगह में है

( ग ) और श्री भगवान महावीरस्वामी ने गौतमजी की नित्यका छोट बतलाया और हमने भगवन्त वचनका छोट बतलाने के लिये उखड़ टाला यह बना सूत्र भगवन्त सूत्र के १५ जगह में है

( घ ) श्री भगवान ने त्रेणु गौतम लक्ष्य प्रकट करके गौतमजी की बतलाया। और लेखका जगह में जगह ३ उच्छृष्टा

उचित है नहीं तो तुम्हारा श्रद्धा से छद्मस्थ पन में साधुना ही नहीं ठहरेगा सो विचार लीजियेगा.

पूर्वपक्ष-हम ने प्रश्नोत्तर के तीसरे पृष्ठ की पहली पंक्ति में ले के २५ मी तक लिखी है तिसका मतलब यह है कि श्री गौतम स्वामी जी महाराज आनंद श्रावक को अविज्ञान विषय का उत्तर देने में चूके हैं विचारिये जैसे केवल ज्ञान में प्रथम श्री भगवान् में ४ ज्ञान थे और गौतम स्वामी ४ ज्ञान छूते चूके हैं तो वैसेही श्री भगवान् के भी छद्मस्थपने में चूक जाने का असंभव नहीं यह हमारा लेख है इसका मत्पुत्र क्या है.

उत्तरपक्ष-हे मित्र यह तुम्हारा लेख विभ्रम है. क्योंकि गौतम स्वामीजीका खलाने का दाखला देके श्रीभगवान् को चूके कहना अति अज्ञानता का काम है. क्योंकि गौतमस्वामी जीको और श्रीभगवानका सदृशपना नहीं है सो देखो श्री भगवान तो देवलोक से चबके गर्भमें आये तहांभी तीन ज्ञान सहित आये. और दीक्षा लेतेही चौथा ज्ञान उत्पन्न हुआ वैसे गौतम स्वामीको दीक्षा लेने से चौथा ज्ञान उत्पन्न नहीं हुआ और ३ ज्ञान सहित गर्भ में भी नहीं आये और भगवान के कल्पातीत और गौतमस्वामी स्थिर कल्पी. तथा भगवान के स्वयंवृद्धि और गौतमस्वामी भगवानके उपदेश से बांध पाये इत्यादिक श्री भगवान के और गौतमस्वामीजी के बहु विषय का फर्क है सो गौतमस्वामीजी के खलाने से श्रीभगवान को चूके कहना. महाभिध्यान्व का प्रताप है तथा यह विचारों कि प्रथम तो गौतमस्वामीजी आनंद श्रावक का उत्तर

देने में खलना पाये तथा भगवंतने उनको खलना बतलाई. परन्तु गौतम स्वामीजी की खलना से श्रीभगवंत का खलना किस पाप से घनाते हो. क्या यह नियम है कि एक ४ ज्ञानवाला खलना पावे तो वैसे सर्वही ४ ज्ञानवाले खलनापावे इस गोलमाल लेख से तो पूर्वोक्त ह्यस्य का समुच्चय कथन से भगवन्त को चूक जाने कहने में जो दोष आते हैं. वैसे यहाँ भी आते हैं सो यह कहना बिलकुल अनुचित है क्योंकि गौतमस्वामीजी को तो आनंदका सम्बन्ध से खलना होने से ही खलना कहा है परंतु श्री भगवान में तो कोई खलनाका कारण किसी सूत्र में नहीं है तो फिर तुम क्योंकर छातीचलाकर परमेश्वर दोष ठहराते हो और स्वप्नको कारण बतलाया वह तो बिल्कुल जैनसिद्धान्त से विरुद्ध है सो हम ऊपर अच्छी तरह से सूत्रपाठ सहित गुलासा कर चुके हैं.

पूर्वपक्ष—स्वप्नके सिवाय औरभी तीन कारण हमने भगवंत के प्रश्नोत्तर के चौथे पृष्ठ की तीसरी पंक्ति में लेकर १३ पंक्ति तक लिखे हैं कि

( ख ) श्री भगवान महावीर स्वामी ने गोशाला को दीक्षादी यह वार्ता भगवती सूत्र के १५ में शब्दक में है

( ग ) और श्री भगवान महावीरस्वामी ने गोशालाको निलका छोड़ बतलाया. और उनने भगवंतके वचनको अमन्य करने के लिये उखड़ टाला. यह वार्ता सूत्र भगवतीजी का १५ शब्दक में है.

( घ ) श्री भगवान ने त्रेषु गौतम लेख्य दण्ड करके  
 वा. और लेख्य फोगने में जयन ३ उच्छृष्टी



विवारत्रे गोमालो मंत्रालि पुत्र इपे संतोपसाम्यो ममं, निहुत्तो,  
 आनाहिले. पयाहिले. जाव. लमंसिचा. एवं, वयामी, के०  
 तुम्हें मने तीन बार जीमला पासा यीमदहिला इत्यादि वावन्  
 नमस्कार करी इम कहै-तुम्हें, भंते, मम, धन्नापरिया, अहलं  
 तुम्हें, अदेवामी: के० -तुम्हें वावपालंकारे. माहरा धर्मा  
 चापे हलं वावपालंकारे तुम्हारे शिष्य तहलं, अहं, गोयमा.  
 गोमालस्स, मंत्रालि, पुचस्स, एयमहं, पडिसुलेभि: के० विवारे  
 हूं हेगोयम गोमालानो मंत्राली पुत्र नो एहवा वचन सन्मल  
 वराहं, अहं, गोयमा गोमाले.लं, मंत्रालि पुत्रे.ल. सदि, पडिय  
 भूमीए: के०- विवारे हूं हे गोयम गोमाला मंत्रालि पुत्रे करी  
 सति मनोहर भूमिजाने विषे ए वामाहं, लाभ, अलाभ, सुहं,  
 दुःखं, सकार, मसकारं, पणु, एवमाणे, अणु, जामरियं.  
 विहारित्या, के० ए वर्षे लगे विहार कीषो लाभमते अलाभ  
 मते सुख मते दुःख मते, मन्वार मते अमन्वार मते अनुभव  
 मानता यथा अनित्य जगता अनित्य चिदा करता यथा  
 विचरता यथा. ॥ इति सूत्राणि ॥

अर देवो सूत्र में कहा कि गोमाले ने तीन बार मर्षना  
 करी नर चौथी बार की मर्षना ने भगवंत ने गोमाला को  
 अल किया. तो यहाँ तो बंटनादिक विधि मानकर करके  
 भगवंत अने करी है तो यह विनय का साम्यादिक तो योग्य-  
 पने का कार्य है तो अयोग्य पीछे हुआ है.

एवंच-इति सुत्रो ने अर विषमन के पत्र २२ पीठिका  
 को माली दो है कि ए अयोग्य ने भगवान् मर्षाकर करीते  
 अर्थात् भगवता मर्षिताना करे करी अने अनुसन्धान

५ क्रिया कही है यह वार्ता सूत्र पञ्चवर्णाजीके ३६ मा प  
इस कारण हम भगवंत को चूके कहते है.

उत्तरपक्ष-भगवंतने गोशाले को दीक्षादी इसमें क्याप  
हुवा सो भगवतको चूके कहते हां.

पुर्वपक्ष-जो गोशाले को दीक्षा नहीं देते तो २ साधु  
घात नहीं होती, और भगवंतपर तेजुलेरया भी गोशालाना  
मेलता और मिथ्यात्व भी नहीं बढता तो सर्व काम ऐसे  
योग्य को दीक्षा देने से हुए इससे चूके हैं.

उत्तरपक्ष-तो हे भोले भाई तुम ने सूत्र भगवती जी  
१५ मा शतक का मतलब अच्छी तरह से नहीं धारण कि  
तिसके प्रताप से शंका उत्पन्न हुई है. अब सूत्र का प  
सुनियं. गोशाला ने भगवान् से शिष्य होने की प्रार्थना की  
गोशाला कुपात्र तो पीछे हुवा है परंतु भगवंत ने दीक्षा  
उस वक्र कुपात्र नहीं था सो सूत्र पाठ से दिखाते हैं बि  
लगा के सुनिये.

सूत्र-तएणंसे, गोसाले, मंखलि, पुत्ते, इद्ध, तुट्ठे, म  
तिरकुत्तो, आयाहिणं, पयाहिणं, जाव, एमंसित्ताए, वंवापा  
तुप्भेणंभंते, ममं, धम्मापरिया, अंइणं, तुभ्यं, अंतवासी, तरा  
अइं, गोयमा, गोसालस्स, मंखलि, पुत्तस्स रायमट्ठं, पडिसुणो  
तराणं, अइं, गोयमा, गोसालेणं, मंखलि, पुत्तं, एंसाद्धिं, पणि  
भूमिए. इवासाइं, लाभं, अलाभं, सुइं, दुरकं, सकार, मसका  
पघाणुप्भवमाणे, अण्णिघ, जागरियं, विहरित्या, ॥ ३  
सूत्रपाठः ॥

अस्यार्थः-तएणंसे, गोसाले, मंखलि, पुत्ते, इद्ध तुट्ठे, म

तिवारते गोशाला मंत्वलि पुत्र हर्ष संतोपपाम्यो मम, तिर्कुत्तो,  
 आपाद्विं. पयाद्विं. जाव, एमंसित्ता, एवं, वयासी, के०  
 मुभे मने तीन वार जीमला पासा थीप्रदक्षिणा इत्यादि यावत्  
 नमस्कार करी इम कहे-तुम्भेणं, भंते, मम, धम्मायरिया, अहणं  
 तुम्भं, अतेवासी; के० -तुम्हेणं वाक्यालंकारे. माहरा धर्मा  
 चार्य हूणं वाक्यालंकारे तुम्हारो शिष्य तएणं, अहं, गोयमा,  
 गोसालस्त, मंत्वलि, पुत्तस्त, एयमट्टं, पडिसुणेमि; के० तिवारे  
 हुं हेगोतम गोशालानो मंखली पुत्र नो एहवो वचन स.म्भल्  
 तराणं, अहं, गोयमा गोसाले,णं, मंखलि पुत्तेणं, सद्धि. पाणिय  
 भूमिणः के०- तिवारे हुं हे गोतम गोशाला मंखलि पुत्रे करी  
 सहित मनोहर भूमिकाने विर्षे छ वासाइं, लाभ, अलाभ, सुहं,  
 दुरकं, सकारः मसकारं, पघणु. प्भवमाणे, अणय, जागरियं,  
 विहरित्था, के०' छ वर्ष लगे विहार कीयां लाभप्रते अलाभ  
 प्रते सुख प्रते दुख प्रते. सत्कार प्रते असत्कार प्रते अनुभव  
 मानवा यकां अनित्य जागीका अनित्य चिंता करवां यकां  
 विचरता यया. ॥ इति सूत्रार्थः ॥

अब देखो सूत्र में कहा कि गोशाले ने तीन वार प्रार्थना  
 करी तब चौथी वार की प्रार्थना से भगवंत ने गोशाला को  
 श्ररण किया, तो यहाँ तो बंदनादिक विधि नाचवन करके  
 भगवंत अर्ज करी है तो यह विनय का कारणादिक तो योग्य-  
 पने का कार्य है तो अयोग्य पीदि हुवा है.

पूर्वपक्ष-हमारे गुरुजी ने अत्र विध्वंसन के पत्र =२ पै टीका  
 की साक्षी दी है कि (ए अयोग्य ने भगवान् अंगोकार कीयोते  
 अस्वीण रागपणा करदिहना परचे करी स्नेह अनुकंपाना







सद्भाव थी अने छद्मस्थ छे ते माटे आगमीया कालरा दोषना अज्ञानवा यकी ) यह हमारा गुरु जी का कहना है तिसमे हम कहते हैं कि राग से गोशाला को दीक्षा देने से चूके सिद्ध होते हैं।

उत्तरपक्ष—हे भाई तुमने टीका की साक्षी बतवाई है परंतु टीका से भी भगवान् को चूरुना सिद्ध नहीं होता है तिसका हम खुलासा टीका लिखते हैं परंतु याद रखना कि हम द्वि आगाड़ी टीका की साक्षी बतलावेंगे बदलना मत कि हम टीका को नहीं मानते हैं. सुनिये टीका का खुलासा—

टीका—एयंमदं, पदिसुणेमिति, ॥

अभ्युपगच्छामि यच्च तस्याऽयोग्य स्यात्पभ्युपगमनं भगव-  
स्तदीक्षण राग तथा परिचयेनेपत्स्नेह गर्भानुकंपा सद्भावत्  
छद्मस्थनया. वानागत दोषा नवगमाद्वश्यं भावित्वा चैतस्यार्थ  
स्येति भावनीयमिति पणिय भूमि एत्ति. पणित्त भूमेरारभ्य  
मणीत भूमोवा. मनोज्ञभूर्मा विहृतवानि योगः । अणिव  
जागरियंति अनित्य चिंतां कुर्वन्निति वाक्यम् ॥ इति.

टीकार्थः—यह अर्थ मैंने प्रतिपुराया अंगीकार किया जो  
इस अयोग्य को भगवान् अंगीकार कियो. अक्षीणरागपणा  
करी. परिचय कष्टुक स्नेहगर्भ अनुकंपा सद्भाव से छद्मस्थ  
पना करके अनागत दोष का अज्ञानपना करके  
अवश्य भाविभाव से इतना अर्थ सम्बन्ध भावना करनी  
योग्य है मनोज्ञ भूमि के विषे विचरता हुआ अनित्य जागरण  
अनित्य चिंता कर्ता यका. ॥ इति ॥

अब वृद्धिमान विचारों कि इस सूत्र के पाठ अर्थ टीका में  
कहाँ भा भगवान् चूरु गये ऐसा नहीं कहा है तो फिर तुम्







की सरागता से सेवा करते गुरु सराग से शिष्य को ज्ञानादिक ग्रहण कराते हैं यह कथन सूत्रों में ठाम ठाम में है क्योंकि सराग संयमी जो जो धर्म विनायादिक सराग से ही करते है और भी हम तुम से पूछते हैं कि तुम्हारे माने हुए भीषमत्री से लगा के आज दिन तक के सर्व तुम्हारे गुरु एक दूसरे की व्यावचादिक सराग से करते कि वीतराग से या चेला करने को यानि तुम्हारे गुरु शिष्य करने को कई कोशा बंध जाते है यह सराग से चेला करने जाते हैं कि वीतराग से और व्याख्यान सुनाना गुरु की सेवा करनी एक दूसरे की बंदना करनी यह सराग से करते कि वीतराग से करते है क्योंकि वीतराग का जंघूनी महाराज के मोक्ष पधारे पीछे पंचमा और के जन्मे को विच्छेद है तो तुम्हारे गुरुजी सराग से चले करते कि वीतराग से इस पर तुम को कहना पड़ेगा कि राग से कदाचित तुम हठ करके नहीं कहोगे तो वीतराग पना से बनही नहीं सक्ता क्योंकि वीतराग पने का तो विच्छेद है ।

अब विचारो कि जो राग एकंतपाप में है तो तुम्हारे गुरुजी चले मूढने से थावक करने से राग भाव उत्पन्न हुआ तो यह राग पाप में है कि धर्म में है वाह ! रे मित्रो !! सूत्र की बात का परस्पर कुछ भी संबंध नहीं विचारते हो. और भी तुम लोगों को तुम्हारे साधुजी पूज्य के दर्शन करने का उपदेश देते हैं और आखड़ी भी दिलाते हैं कि पूज्यजी का दर्शन क्रिये बिना कुशिल रात्री भोजनादि नहीं सेवना. फिर तुम पूज्यजी के दर्शन करने को गाड़ी घोड़ा रेल आदि की सवारी, मे या पैरो से, जाते हो तो यह तुम्हारा पूज्यजी के

पास जाना राग से होता है. कि वीतराग से सो तुम वीतराग हो टाई नहीं किंतु सरागी हो तो सराग से जाना ठहरा तो तुमको पाप हुआ कि धर्म. और आखड़ी दिवाने वाले को क्या हुआ. तब तो भाई झूटपट बोल उठते हो कि हमारे गुरुजी का चेलादिक का मूँडना. या हमारे पूज्यजी का दर्शनादिक करना एकांत धर्म में है बाह रे बाह मित्रो तुम्हारी समझ का व्याख्यान कहां तक किया जावे कि आप का गुरुजी का सरागपने से चेले मूँडने में या परस्पर बंदनादिक सरागता से करने में धर्म और भगवंत श्रीमहावीर स्वामी ने थोड़ा सा राग का सद्भाव करके गोशाला को ग्रहण किया. ऐसा टीका का लेख से भगवंत को चूके कहना और पाप लगना बताना यह क्या अंधाधुंध लेख है. अफसोस है कि वर्तमान के अपने मनमाने पूज्यजी का ढंग पर भी कुछ नजर नहीं डाल के चार ज्ञानवान् भगवंत को चूके कहना और मनमाने को धर्मात्मा कहना विद्वान का काम नहीं है ।

पूर्वपक्ष—भगवान ने तो अयोग्य को ग्रहण किया इससे चूके कहते हैं और हमारे गुरुजी तो पहिचान करके चेले मूँडते हैं तिससे उनको चेला मूँडना धर्म में हैं ।

उत्तरपक्ष—हे भाई इस अयोग्य विषय का कथन तो हम पूर्व ही कथन कर चुके हैं तथापि फिर सुनो कि भगवंत ने गोशाला को ग्रहण करने समय में गोशाला अयोग्य हुआ कि छे वर्ष पीछे हुआ जो कहो कि ग्रहण करने समय में था तो बताइये कि ग्रहण समय में गोशाला की क्या अयोग्यता थी क्या शरीर का हीना था क्या अविनय से भगवान् के साथ



हुवा तो यह तो कभी नहीं सिद्ध होता क्योंकि ४ बार बहुत भगवान को बंदना करके प्रार्थना करी तब भगवंत ने ग्रहण किया और श्रीमुख से फरमाया कि हे गौतम गोशाला के साथ ६ वर्ष तक प्रणीत यानी मनोहर भूमि में धर्म ध्यान ध्याते हुए हम विचरे, तो विचारो कि ६ वर्ष तक तो श्रीमुख से फरमाया कि अनित्य जागरणा धर्म ध्यान करते हुए रहे तो निश्चय हुआ कि अयोग्य तो पीछे हुआ है इसी वारसे टीकाकारजी ने भी लिखा है कि अनागत दोष का अज्ञान पणा करके क्योंकि छद्मस्थ थे इससे टीका की साक्षी तुम्हारे गुरु जीतमलजी ने भी भ्रम विध्वंसन में ८२ मां पत्र पर लिखा कि ( छद्मस्थ द्वे माटे आगमीया कालना दोषना अज्ञान वां थकी कीषो ) इति भ्रमः ।

अब विचारो कि भाई जो भगवान ने आगमीया कालका अयोग्यपना को नहीं जान के ग्रहण कियातो इसमें २ बातों तो अच्छी तरह से सिद्ध होगई कि आगम्य काल में अयोग्य और अपगुणी हुआ तो वर्तमान काल में ग्रहण करती चक्र तो नहीं हुआ, द्वितीया वार्ता आगम्य कालका दोषका अज्ञान से ग्रहण किया तो इससे भगवंत में किसी प्रकार का दोष रहा ही नहीं क्योंकि भगवंत ने तो अच्छा जान के ग्रहण किया परन्तु आगम्य काल में पुरा हुआ, इसमें भगवान क्याही भगवंत ने तो उपकारही किया, और उपकारी उपकारकों और उमे उपकारमे कोई कृतघ्नो होजाने तो उस कृतघ्नो के दोष है परन्तु उपकारी को दोष किसी ज्ञान्य मे नहीं है क्योंकि उपकारी को तो यह स्वप्न ही नहीं कि यह आगम्य

काल में कृतघ्नो होवंगा. और यह तो तुमलोग और तुम्हारे गुरु मानते हो कि भगवंत ने गौशाला का आगम्य काल में दोष नहीं जाना. जिस से ग्रहण किया तो फिर अवगुण नहीं जाना तो अवगुण का प्रतिपक्ष तो गुण हुआ. और गुण जान के ग्रहण किया तो दीक्षा देने में चूके यहभी कहना मिथ्या ठहरा

पूर्वपक्ष—भगवान ने गौशालापर उपकार किया तो ऐसा कथन किस सूत्र में है.

उत्तरपक्ष—इसी भगवतीजीका शतक १५ वां में जिसवक्त्र गौशाला समव सरण आके भगवंत को अवर्णवाद बोलनेलगा तिसवक्त्र सर्वानुभूतिजी और सुनक्षत्रजी ने कहा. तथा भगवंत ने श्रीमुख से कहा कि हे गौशाला जो तथा रूप श्रमण मद्याण के समीपे एक भी आर्य धर्म सम्बन्धी सुवचनको श्रवणकरे वहभी सुनने वाला अपने धर्माचार्यको बाँदे यावत् सेवाभक्ति करे तो. हे गौशाला तुमने तो मेरे से ही दीक्षा पाई यावत् मेरे सेही बहु श्रुति हुआ. और मेरे से ही मिथ्यात्व पना अंगकार करता हँ- तिस वास्ते तू इस तरह मत होवे इति सूत्र भगवतीजी का मूल सूत्र शतक १५ वां से भावार्थ 'अव बुद्धि मानो विचारो कि छद्मस्थपन में भगवंत ने गौशालापर उपकार किया. और केवल पनमें कहा कि मैंने तेरे उपकार किया है और मेरे सेही मिथ्यात्व धारन करना नहीं चाहिये तो विचारा कि भगवंत ने तो उपकार किया है सो श्रीमुख से बतलाया परंतु भगवंत ने ऐसा तो नहीं कहा कि तेरे ऊपर उपकार किया सो घुरा काम किया या. तेरे वास्ते मैंने दोष

लगाया तो अनंत ज्ञानी उपकार करा कहे तो तुम उस काम को बुग कहके भगवान की आशातना मत करो. तथा तुम्हारे भ्रमविध्वंसन में भी पत्र ८४ मां पर लिखते हैं कि ( पहिली पृतजनभ्या विना कुपूत किम हुवे पृत यया कुपूत-हुवे. तिम शिष्य कीधा मूं शिष्य कुशिष्य हुवे इणन्याय गोशालो पैला शिष्य थयो छे तिवारे कुशिष्य कथा यो बली भगवती शतक नवमा उ. ३३ मां में कथा ( एवं, खलु गोयमा, ममं, अंत-वासी. कुसिस्से, जमाली, एमं, अणगारे ) इहां जमाली ने कुशिष्य कथो. ते पहिली शिष्य थयोहतो ते माटे कुशिष्य कथो तिम गोशाला पिण पहिला शिष्य थयो ते माटे गोशाला ने कुशिष्य कथो ) इति भ्रमविध्वंसनका लेख ॥

अब मुदिमानों विचारो कि तुम्हारा गुरु जी ने गौशाला जमाली को पहले शिष्य लिखे तत्पश्चात् मोह कर्म के उदय से दोनों कुशिष्य हुये हैं और दोनों को दीक्षा देने वाले भगवान हैं तो तुम या तुम्हारे गुरु जी मानते हो कि जमाली को दीक्षा देने में धर्म भगवान को हुवा तो गौशाला को दीक्षा देने में तुम ने पाप कहाँ से निकाला क्योंकि दोनों ही तो पहिले शिष्य हुये. और वह दोनों पीछे कुशिष्य हुए तो एक में तो धर्म और एक में पाप यह कल्पना कौन मुदिमान. करे अपितु सत्यवादी तो कभी नहीं करे दोनों ही काम भवितव्यता से हुए हैं और दोनों ही काम में धर्म है.

पूर्वपक्ष-गौशालाको शिष्य करा यह भवितव्यता में कहा है.

उत्तरपक्ष-हे भव्य यह तो भगवती जी की टीका में सुतासा लिखा है और तुम्हारे भ्रम विध्वंसन में ८२ मा पत्र



और अवश्य भाविभाव सो ग्रहण किया इतना टीका खुलासा है तो भी अर्थ नहीं किया खैर मनपत्र को छोड़ना मुश्किल है. परन्तु इस ग्रंथ का नाम भ्रम विध्वंसन स्वप्ना जो मध्यस्थपन से कोई विद्वान् इस ग्रंथ को देखे तो जरा मालुम पड़े कि यह ग्रंथ भ्रम को दूर नहीं करता है कि भ्रम को उत्पन्न करता है. अगर हम इस ग्रंथ की भ्रांति इटाल लिखें तो एक बड़ा भारी ग्रंथ बनजावे. जिससे यहाँ इ विषय का ज्यादा तर्क नहीं करते हैं यहाँ तो हमने गौशाले को ग्रहण भगवंत ने भाविभाव यानि होनहार से करा ऐसी टीका से और भ्रम विध्वंसन में लिखी हुई टीका से ही या हमने सिद्ध किया है और जैसे जमाली को भगवान जानें थे कि यह कुशिष्य होवेगा तो भी भ्रमिब्यपता यानी होनहार से परमेश्वर ने दीक्षा दी नैसेही गौशाले को भी होनहार से दीक्षा दी यह टीका से ही खुलासा हमने लिखा है तो भ्रम दीक्षा देने से भगवान चूके यह किसी तरह सिद्ध नहीं होता है

पूर्वपक्ष—जमालीजी को भगवंत ने फेवलपने में दीक्षा दी परन्तु गौशाले को तो छद्मस्थपने में किंचित् राग से दीक्षा से रागपना से चूके कहते हैं ।

उत्तरपक्ष—हम अभी ऊपर अच्छी तरह से सिद्धांत का पाठ सहित खुलासा कर आए हैं कि छद्मस्थ का तो गुरु के घेले पर और घेले का गुरु पर और भी धर्म विषय में सारा रहता ही है क्योंकि सराग संयम के सद्भाव से तो छद्म सराग संयमी अनंत मुनियों ने छद्मस्थ तीर्थकरों ने शिष्य किये है वह क्या चूकने में है तो तुम्हारे गुरुजी का भी घेले









के वास्ते ॥ इति दीक्षा देने से नहीं चूके इसका सत्य निर्णय  
 और जो तुम्हारी शंका है कि भगवान् गोशाले को दीक्षा  
 नहीं देने तो साधु की घात या मिथ्यात्व नहीं बढ़ता तो य  
 भी हमने टीका से ही खुलासा ऊपर कर दिया कि अवर  
 भाविभाव से भगवंत ने ग्रहण किया है जैसे जमाली को दीक्षा  
 दी उस समय भगवान् केवली थे और जानते भी थे कि  
 मिथ्यात्व का उदय इस को आवेगा और खोटा पंथ निकालेगा  
 तो फिर उसको दीक्षा क्यों दी तब तुम क्या उत्तर देना  
 भिवाय भवितव्यता के दूसरा उत्तर नहीं होवेगा. ऐसे ही  
 गोशाले को भवितव्यता से ग्रहण किया यह टीकाकारों  
 अच्छी तरह से खुलासा लिखते हैं संशय होवे तो टीका देत  
 के श्रद्धा शुद्ध करलेना केवल गुरुजी की लिखी कल्पना पर ही  
 भरोसा नहीं करना चाहिए. निर्पन्न होके जिनागम की प्रतीत  
 करोगे तो तिरांगे ॥ इति ॥

और भी तुम्हारा लेख है कि भगवान् ने गोशाले को  
 तिलका झाड़ ( पोधा ) बतलाया और उसने भगवान् के  
 वचन को असत्य करने के लिये उखेड़ डाला इससे तुम लोग  
 पृक्तन की शंका करने हो सो भी भ्रम का ही प्रताप है परंतु  
 भ्रम दूर करना होवे तो इसका मन्थुन्यर ध्यान लगा कर  
 सुनो. प्रथम तो यह विचारो कि तिलका झाड़ भगवंत ने  
 तो गोशाले को नहीं बताया. परंतु गोशाला भगवत के संघात  
 सिद्धाय ग्राम नगर से कृपे नगर को जाना हुआ विचाले एक  
 तिलका झाड़ स्वयं देखके पूछने लगा कि हे भगवन् यह  
 तिलका झाड़ निपजगा कि नहीं निपजगा और इस तिलक

यह ७ फूल के जीव मरके कहां उपजेंगे. यह प्रश्न किया तब भगवंत ने उत्तर दिया कि हे गोशाला यह तिलका छोड़ निपजेंगा और इसके सात फूल के जीव मरके इसी तिलका एक सांगरी यानि फली में ७ तिल होंवेंगे यह सुनके गोशाला भगवान् के वचन को नहीं श्रद्ध के और भगवान् के वचन को झूठा करने के वास्ते उसने चुपके से जाके तिलका छोड़ को उखेड़ डाला ॥ इति ॥

यह कथन सूत्र भगवतीजी का शतक १५ वां में है अब जरा विचारना चाहिए कि सिद्धांत में तो तिलका छोड़ गोशाला को भगवान् ने नहीं बतलाया किंतु उसने स्वयं तिलका छोड़ देखके तिल निपजने का प्रश्न किया. उसका उत्तर भगवान् ने दिया और तुमने लिख दिया कि श्रीभगवान् महावीर स्वामीजी ने गोशाला को तिलका छोड़ बतलाया. यह लिखना सूत्र से विरुद्ध है अफसोस इस बात का आता है कि सूत्र से विपरीत कथन को भी सूत्र का नाम लेके लिखने में क्या मनोरथ सिद्ध होता है. कुछ भी नहीं तथा भूल के या भ्रम से लिखा तो अब भी सूत्र देख के ठीक श्रद्धा कर लेंवो खैर हमारा तो इतनी ही बात का बतलाना तुम्हारे ऊपर हितबुद्धि से है कि तुम भूल खाके जैन सिद्धांत का लेख अक्र वाक मत लिखो यह हित से कहना है. अब तुम्हारी शंका का समाधान सुनिये कि श्री भगवान् ने तो प्रश्न पूछा जिसका यथावस्थित उत्तर दिया. और गोशाले ने मोहकर्म के उदय से नहीं श्रद्धा तो परमेश्वर को दोष किस बात का लगा ।

पूर्व पक्ष-भगवंत गोशालाजी को कोई उत्तर नहीं देते तो तिलका छोड़ गोशालाजी नहीं उखाड़ते. यह तो उत्तर दिया तब इतनी हिंसा गोशालेजी ने करी तो इससे हम भगरान को चूके कहते हैं ।

उत्तरपक्ष-हे अल्पज्ञों कुछ भी तुमको सिद्धांत का ज्ञान है कि नहीं. सुनिये. भगवतीजी का १५ वां शतक में क्या अधिकार है कि. भगवंत साबंधी नाम नगरी के कोष्टक नामा नाग में पधारे और उसी नगरी में इलाहली कुंभ कारिणी की शाला में गोशाला भी था. वह निमित्त बल से केवली नाम धराता था. तब गौतम स्वामीजी गौचरी में फिरते थे. सो गोशाला का हाल सुन के भगवंत से भरी सभा में प्रश्न किया कि हे प्रभु गोशाला केवली नाम धराता है. सो कैसे है और गोशाले का चरित्र कैसे हुआ सो फरमावो तब भगवंत ने गोशाले के जन्म से ले के संपूर्ण साबंधी में रहा तां तक का चरित्र कहा और फरमाया कि यह गोशाला मंखली का पुत्र है और जिन नहीं है केवली नहीं है यह थी गौतम स्वामीजी के प्रश्न का उत्तर श्रीभगवान ने भरी सभा में फरमाया कि तिमको सुन के बहुत से लोग गोशाला का हिलना उपहास करते भए तिससे गोशाले को श्रीभगवान के ऊपर अति क्रोध आया, और समब सरण में आके भगवान के पास अनेक प्रकार के जालबचन यानी ७ बार शरीर में अंतर मवेश रूप को लुण पड़िहार मेरे हुए. इससे गोशाला में नहीं हूं किंतु राजपुत्र हूं ऐसा बचन फैला के सच्चा बना तब श्री मुन्व मे श्रीभगवान ने एक चार का दृष्टांत फरमाया कि चोर



सुप्ने धर्म माना ही है सो जरा सोच के बात चलावो ।

पूर्वपक्ष-गौतम स्वामीजी को गोशाले का चरित्र विषय का उत्तर दिया उस वक्र तो भगवान् वीतराग केवली के इस से धर्म हुआ और गोशाले को तिल छोड़ का उत्तर दिया उस वक्र छद्मस्थ सरागी थे इससे पाप कहते हैं ।

उत्तर पक्ष-अरे भाई केवली उत्तर देवे वह तो धर्म में हैं और छद्मस्थ उत्तर देवे वह पाप में है यह बात तुम्हारे गुरुजी ने किस शास्त्र से सिखलाई है जैन सिद्धांत में यथातथ्यानी सत्य उत्तर केवली देवे तो या छद्मस्थ साधु देवे तो दोनों को ही सत्य होने से धर्म कहा है किंतु पाप नहीं क्या कि भगवंत के छद्मस्थ अवस्था में भी ४ ज्ञान थे सो ज्ञान में उपयोग लगा के तिल निषजना फरमाया और गोशाला के उलझेने से भी तिलका छोड़ मूल सहित उलंझा और दिग्ग पानी की वृष्टि के कारण से वही चिप गया और भगवंत ने फरमाया उसी तरह से तिल निषजें और गोशाले ने पीछे दपास करी तो ७ ही तिल निकले परंतु मिथ्यात्व के उदय से उलटी श्रद्धा धार के भगवंत से घाहिर निकला बैसाही गौतम स्वामीजी को यथातथ्य स्वरूप भगवान् ने गोशाले का फरमाया परंतु मिथ्यात्व के उदय से गोशाला क्रोध मरुट का के साधवों को जलाये. मश्र का उत्तर तो जैसा छद्मस्थपने में गोशाला को बतलाया बैसाही केवलपने में गौतम स्वामीजी को गोशाला का हाल बतलाया परंतु गोशाले ने प्रबल मोक्ष कर्म के उदय में तिलका छोड़ उलंझ डाला और साधु जलाये तो उसके कर्म की गति परंतु परमेश्वर का ज्ञान बतलान



दृष्टांत सुना कि तालाब के नाला रुंधने से पानी नहीं आता है यह बात सच्ची है कि भूठी इसलिये तलाब का नाला रुंध के देख लेवे फिर उसने रोक के देख लिया तो तुम्हारे गुरु को पाप लगना तुमको मानना पड़ेगा क्योंकि नाला रुंधने में तो तिलका छोड़ उखेड़ने से भी ज्यादा आश्रव का संभव है तथा तुम्हारे गुरुजी ने करुणा का खंडन करने के लिये ढाला जोड़ी है सो सुनिये-ढाल ( पेटदूखे तलफल करे जीव दौरा हो करे हाय विलाय सातावपराई सो जणा मरता राख्या होत्याने हो को पाय भ० ७ ) ॥

अब विचारो कि उक्त गाथा में ऐसा कहा कि सो जणा को हुक्को पाय के उनके पेट दूखते या, मरते राखे, ऐसे दृष्टांत की उल्टी की व्याख्या या गाथा सुन के किमी भोले ने विचारा कि हुक्का पीने या पिलाने से पेट दूखता रहे कि नहीं. मैं परीक्षा करूं तब उसने हुक्का पेट दुखते बक्र पिया, या पिलाया. तो उसका पाप करने वाले को लगा कि तुम्हारे गुरुजी को लगा. अगर कहेंगे कि हमारे गुरुजी को लगा, तो यह ढाल सावध ठहरेगी और सावध के उपदेश देने से तो तुम्हारे गुरुजी में तुमको साधूपना ही नहीं मानना पड़ेगा. अगर कहोगे कि हमारे गुरुजी तो ज्ञान बनलाते हैं और कोई दुर्बुद्धि करेगा तो करने वाले को लगेगा. परन्तु हमारे गुरुजी को नहीं तो हे मित्रों श्री भगवान के वास्ते यह विचार क्यों नहीं करते कि भगवान ने तो ज्ञान बनलाया. और गौशालाजी ने विपरीत बुद्धि से पाप करा तां. गौशाला को पाप कहा. परंतु पत्त कमाते खांचे हुए भगवंत पर क्यों पाप कहते हो । इति.

पूर्व पक्ष—हमने आजतक नहीं सुना कि फलाना मनुष्य किसी साधू से गंगादिक नदी का कथन सुन के गंगादिकों को डेरने गया. या तलाव का नाला रूखा. या हुक्का पिया. यह तो कल्पना मात्र है और गोशालं ने तो तिलका छोड़ प्रत्यक्ष उखेड़ा है ।

उत्तरपक्ष—अगर हमारे कहे हुए दृष्टांत कल्पना मात्र है तो तुम्हारे गुरुजी का दृष्टांत है कि हुक्का पा के पेट दुखने और मरते हुए को राखे. यह किस नगर की बात है, या किसने कान से सुना है. कि सोजने को हुक्का पा के पेट दुखने और मरते हुए को राखे अगर कही कि यह तो दृष्टांत है तो हमारा भी दृष्टांत है. तिलका छोड़ उखेड़ने का लेख है वैसे गौतम स्वामीजी को गोशाले का उत्तर देने से गोशालं ने साधों को जलाने का भी लेख है. तो दृष्टांत से दृष्टांत और लेख से लेख समझ के पक्ष छोड़ना अच्छा है ।

पूर्वपक्ष—हमारे गुरुजी को तो ऐसा मालूम हो जावे कि यह हमारे गंगा नदियों का उत्तर देने से आश्रव करेगा तो उत्तर ही नहीं देवे. परंतु वह तो आगम्य काल का अनर्थ को नहीं जाने जिस्से ज्ञानरूप भाव से उत्तर देवे तो उनका कुछ भी दोष नहीं ।

उत्तरपक्ष—अगर तुम्हारे साधू आगम्य काल का दोष को नहीं जानते इससे उत्तर देव उसमें दोष नहीं तो गोशालाजी को तिलका छोड़ भी आगम्य काल का दोष नहीं जान के भगवंत ने बताया. ऐसी तुम्हारे गुरुजी की ही खास श्रद्धा है तुमको मालूम होगा या नहीं होगा. तां भी हम पुरावा लिखते



भ्रमविध्वंसन का ८२ वा पत्र में ( उयो उपयोग देवे अने जाणें तिल उखेलणा कसी इम जाणें तो निल वनावेज वयाने पिण उपयोग दिया विनाए कार्य किया छै ) यह तुम्हारे गुरुजी का कहना है और हम तो कहते हैं कि भगवान् आगम व्यवहारी अतिशय ज्ञानी है यह अपने ज्ञान में जैसा देखे वैसा करै अल्पज्ञ पुरुषों की समझ का दोष है. जिससे आगम व्यवहारी महाज्ञानी में दोष निकाले क्योंकि गोशाला का चरित्र फुरमाया. उस वक्त तो परमेश्वर सर्वज्ञ केवली ज्ञानी थे और जानते भी थे कि यह चरित्र सुन के गोशाले का महा क्रोध उपजेगा. तो फिर भगवंत ने गोशाले का चरित्र क्यों फरमाया तब तुमको भी कहना पड़ेगा कि भवितव्यता टाली ना टले. परमेश्वर तो उपकारी उपकार करते हैं तो वैभे ही समझ लेना कि द्यस्यपने में भी भगवान् के ४ ज्ञान अति निर्मल और केवली नहीं परन्तु केवली समान सिद्धांत में रहे हैं और उपकार दृष्टि से उपकार किया. परन्तु भवितव्यता टाली नहीं टली. इति. “ तत्रोद्भवादं भन्नो भ्रमपादं ” ॥ इति तिल द्योद उखेदने का यथार्थ निर्णयः ।

तथा तुम्हारी कल्पना है कि श्रीभगवान ने तेजु शीतल लेश्या प्रकट करके गोशाले को बचाया. और लेश्या फोड़ने में अघन्य तीन क्रिया और उत्कृष्ट पंच क्रिया कही है परंतु शीतल लेश्या का तो वहां पर नाम मात्र भी नहीं है. तेजु लेश्या और शीतल लेश्या दोनों लक्ष्मि अलग २ है और सूत्र पञ्चवर्णानी में तो तेजम् समूह घात फोड़ती समय में अघन्य तीन क्रिया और उत्कृष्ट पंच क्रिया का पाठ है. परन्तु

गोबल लक्ष्मण का वहां पाठ ही नहीं. और दूसरा यह भी  
 जब समझ और जिनागम को क्याबन् नहीं जानने का दोष  
 है तो क्रिया लगने में चूके समझना. क्योंकि मूत्र में दग्धबां  
 गुण वाले तक मंदाय क्रिया लगे ऐसा लेख है तो वहां सब  
 मंदाय क्रिया लगने वाले चूकने में हो सकते हैं कभी नहीं  
 अगर चूकने में समझते होवो तो तुम्हारे गुरुजी से पूछना  
 कि क्या गुरुस्थान का स्वामी छद्मस्थ साधु नहीं उतरते हैं.  
 या आहार विहागदिक इतन चलन रूप व्यापार में कितनी  
 क्रिया लगती है और वह क्रिया लगने में चूकने हैं कि नहीं  
 जो विचारनाही तथा इसके आगे जो तुम्हारे मञ्जुसर के  
 दृष्ट बांधे की पंक्ति बांधी में लेके पंक्ति २५ की तक का लेख  
 में मन्तर यह है कि छद्मस्थान में भगवान ने गोशाले को  
 देना देना मिलना होइ दाना देहु लक्ष्मण में गोशाले को  
 रवाना यह भीनी कार्य दिने और केवल ज्ञान उतरने होने  
 पर इनी कार्य का करने हार में निषेध किया. इति इनका  
 मन्त्रुसर यह तुम्हारा लिखना भूया है क्योंकि मूत्र में भगवान  
 ने ऐसा कहा कि नहीं कहा है कि यह तीन कार्य देने अर्थात्  
 नहीं दिने. इति इत्या धीभगवान ने धीमुख में भगवतीनी  
 के पन्थाने मन्त्र में पन्थाना कि है गोशाला देने को ऊपर  
 उतार किया. जो इनके ऊपर मूलमूल के पाठ में लिखा है।

दूसरे लक्ष्मण पाठना में भगवान ने आधा बांधि  
 कहा है. जो कि मूत्र लक्ष्मण पाठ के मन्थाल को रवाना  
 को ना निषेध हुआ है।

उपरोक्त है भाई तुम्हें ऐसा गोशाला करने करना है।

सीखा है क्योंकि तुम्हारे गुरुजी ने भ्रम विध्वंसन में ऐसी ही भ्रम रचा है. परंतु हम तुमको पूछते हैं कि लब्धिमात्र फोड़ना आज्ञा बाहिर कहा कि कोई लब्धि फाड़ना कहा है अगर कहोगे कि लब्धिमात्र फोड़ना आज्ञा बाहिर कहा है तब तो केवल ज्ञानों की भी लब्धि कही है मनः पर्यय ज्ञान की भी लब्धि कही है पंचविज्ञान की भी लब्धि कही है. तो इन लब्धियों को भी आज्ञा बाहिर माननी पड़ेगी. तो यह कभी होता ही नहीं कि अवध्यादि ज्ञान की लब्धि का भी फोड़ना आज्ञा बाहिर है. और अगर कहा कि कोई लब्धि को फोड़ने का प्रायश्चित्त है तब तो सूत्र में शीतल लेख्या की लब्धि का प्रायश्चित्त है ही नहीं. आज्ञा बाहिर कहीं भी नहीं कही है।

पूर्वपक्ष-हमारे गुरुजी कहते हैं कि लब्धि तो मायी फोड़े परंतु अमायी न फोड़े।

उत्तर पक्ष-हे भाई सूत्र भगवतीजी का तीसरा शतक उद्देश चौथा में वैक्रिय लब्धि का सुलासा पाठ है परंतु शीतल लेख्या की लब्धि का नहीं शंका हीचे तो देख लेना जो मायी होता है उसको वैक्रिय करने का भाव होता है तिसका कारण सूत्र में सुलासा है कि जो मायी होता है वह अति सरस आधार करने के कारण से शरीर में अति बल की वृद्धि होने के कारण से उसको उच्छ्र रंग कुतूहल उत्पन्न होने से वैक्रिय लब्धि फाड़े ऐसा सूत्र का मूलपाठ है तां वैक्रिय लब्धि के कथन का शीतल लेख्या का कथन कहना विरुद्ध है भगवान् ने गंशाला का बचाया सो तां करुणा करके और वैक्रिय का करुणा तां कुतूहल रूप है सो यह तुम्हारा

लिखना ठीक नहीं कि लब्धि मायी फोड़े हां जरूर जो मायी साधु सरस भोजन पानादि करने के कारण से वैक्रिय लब्धि फोड़े वह आशा बाहिर का कार्य है परंतु भगवान् तो परम संवेगवान् ४ ज्ञान करके सहित धे और शीतल लेश्या लब्धि गोशाले पर दया अनुकंपा लाके साधु को बचाने के लिये प्रकट की है और शीतल लेश्या की लब्धि फोड़ना माया में या आशा बाहिर सूत्र में कदापि नहीं कहा है ।

पूर्वपक्ष-दया करके गोशाले को बचाया ऐसा कहा जाता है ।

उत्तरपक्ष-मुनिये भाई सूत्र भगवतीजी का पन्द्रहवां श्लोक में यह पाठ है सूत्र ।

तएणं, अहं, गोयगा, गोमालस्म, मंखलि, पुत्तस्म, अणु कंप्, दृयाए, बेभियायणस्स, बालववसिस्स, साडमिण, तेयले- स्सा, तेय, पदिमाहरण, दृयाए, एण्थणं, अंतराअहं, मीयलियं, वेयलेस्सं, णिमिणमि, इति ॥

अस्यार्थः ॥ तएणं, अहं, गोयगा, गोमालस्म, मंखलि, पुत्तस्म, अणुकंप, दृयाए के० तिवारे हुं हे गोतम गोशाला मंखलि पुत्र ने अनुकंपा ने अर्थे दया ने-अर्थे बेभियायणस्स, बाल, ववसिस्स, के० बंदपायन बाल ववसिस्सो अज्ञान कट कारकनी-साडमिण, तेयलेस्सा, तेय, पदिमाहरण, दृयाए, एण्थणं अंतरा के० निहा उप्पलेजे। लेश्या नावेस मते मांगवाने अर्थे दूर इखाने अर्थे इहां बिचाले-अहं, मीयलियं, वेयलेस्सं, णिमिणमि, के० मैं शीतल लेश्या के लेश्या मते इति सूत्रार्थः ॥

अब देखो सूत्रों को श्रीभगवान् ने श्रीहृन्त्र में फरनाया

कि हे गौतम मैंने गोशाले को दया अनुकंपा करके बचाया, तो भाई दया करके बचाना तो धर्म में है तो गोशाला तो साधु था उसको बचाने में पाप तुम क्यों कर कहते हो.

पूर्वपक्ष-हमारे गुरुजी तो गोशाला को बचाना भी अनुकंपा नें कहते हैं.

उत्तरपक्ष-हे भाई इस सूत्र के मूलपाठ में तो मोह अनुकंपा का नाम ही नहीं है फिर तुम्हारे गुरुजी कैसे कहते हैं.

पूर्वपक्ष-इस विषय में हमारे गुरुजी टीका की साक्षी बतलाते हैं.

उत्तरपक्ष-हे भाई तुम्हारे गुरुजी की टीका की साक्षी वैसी ही है कि जैसी गोशाला जी की दीक्षा देने में टीका बतलाई है और अर्थ छोड़ के मन मान्या भावार्थ कुछ का लिया वैसी ही टीका यहां बतलाई है तथापि हम बतलाते हैं तुम्हारे भ्रम विध्वंसन के पत्र ७१ में टीका लिखके अर्थ लिखा नहीं, और समीक्षा में थोड़ा सा अर्थ लिख दिया सो बतलाते हैं.

टीका-( मै पण इम कसो ते गोशाला ने रक्षण भावत ने क्रियो ते सरागपणे करी अनै स्वानुभूति मुनत्तत्र मुनिनो रक्षण न कसो ते वीतरागपणे करी एतो गोशाला ने बचायो ते सराग पणे कसो तो ए सराग पणा में धर्म किम होय ) इति.

अब विचारो भाई की प्रथम तो तुम याद रखणा कि सूत्रमें तो सराग पणा का नाम ही नहीं है, और टीकाकार ने लिखा है तथापि विचारना कि टीका की साक्षी देते हैं परंतु टीकाकार जी की श्रद्धा तो तुम्हारी जैसी भगवान की

चूकने की नहीं थी, केवल तुम तेरे पंथियों को भ्रमके प्रताप से दीखता है.

पूर्वपक्ष-अगर चूकने की श्रद्धा टीकाकार जी की नहीं होती तो टीका में ऐसा क्यों कहा कि गोशाले को संरक्षण सराग-पणा करके भगवान ने करा.

उत्तरपक्ष-हे भाई टीकाकारजी ने तो संशय छेदने निमित्त यथातथ्य अर्थ की घटना करी है परंतु तुम्हारे गुरुजी ने उलटी श्रद्धा है. सो हम टीका लिख के बतलाते हैं परंतु तुम याद रखना कि जहां हम टीका की साक्षी बतावें वहां ऐसा मत कहना कि हम टीका नहीं मानते हैं क्योंकि यहां पाठ में सराग का कथन नहीं है और टीका में सराग पने का कथन है परंतु मूल सूत्र के पाठ में नहीं है तो भी तुम्हारे गुरुजी ने टीका का आश्रय लिया है इससे चेताते हैं अब मुनिये टीका लिखते हैं ।

टीका-इह च यद्गोशालस्य संरक्षणं भगवता कृतं तत्स-  
रागत्वेन दयैकर सत्वाद्भगवतः यच्च मुनत्तत्र सर्वानुभूति मुनि  
पुंगवयोर्न करिष्यति तद्गीतरागत्वेन लब्धयनुपजीव कत्वादवश्य  
भावि भगवत्वा द्वैत्यवसेयमिति ॥ टीका ॥

टीकार्थः—यहां तो यह जो गोशाला की संरक्षण भगवान ने किया वह सरागपणा करके भगवान् का दयारूपी एक रसपणा से ज्यो तो मुनत्तत्र सर्वानुभूतिजी ज्यो श्रेष्ठ मुनि हैं उनकी रक्षा नहीं करेंगे सो वीनरागपणा करके लब्धि का जीव का पणा का अभाव से अथवा भवितव्यता का अभाव से यह वार्ता जाननी इति टीकार्थ ।

अब देखीं टीकाकार जी ने तो लिखा कि गोशाला का संरक्षण भगवान ने सरागवण दया का रस से किया. तो दया का कारण तो धर्म में है तो फिर तुम टीका का नाम लेकर भगवान को शुकना क्यों कहते हो ?

पूर्वपक्ष - हमारे गुरुजीने भ्रम विघ्नसन में लिखा है कि सरागवण में धर्म नहीं होता ।

उत्तरपक्ष—हे भाई यह कथन पहिले हम मूय साक्षी में मिद्ध कर दिया है कि छद्मस्थपना का धर्म तो सरागवण से होता है क्योंकि छ पात्रिष पांच संजय इनको भगवान ने सरागी कहे हैं मूय भगवतीजी का शतक २५ मा वंश छद्म और मत्स्य में है तो कहे यह सराग संजय में धर्म है कि नहीं।

पूर्वपक्ष-सराग संजय में तो धर्म है ऐसा हम भी मानते हैं क्योंकि अभी पंचम काल के जन्मे तो बीतराग संजयी होते ही नहीं किंतु सराग संजयी होते हैं और सराग संजयी के पात्र मानिये तब तो पंचम आश में धर्म उदरे ही नहीं इसमें सराग संजय भी धर्म में है ।

उत्तर पक्ष—तो हे मित्रों धर्म ही मूय क्यों नहीं विचारते हो कि श्रीभगवान भी सामाविद्ध पात्रिषी सराग संजयी के इसमें टीकाकारजी ने सरागी वने में गोशाला को बचाने का लिखा कि सराग संजयी का काय तो सराग वने में ही होता है और वह वन के काय में ही इसमें गुरुजी को सराग वन न दयाव. व म वच वा वा इसमें भी धर्म है इस सराग वनागत १. हे सराग संजय में वच उदरणा है नहीं हे मूय वच के सराग वनागत २६ १. उने में ही नहीं या कि सराग वनागत

भूतिजी अणगर ने श्रीभगवान पर आक्रोश करता हुआ गोशाले को धर्माचार्य के अनुराग करके रोका कि हे गोशाला भगवान तरे उपकारी हैं तू इनसे द्वेष मत कर तो कहो भाई सर्वानुभूतिजी अणगर को श्रीभगवान ने बोलने की मनाई करी थी तो भी धर्माचार्य के अनुराग से बोले तो उनको धर्माचार्य पर राग रखने से धर्म हुआ कि पाप क्योंकि मूलपाठ में है कि सूत्र-तेणं, कालेणं, तेणं, समएणं, समएस्स, भगवउं, महावीरस्स, अंतवासी, पाईए, जाणवए, सव्वाणु, भूई, णामं, अणगारे, पगइ, भइए, जाव, विणोए, धम्माण रियाणु, रागेणं, एयमट्ठं, असइ हमाणे, उट्टाए, उट्ठेइ, उट्ठेइत्ता । इति

इसका अर्थ सुगम है और पहिले लिख चुके हैं यहाँ मूलपाठ में कहा कि सर्वानुभूतिजी धर्माचार्य के राग से गोशाले का वचन भगवान को अवर्ण वाद बोलने रूप को सहन नहीं कर सके तब उठके गोशाले से बोले तो कहो भाई सर्वानुभूतिजी का श्रीभगवान पर राग करना धर्म है कि पाप में है ।

पूर्वपक्ष- सर्वानुभूतिजी का तो भगवान पर राग करना धर्म में है, क्योंकि हमारे गुरुजी ने भ्रमविध्वंसन के ६३ मा पत्र में लिखा कि —अने ज्यो आज्ञा वारे हुवे तो भगवान तो पहिले जाणता हुंता. जेहुं वरजाऊं छूं पिण एतो बोलसी तो आज्ञा वारे धासी. इम बोल्या आज्ञा वारे जाणे तो भगवान बोलवारो क्यां ने कहे जां आज्ञा वारे हुता जाणे तो भगवान साधा ने आज्ञा वारे क्यों न कीथा तथावली बोल्या पिछे पिणनिषेधता जे म्हारी आज्ञा वारे बोल्या इसो काम कोई साथ













नहीं. कराया नहीं. करने को भला जाना नहीं. तो तुम समझ लेंगे कि भगवान् को चूके का झाल देना अच्छा नहीं तथा इसी उद्देश की १५ वीं गाथा में पाठ है कि ( छद्म त्थोवि, परक्रममाणो, एषमायं, सयंपि, कुञ्चिन्था, इति )

अस्यार्थः—छद्मत्थोवि. परवक्रममाणो. के० छद्मस्थ छतोपिण विविध अनेक प्रकार संयमानुष्ठान विषे पराक्रम करता. एषमायं, सियंपि, कुञ्चिन्था, के० एके वार प्रमाद कपायादिक न करे स्वामी इणपरे प्रवृत्त्या इति सूत्रार्थः ।

अब देखो भाई छद्मस्थपने में भगवान् ने एक वार भी प्रमाद पाप नहीं किया. तो फिर तुम्हारा लिखना सर्वथा असंभव हुआ. कि भगवान् छद्मस्थपने में चूके. सूत्र की प्रतीति होने तो कपोल कल्पना को त्याग करना ही ठीक है.

पूर्वपक्ष—इसका अर्थ तो हमारे गुरुजी ऐसा करने हैं कि यह तो सुधर्म स्वामी ने भगवान् का गुण वर्णन किया है. इसने गुण वर्णन का प्रकरण में गुण ही होता है । अबगुण की अपेक्षा यहां नहीं किया ।

उपरपक्ष है भाई यह कहना भी सूत्र को अच्छी तरह से नहीं जानने का है क्योंकि सूत्र में तो ऐसा नहीं कहा कि सुधर्म स्वामी ने गुण के प्रकरण में गुण ही कर अबगुण का जोड़ दिया.

पूर्वपक्ष जब सूत्र में कहा है

उपरपक्ष है कि अबगुण का प्रकरण में गुण ही कर अबगुण का जोड़ दिया.

सूत्र आता सूत्र वर्णनार्थि जहम मयत्त मयत्त उदात्त. इति ।















नइ अनुकंपादान अने उचिनदान देवानो निषेध नयां.  
च ( मोरकत्यंजं, दाणं, तंपइएसो, विहोमखाउ, अणुं  
दाणं, पुण जिणंहिं. नकयाइं. पभिसेद्धंति ।

पुनरुक्कंच ( अभयं, सुपत्तदाणं, अणुकंपा, उच्चिय, ।  
त्तिदाणांइं, दुन्नवि, मारकोभणित्तिविधिभोगा, इयंदिदि  
इति सूत्रार्थः ॥

अब टीका भी सुनिये. टीका-मूत्र त्रयेणापि चाने नमोद  
मेश दान तच्चित्तं. यत्पुनरनुकंपादानमौचित्य दानं  
तन्नचित्तं निर्जराया स्तत्रानपेक्षणीमत्वाद् नुकं पौचित्यया  
चापेक्षणीयत्वादिति. उक्कंच-मोरकत्यं, जंदाणं, तंपइएसो, वि  
ममरकाउ, अणुकंपा, दाणंपुण, जिणंहिं, नकयावि, पडिसेद्धं  
इति टीकार्थः ।

इन मूत्र तीनों करके, यानी समणों वा सग कृत  
एपणीक आधार. तथा रूप के मुनि को प्रति लाभ. मं  
समणों वा अक्रासुक अनेपणीक तथा रूप के मुनि को प्र  
लाभ. और समणोपासक तथा रूप के असंयति अत्रती  
मतिलाभ. इन तीनों मूत्रों करके मोक्ष के अर्थ जो दान दे  
तिनका चिंतना करी गई. और फेर जो अनुकंपादान है. व  
की यहां चिंतना नहीं करनी. निर्जरा की तहां अपेक्षा न  
होने से. अनुकंपा और औचित्य इनकी ही अपेक्षा होने से  
यह कहा भी है कि मोक्ष के अर्थ जो तथा रूप के असंयति  
अत्रती मिथ्यात्व के भाग्यधारी को धर्म युद्धि करके दान दे  
निमकी यह विधि कही है. यानी एकान पाप कहा है. दु  
आ अनेकवा करके. दुर्गा भूवा को अत्रादिक देना तिस



उसमें भी एकांत पाप होता है. और साधूपणा का गुण करके सहित यानी संयमव्रत को दान देवे, उसमें एकांत धर्म करते हैं. परंतु भेष का कारण कुद्व नहीं.

उत्तरपक्ष-हे मित्र ऐसी तुम्हारी श्रद्धा न होवे कि भेष का कारण कुद्व भी नहीं तो तुम्हारे तरेपंधियों के भेष के सिवाय अन्यभेष यानी लिंगवान् साधू का दान सम्मान करने वाले को तुम्हारा गुरुजी और तुम पाप क्यों श्रद्धते हो, क्योंकि सिद्धांत में तो तीनों भेषयानी स्वलिंगी वीतराग के साधू का भेष में अन्य दर्शन तापसादिक का भेष में और गृहस्थी का भेष में इन तीनों भेष में भाव चारित्र होता है, ऐसा सूत्र में खुलासा लिखा है, सो सूत्र का पाठ लिखते हैं ध्यान लगा के सुनिये. सूत्रपाठ.

पुलापणं, भंते, किं, सलिंगे, होज्जा, गिह, लिंगे, होज्जा, गो, दव्वलिंग, पडुच्च, सलिंगे, वा, होज्जा, अणलिंगेवा, होज्जा, गिहिलिंगेवा, होज्जा, भावलिंगं, पडुच्च, णियमं, सलिंगं, होज्जा, एवं, जाव, सिणाए इति सूत्र भगवती जी का श्लो २५ मा उ० छठा में है.

अस्यार्थः-पुला कहे भगवन् पोताने लिंगे हुवे अथवा अन्य लिंग में हुवे, इति मश्र उत्तर-हे गौतम द्रव्य लिंग अंसारी स्वलिंग रजोहरणादिक भेष में हुवे कुतीर्थिकतापसादिक ने लिंगे हुवे गृहस्थ ने लिंगे हुवे, भाव लिंग ज्ञानादिक आसरी निश्चय स्वलिंगेज हुवेइम यावत स्नातक लगे कहवो, इति सूत्रार्थः

अब इस सूत्रपाठ में देखो कि द्रव्यालिंग यानी भेष आश्रयी ६ हीनियंठे साधू के भेष और अन्य दर्शनिक सन्यासादिक







परंतु मिथ्यात्व का भेष मिथ्यात्व का उपदेशक गुरु नहीं हुवां तो इन दोनों को दान देने में एकांत पाप नहीं है, तो भद्रिक दुर्वा दरिद्री मरते हुए को दान देने में तो एकांत पाप होवे ही कहाँ से. और मिथ्यात्व का भेष धरा है. और मिथ्यात्व के ही अश्वगुण का पंथ प्ररूपणादिक का होवे. उसको मोक्ष के अर्थ गुरुबुद्धि से देवता श्रावक को एकांत पाप कहा है परंतु कल्याण करके देने में नहीं और अगर तुम दृढवाद करके कहोगे कि भेषरहित असंयति या दुखी दरिद्री को देने में एकांत पाप होवे तो फिर तुमको साधु का भेष रहित गृहस्थ के भेष वाले भाव चाग्नी को दान देने में एकांत निर्जरा माननी पड़ेगी सो तुम्हारे गुरु जी का किया भ्रमविध्वंसन में अन्य तीर्थी का लिंग में केवल ज्ञान उपजे तो तो भी वंदना करना नहीं मानी है. जो लिखते हैं. भ्रमविध्वंसन का १०८ मा पत्र में ( अन्य तीर्थिना भेष में केवल ज्ञान उपजे ते उपदेश देने नहीं. जो साधु श्रावक केवली जाणे तो विण ते अन्य लिङ्ग यकी विण ने प्रत्यज वंदना. नमस्कार करे नहीं. तेहन अन्यमति नो लिंग दे ते माटे ) अब विचारो कि भेष का कारण नहीं होवे तो यहां तुम्हारे गुरुजी केवलीजी महाराज अन्य दर्शनी का लिंग में होवे तो साधु श्रावक वंदना नहीं करे ऐसा क्यों माना. तो सिद्ध हुवा कि भेष का कारण जरूर है. अब यहां भेष के ४ भागो उत्पन्न होते हैं सो सुनिये. प्रथम भाग में निश्चय में भाव साधु और भेष करके सहित दूसरे भंग में निश्चय में अभाव मिथ्यान्वी और व्यवहार साधु आचार और भेष करके सहित तीसरे भंग में निश्चय में नो साधु भावा चारित्र सहित व्यवहार



















































लेज बताते हैं, परन्तु गरीब को दान देने का स्वाग कराने हैं.

उत्तर पक्ष हे भाई यह बात तो प्रसिद्ध है कि तुम्हारे गुरुजी स्वाग कराने हैं परन्तु तुम्हारे जैसे भोले भाई इस बात को खिदाना चाहते हैं सो खिप नहीं सकती. क्योंकि यह बातें तुम्हारी पुस्तका में छप गई सो हम लिखा दियाने हैं. देव गुरू धर्म की आलाखण नामा पुस्तक नं २ में १२ ब्रा की १२ मी दान की ४२ मी गाथा यथा.

( इवरन में दान देवण नलों कोई स्वाग करे मन शुद्ध नीतणम पाप निन्तर आलियो तिलारी वीर बराली बुद्धता )  
इति गाथा गाथायः इम ग्रन्थ में अथान् माधुके सिवाय मंगल भिम्बारी आदिक का दान देवण का स्वाग करे तो निर्णय पाप टल आर भगवान उमकी पृष्टि बन्धायी. इति गाथायः

यह जाइ तुम्हारे मीपम जी कृत है. अब विचारो कि तुम्हारे गुरुजं का नियेय उपदेश एक तुम्हारे माधुके सिवाय भगता भिम्बारी आदिक का मने को दान देने का स्वाग कराने का है कि नहीं. मन्वज्त बात खिप नहीं मकनी है आर वीर बराली पृष्ठ पेमा भगवान का नाम दाननिवेर में बनाना दृया है. क्योंकि भगवान ने तो मिटान उपामक दान में या आवश्यक म आवक क १० ग्रन्थ क अनिवार बन्तर करन कामाय है ए व इल ए व क म अनिवार आलना कर सो मुनिव

सुत्र - बुद्ध ३६५ व ३६६ क ३६७ क ३६८ क ३६९ क ३७० क ३७१ क ३७२ क ३७३ क ३७४ क ३७५ क ३७६ क ३७७ क ३७८ क ३७९ क ३८० क ३८१ क ३८२ क ३८३ क ३८४ क ३८५ क ३८६ क ३८७ क ३८८ क ३८९ क ३९० क ३९१ क ३९२ क ३९३ क ३९४ क ३९५ क ३९६ क ३९७ क ३९८ क ३९९ क ४०० क ४०१ क ४०२ क ४०३ क ४०४ क ४०५ क ४०६ क ४०७ क ४०८ क ४०९ क ४१० क ४११ क ४१२ क ४१३ क ४१४ क ४१५ क ४१६ क ४१७ क ४१८ क ४१९ क ४२० क ४२१ क ४२२ क ४२३ क ४२४ क ४२५ क ४२६ क ४२७ क ४२८ क ४२९ क ४३० क ४३१ क ४३२ क ४३३ क ४३४ क ४३५ क ४३६ क ४३७ क ४३८ क ४३९ क ४४० क ४४१ क ४४२ क ४४३ क ४४४ क ४४५ क ४४६ क ४४७ क ४४८ क ४४९ क ४५० क ४५१ क ४५२ क ४५३ क ४५४ क ४५५ क ४५६ क ४५७ क ४५८ क ४५९ क ४६० क ४६१ क ४६२ क ४६३ क ४६४ क ४६५ क ४६६ क ४६७ क ४६८ क ४६९ क ४७० क ४७१ क ४७२ क ४७३ क ४७४ क ४७५ क ४७६ क ४७७ क ४७८ क ४७९ क ४८० क ४८१ क ४८२ क ४८३ क ४८४ क ४८५ क ४८६ क ४८७ क ४८८ क ४८९ क ४९० क ४९१ क ४९२ क ४९३ क ४९४ क ४९५ क ४९६ क ४९७ क ४९८ क ४९९ क ५०० क ५०१ क ५०२ क ५०३ क ५०४ क ५०५ क ५०६ क ५०७ क ५०८ क ५०९ क ५१० क ५११ क ५१२ क ५१३ क ५१४ क ५१५ क ५१६ क ५१७ क ५१८ क ५१९ क ५२० क ५२१ क ५२२ क ५२३ क ५२४ क ५२५ क ५२६ क ५२७ क ५२८ क ५२९ क ५३० क ५३१ क ५३२ क ५३३ क ५३४ क ५३५ क ५३६ क ५३७ क ५३८ क ५३९ क ५४० क ५४१ क ५४२ क ५४३ क ५४४ क ५४५ क ५४६ क ५४७ क ५४८ क ५४९ क ५५० क ५५१ क ५५२ क ५५३ क ५५४ क ५५५ क ५५६ क ५५७ क ५५८ क ५५९ क ५६० क ५६१ क ५६२ क ५६३ क ५६४ क ५६५ क ५६६ क ५६७ क ५६८ क ५६९ क ५७० क ५७१ क ५७२ क ५७३ क ५७४ क ५७५ क ५७६ क ५७७ क ५७८ क ५७९ क ५८० क ५८१ क ५८२ क ५८३ क ५८४ क ५८५ क ५८६ क ५८७ क ५८८ क ५८९ क ५९० क ५९१ क ५९२ क ५९३ क ५९४ क ५९५ क ५९६ क ५९७ क ५९८ क ५९९ क ६०० क ६०१ क ६०२ क ६०३ क ६०४ क ६०५ क ६०६ क ६०७ क ६०८ क ६०९ क ६१० क ६११ क ६१२ क ६१३ क ६१४ क ६१५ क ६१६ क ६१७ क ६१८ क ६१९ क ६२० क ६२१ क ६२२ क ६२३ क ६२४ क ६२५ क ६२६ क ६२७ क ६२८ क ६२९ क ६३० क ६३१ क ६३२ क ६३३ क ६३४ क ६३५ क ६३६ क ६३७ क ६३८ क ६३९ क ६४० क ६४१ क ६४२ क ६४३ क ६४४ क ६४५ क ६४६ क ६४७ क ६४८ क ६४९ क ६५० क ६५१ क ६५२ क ६५३ क ६५४ क ६५५ क ६५६ क ६५७ क ६५८ क ६५९ क ६६० क ६६१ क ६६२ क ६६३ क ६६४ क ६६५ क ६६६ क ६६७ क ६६८ क ६६९ क ६७० क ६७१ क ६७२ क ६७३ क ६७४ क ६७५ क ६७६ क ६७७ क ६७८ क ६७९ क ६८० क ६८१ क ६८२ क ६८३ क ६८४ क ६८५ क ६८६ क ६८७ क ६८८ क ६८९ क ६९० क ६९१ क ६९२ क ६९३ क ६९४ क ६९५ क ६९६ क ६९७ क ६९८ क ६९९ क ७०० क ७०१ क ७०२ क ७०३ क ७०४ क ७०५ क ७०६ क ७०७ क ७०८ क ७०९ क ७१० क ७११ क ७१२ क ७१३ क ७१४ क ७१५ क ७१६ क ७१७ क ७१८ क ७१९ क ७२० क ७२१ क ७२२ क ७२३ क ७२४ क ७२५ क ७२६ क ७२७ क ७२८ क ७२९ क ७३० क ७३१ क ७३२ क ७३३ क ७३४ क ७३५ क ७३६ क ७३७ क ७३८ क ७३९ क ७४० क ७४१ क ७४२ क ७४३ क ७४४ क ७४५ क ७४६ क ७४७ क ७४८ क ७४९ क ७५० क ७५१ क ७५२ क ७५३ क ७५४ क ७५५ क ७५६ क ७५७ क ७५८ क ७५९ क ७६० क ७६१ क ७६२ क ७६३ क ७६४ क ७६५ क ७६६ क ७६७ क ७६८ क ७६९ क ७७० क ७७१ क ७७२ क ७७३ क ७७४ क ७७५ क ७७६ क ७७७ क ७७८ क ७७९ क ७८० क ७८१ क ७८२ क ७८३ क ७८४ क ७८५ क ७८६ क ७८७ क ७८८ क ७८९ क ७९० क ७९१ क ७९२ क ७९३ क ७९४ क ७९५ क ७९६ क ७९७ क ७९८ क ७९९ क ८०० क ८०१ क ८०२ क ८०३ क ८०४ क ८०५ क ८०६ क ८०७ क ८०८ क ८०९ क ८१० क ८११ क ८१२ क ८१३ क ८१४ क ८१५ क ८१६ क ८१७ क ८१८ क ८१९ क ८२० क ८२१ क ८२२ क ८२३ क ८२४ क ८२५ क ८२६ क ८२७ क ८२८ क ८२९ क ८३० क ८३१ क ८३२ क ८३३ क ८३४ क ८३५ क ८३६ क ८३७ क ८३८ क ८३९ क ८४० क ८४१ क ८४२ क ८४३ क ८४४ क ८४५ क ८४६ क ८४७ क ८४८ क ८४९ क ८५० क ८५१ क ८५२ क ८५३ क ८५४ क ८५५ क ८५६ क ८५७ क ८५८ क ८५९ क ८६० क ८६१ क ८६२ क ८६३ क ८६४ क ८६५ क ८६६ क ८६७ क ८६८ क ८६९ क ८७० क ८७१ क ८७२ क ८७३ क ८७४ क ८७५ क ८७६ क ८७७ क ८७८ क ८७९ क ८८० क ८८१ क ८८२ क ८८३ क ८८४ क ८८५ क ८८६ क ८८७ क ८८८ क ८८९ क ८९० क ८९१ क ८९२ क ८९३ क ८९४ क ८९५ क ८९६ क ८९७ क ८९८ क ८९९ क ९०० क ९०१ क ९०२ क ९०३ क ९०४ क ९०५ क ९०६ क ९०७ क ९०८ क ९०९ क ९१० क ९११ क ९१२ क ९१३ क ९१४ क ९१५ क ९१६ क ९१७ क ९१८ क ९१९ क ९२० क ९२१ क ९२२ क ९२३ क ९२४ क ९२५ क ९२६ क ९२७ क ९२८ क ९२९ क ९३० क ९३१ क ९३२ क ९३३ क ९३४ क ९३५ क ९३६ क ९३७ क ९३८ क ९३९ क ९४० क ९४१ क ९४२ क ९४३ क ९४४ क ९४५ क ९४६ क ९४७ क ९४८ क ९४९ क ९५० क ९५१ क ९५२ क ९५३ क ९५४ क ९५५ क ९५६ क ९५७ क ९५८ क ९५९ क ९६० क ९६१ क ९६२ क ९६३ क ९६४ क ९६५ क ९६६ क ९६७ क ९६८ क ९६९ क ९७० क ९७१ क ९७२ क ९७३ क ९७४ क ९७५ क ९७६ क ९७७ क ९७८ क ९७९ क ९८० क ९८१ क ९८२ क ९८३ क ९८४ क ९८५ क ९८६ क ९८७ क ९८८ क ९८९ क ९९० क ९९१ क ९९२ क ९९३ क ९९४ क ९९५ क ९९६ क ९९७ क ९९८ क ९९९ क १०००





किं सूत्र नसीय जी के १५ वें उद्देशा में बोल ७४ तथा ७५ वें में कहा कि गृहस्थ "असख. पाण. खादिम. सादिम. वत्य. पडिगद, कन्मत्त. पाय पुच्छेण, यह आठ बोल कहे सो देवे दिवावे. देतेहुए को भला समझे तो चौपासो प्रायश्चित्त आवे इसका प्रत्युत्तर

यहां भी तुमने सुच. तेलीया, अन्य, तेलीया, पण धारणा करा क्योंकि सूत्र में दो साधू को आहार आदिक गृहस्थी को देना नहीं कन्वे ऐसा मूल पाठ में है और तुमने साधू का नाम छोड़ के समुच्चय ही लिख दिया इससे यह लेख तुन्दारा विपरीत है तिसका खुलासा हम अगाड़ी प्रश्न तीसरे के प्रत्युत्तर में करेंगे. क्योंकि तीसरा प्रश्न के उत्तर में तुमने ईरानसीयजी का १५ वा उद्देश का ७४ वां बोल की विपरीत पण से साक्षी दी है तिस हेतु से तथा तुन्दारा यह लेख है कि सूत्र विपाक के पहिले अध्ययन में गौतम स्वामी जी ने श्री भगवान महावीर स्वामी से पूछा कि हे स्वामी मृगालोडा ने पूर्वभव में क्या कुशात्र को दान दिया कि जिससे इस भव में ऐसा दुखी हुवा. इति प्रश्नोत्तर का पृष्ठ ७ मा.

इसका प्रत्युत्तर ध्यान लगा के सुनो कि प्रथमतो विपाक सूत्र में तीन पाठ एकहीज कोटी में चले हैं परंतु केवल कुशात्र दान का हीज नहीं वह ऐसे है ध्यान लगा के श्रवण करो.

सूत्रपाठ-किंवादजा. किंवापोजा. किंवा नायगिता

अन्वयार्थः मृगालोडने कौन अशुद्ध कुशात्र को दान दिया काण अभज्य माना कि जिससे इस भव में















इणं, देवाणुपिया, पणसिस्मरन्तो. धम्म, माईखेज्जा, बहुगुण  
तरं, होज्जा, तेसिवहुणं, ममण, मादण, भिरकुयाणं, २ तंज्जं  
देवाणुपिया, पणसिस्मरन्तो, बहुगुणंतरं, होक्का, सपस  
वियणं, जणवयस्म, ॥ ३ ॥ इति सूत्रपाठ ॥

अर्थार्थः- ते माटे जो अहो देवानुपिया प्रदेशी राजा पने  
धर्म कहीस्यो तो घणो गुण निश्च होसे. ते के इने गुण होसे  
ते कहे छे प्रदेशी राजा ने धर्म कहीस्यो तो घणो गुण होसे  
इह घणा नइ द्विपद चतुष्पद मृग पशु पंखी उंदर नवलादिक  
एतलाने. तुमे प्रदेशीने धर्म कहीस्यो तो प्रदेशी राजा जो  
वध थकी निवृतस्ये ते माटे द्विपद चतुष्पद घणाने गुण प्राप्त  
॥ १ ॥ ते माटे जो अहो देवानुपिया प्रदेशी राजा पने धर्म  
कहीस्यो तो घणो गुण होस्ये ते थकी भलुं फल होस्ये ते पण  
अपण मास्यदिक आत्मण भीक्षा चर ने घणो गुण होस्ये  
॥ २ ॥ ते माटे जो हे देवानुपिया प्रदेशी राजा ने धर्म कहीस्यो  
तो घणो गुण होस्ये पानाना देशनो पणिगुण होस्ये पने  
सांभली प्रदेशी पानाना देशने विपे कर भर आकरा नी  
प्रवरतावस्ये ॥ ३ ॥ इति सूत्रार्थः ॥

अब देखो यहाँ सूत्रपाठ में कहा कि हे पूज्य प्रदेशी राजा  
को धर्म गुणावोगा तो बहुत लाभ होवगा क्योंकि हमारा प्रदेशी  
राजा को धर्म सुनाने से द्विपद चतुष्पदादिक जीव को बहुत  
गुण होवेगा तथा भिखारी मंगता को बहुत गुण होवेगा  
तथा देश को भी दंड छोड़ने से बहुत गुण होगा.

अब विचारो कि जो एकांत पाप की श्रद्धा जैसीकि तुम  
नेरेसियो की श्रद्धा है. वैसे तेकर विम श्रावक की श्रद्धा होनी



आर प्रदेशी राजा ने जो कहा है, वह सूत्र पाठ लिखते हैं  
सो ध्यान लगा के एकाग्र चित्त से श्रवण कीजिये ॥

सूत्र पाठ—माण, तुम्ह, पदेसी, पुष्टिपरमणिभं, भविष्  
पञ्चदा, अरमणिभं, भविष्माभि, जहा, वणसंदेश्वा, जावणन  
वाड़ेइवा, तण्ण, पदमीगया, केमीकुमार, मणण, एंरगामे,  
नो, म्बलुवंत, अइं, पुष्टिं, रमणिभ, भविता, पञ्चदा, अ  
मणिभं, भविष्माभि, जहा, वणसंदेश्वा, जावण्यलवाड़ेइ  
अइगं, संयविया, पमाव्याइ, सत्तगामणइस्माइं, चत्ताग्गिभं,  
करिष्माभि, एगंभागं, वलवाइणम्म, दनिष्माभि, एगंभागं,  
कोटागारंयो, स्माभ, एगंभागं, अंतउरम्म, दलइष्माभि,  
एगंणं, भांगण, मइइ, मडालिया, कूटागार, सानं, करिष्माभि  
तन्थलं, बह्दि, पुग्गिभं, टिणभत्ति, भत्तवेपरोडि, विउं,  
अमण, पाणं, स्याइमं, माइमं, वलवावेत्ता, बह्णं, मणण,  
माहाण, भिन्नुवाण, पंथीय, पहिणाणय, पग्गिभाण, २ बह्दि,  
मीलव्वय, पंचगण, योगहो, यवामेदिं, जाव, विहरस्माभि,  
निहह्णामेवादिम, पाउरभूण, तावेव, दिमं, पडिगण, एवेणं,  
पदेसीगया, वण्णंवाउ, जावनेजमः जलंने, संविया, पारोमा  
नि, मणगामणइस्माइं, पमाभि, भाणइगेणि एग, भागं, वल  
वाइणम्म, दलइनि, जार, इइ गाम्मान, कानि, वण्णं  
बह्दि, पुग्गिभं, जावणवम्म २, मा, बह्ण, मणण, एवे  
व, पग्गिभाण, मण, इइ, व, इनि, एवेणं

अथवा य...  
मत्र क...  
सर्व...  
१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० ३१ ३२ ३३ ३४ ३५ ३६ ३७ ३८ ३९ ४० ४१ ४२ ४३ ४४ ४५ ४६ ४७ ४८ ४९ ५० ५१ ५२ ५३ ५४ ५५ ५६ ५७ ५८ ५९ ६० ६१ ६२ ६३ ६४ ६५ ६६ ६७ ६८ ६९ ७० ७१ ७२ ७३ ७४ ७५ ७६ ७७ ७८ ७९ ८० ८१ ८२ ८३ ८४ ८५ ८६ ८७ ८८ ८९ ९० ९१ ९२ ९३ ९४ ९५ ९६ ९७ ९८ ९९ १००



तो हस्ती घोड़ादिक कटक को देऊंगा. एक भाग कोठार भंडार में देऊंगा, एक भाग अंतःपुर को देऊंगा, और एक भाग की मोठी दान शाला मडाऊंगा, तथा चार प्रकार का आहार निज जा के बहुत से श्रमण साक्यादि ब्राह्मण भिखारी मंगतादिक को देऊंगा और अपने मत्तादिक को पालता भी रहूंगा. ऐसा कहके घर को गए. फिर प्रातःकाल होते ही पूर्व कथित राज्य के ४ भाग करके राज्य को चौथे हिस्से को दान देता परा प्रदेशी राजा विचरता भया. अब विचारो कि प्रदेशी राजा हाथी घोड़ा अंतःपुर भंडार का तो आवक हुआ पहले भी साम संभार करता था. परन्तु मंगता भिखारी का तो राजा शत्रु क क्योंकि यह कथन पहिले ही चित्त जी ने शर्म करी वहां से चुका है. तो विचारना चाहिये, कि जो मंगतादिक गरीब को दान देने में एकान्त पाप होता तो या कुछ भी गुण नहीं होते तो राजा प्रदेशी आवक पण पाया पीछे दानशाला क्यों को जाता और तुम्हारी श्रद्धा अनुसार इतना पाप क्यों था? क्योंकि राजा में किमी ने जवर्दस्ती से नहीं दिलवाया. आपि अपनी इच्छा में दिया है. और केमी स्वामी जी महाराज के तुम्हारे गुहरी जमी श्रद्धा होने तो राजा को त्याग क्यों को कर देते. क्योंकि हाथी घोड़ा भंडार अंतःपुर को तो आया हुआ पहिले ही देना था. तथा दिया बिना संसार का निर्णय नहीं है. परन्तु मंगतादिक को ना देने का त्याग सूये निजाने. और केमी श्रमण पशुमान जेमा भी क्यों नहीं कहें कि हे राजा उन पाप निवृत्त मंगता भिखारी को देने का पण क्यों वाचना है क्योंकि तब कहने का कि लोखेवाला से और देण जाना दे, उस पर म नियम नहीं करणा





नहीं होता है. यह जो करुणा दान में है. तथा तुम्हारे तैरंगियों का मत चलाने वाले भीषणजी का उद्देश दान निकालना का है. सो भी जग सा यहां पर प्रकट करते हैं. देवगुरु श्री श्रीलखाण नामा पुस्तक न० २ ढाल १२ में भीषणजी कृत गाथा.

( इवरत में दान देता थकां पड़े श्रावक जीरे मनपड़कन काम पड़े इवरत में दान रो जब तो ही सर्मासर्म जी. पीं करो पिछतावा तेहनो कांपकठी लापड़े कर्म जी ३६ इवरत । दान देवातणो टालो परो करे उपायजी. जाणे कर्म बंधे । माहरे माने भोगवतां दुख धायजी. ४० इवरत में दान देत थकां बंधे आठों ही पाप कर्म जी ) इत्यादिक ।

इन गाथाओं का भावार्थ सुनिये. व्रत में यानि सा सिवाय मंगतादिकन को दान देते थके श्रावक के मन में पड़ पड़ जाय कि हाय मेरे को इन पापियों को कहां देना पड़े कदाचित् शर्माशर्म देवे तो पीछे पश्चात्ताप करे कि हाय मैं अत्रती मंगतादिकन को दान दिया. मेरा क्या हाल होने प मुझे धिक्कार होवां जो मैंने इन पापियों को दान दिया. ऐ पश्चात्ताप करे तो उसके कल्लुक कर्म ढीले पड़े ३६ अत्र मंगतादिकन को देने का आप टाला करे अन्य को कर किंतु मंगतादिकन को साधु सिवाय दान देके मत डूबो. दान देने का टाला करते को भला जाणे तो अच्छा किया मंग दिकन को दान नहीं दिया. क्योंकि श्रावक मन में जाणे । अत्रती मंगतादिकन को देऊंगा तो मारे आगे पाप कर्म बंधे फिर मुझको भुगतणा पड़ेगा. जब मुश्किल होगा. ऐसा जा के टारा लेंव. अर्थात् नहीं देवे ॥ ४३ ॥



चाहिये वैसेही तुम्हारी श्रद्धा के लंखे तो जैसा मद्य मांस खाना चोरी परस्त्री सेवनादिक कृकर्म करना. और मंगता भिखारी को देना. यह दोनों एक कोटी, यानी एक पंक्ती में गिने जाते तो प्रदेशी राजा श्रावक हुआ पेशतर तो दान देताही नहीं था. सो यह मंगता को दानरूप महाभयंकर पाप कर्म श्रावक हुआ पेशतर तो राजा को तुम्हारी श्रद्धा से नहीं लागता था और श्राव प्रदेशी राजा श्रावक हुआ बाद दानशाला मंडवाई तो फिर दान शाला तुम्हारी श्रद्धा से परस्त्री, चोरी बेश्यागमन सरीसा कुकर्म तुम्हारे गुरुजी गिनेते है तो फिर तुम्हारी श्रद्धा अनुसार तो प्रदेशी राजा ने श्रावकपना क्या धारा माना वह पाप धारन किया कि जो पहिले दान शाला नहीं थी सो नवी मंडवाई और केसी स्वामीजी महागज ने प्रदेशी को रोना क्यों नहीं. कि ज्यों पहिले नहीं करता वह कुकर्म श्रावक करता है.

पूर्वपत्त-प्रदेशी राजा को तो हम श्रावक हुआ बाद व धर्मवान् मानते हैं और धर्मवंत होने से पहिले स्वर्ग में मूर् भविमान् के मालिक महान् ऋद्धिवान् देव हुए हैं. और व चव के महा विदेह क्षेत्र में जन्म धारन करके संयम पाल मोक्ष जावेंगे. तिससे हम उनको अधर्मी नहीं मानते हैं.

उत्तरपत्त-हे मित्र इससे ही हम कहते हैं कि मांस खाना बेश्या परस्त्रीगमन करना. सिकार करनादिक कुकर्म सरीसा मंगता भिखारी को दान देना नहीं होता है. और कुपात्र दान में भी नहीं है. क्योंकि कुपात्र दान तो बेश्यागमन सिद्धा करने सरीसा मूर्त्र विपाक का प्रथम अध्ययन में कहा है. इन















उत्तमपत्त-देनेमें जितनी करुणा या ममता पुत्रों में उता-  
 रती उतना पुण्य का विभाग है, और देने लेने का हिसाब  
 कश्चि उतना पाप है, इनमें मिथपत्त है वषोचि प्राणि जीवों  
 की करुणा में शुभयोग है, और भगवतीजी के ५ में शतक  
 करुणा उरना में वस्तु देने वाले को जहांतक वस्तु अपने पास  
 है वहांतक भारी क्रिया लागे और देनेके देटी तर हलकी  
 क्रिया लागे, तो विचारना चाहिये कि लोभ निमित्त वस्तुओं  
 देने में भारी क्रिया से हलकी क्रिया का लाभ हुआ तो  
 वस्तुओं निमित्त दया का प्रणाम से देवे उसको लाभ है  
 नहीं होवे.

पूर्वपत्र-मिथपत्त क्या करी है

उत्तरपत्र- मिथपत्त में सर्व दान तीन पत्र में समवेत  
 होते हैं, वर ऐसे हैं, धर्मपत्र की जिसमें मापूजी आशा देवे  
 और उपदेश दे के दयावे, वरतो काम धर्मपत्र में है, और  
 धर्मपत्र कि जिस काम की मापूजी निदेश दवे उपदेश देके  
 दयावे होदार, वर काम धर्मपत्र में है, और मिथपत्र,  
 कि जिस काम की मापूजी निदेश दवे और नहि, न्याय  
 में वस्तु हीन रखने, वषोचि दुखदारा करीश धर्मपत्र में  
 होने में एकांत दार निदेश का न्यायन नहीं होवे.

पूर्वपत्र-मिथपत्र के लक्ष्य होनेमें है कि जिस कामकी  
 मापूजी एकांत निदेश का न्यायन नहीं होवे.

उत्तरपत्र-दुनिसे कई दान में लक्ष्य मिथपत्र में है, जो  
 लक्ष्य में है, दिखते है कि कदा कदाकाल पुत्र के लिये



और पिदाही वालों की मार संभार में करूंगा. यह तुम के  
 लिए पुण्यो ने संयम लिया. यह संयम दलालों का तो लाभ  
 और दूसरे संभव्यी खर्च रूप हिता. यह मिथ्यज्ञ, तथा राय  
 प्रेक्षणी में राजा प्रदेशी धर्म तुमके बिना बंदना करके जाने  
 लगे. तब केली श्रमण महाराज ने कहा. कि हे राजन् ! तूने  
 मेरे से देदे देदे मक्ष किये, और अब बिना स्वमाया कैसे जाने  
 लगे. तब राजा ने कहा कि हे स्वामिन् ! मैं कल मेरा अंतःपुरादि  
 परिचार सहित मोट मढाण से आके आपकी बंदना करके  
 अनराध बना करारुंगा. तब केली श्रमण महाराज ने नहीं तो  
 अच्छा कहा, क्योंकि अच्छा कहे तो राजा के आने की नगर  
 मंगार की अंतः- पुरादिक स्नान की. हाथी घोड़ों के आने  
 लाने की अनुमोदना लागे और निषेध भी नहीं किया. क्योंकि  
 निषेध करने से- जिन मार्ग का प्रभाव या राजा की भाङ्गि हा  
 अंगराय होवे. इससे मिथ्यज्ञ होने में केली स्वामीजी महाराज  
 ने हां नां कुछ भी नहीं कहा. राजा ने शोटीक के परेदेहे  
 आइन्वर में केली श्रमण महाराजका दर्शन करके अनराध  
 बना करारा. यह भाङ्गि का लाभ और अंतःपुरादि मंगार और  
 आने जाने रूप खर्च मो हिता. यह मिथ्यज्ञान तथा मूढ  
 रायनक्षेपि में केली श्रमण महाराज प्रदेशी को कहा कि हे  
 प्रदेशी तू रमलीक हो के पीछे अन्तर्णीक मत होना. तब  
 प्रदेशीराजा ने राज के चार भाग किये. एक भाग घोड़ा आदि  
 का. १ दूजा भाग भंडार कोठार में २ तीजा भाग अन्तःपुर को  
 ३ चौथा भाग की दानशाला ४ दान के निवार तीन बाये मो  
 रहिते हो ये. परंतु राजा का चौथे हिस्सा का दान देना यह

कार्य रमणीक पने का है. परंतु केशी स्वामीजी महाराज ने हां नां झुझ भी नहीं कहा. क्योंकि हां कहते तो भाव पाला निपजाणे रूप सावय की अलुमोदना लागे.

नां कहे तो राजा का करुणा भाव और द्रव्य मे ममत्त उतार के दान देना उस लाभ का छेदन होवे तथा भिखारियों को अंतराय होवे यह प्रत्यक्ष मिथ ठिकाना है. अब हृदय के नेत्र खोलके देखो कि राजाने परिवार सहित आके अपराध समझाए ऐमे कहा वहां भी मौन रखी और दान देनेका कहा वहां भी मौन रखी क्योंकि दोनों में सावय का सद्भाव है. और लाभ यानी वमे का भी सद्भाव है. इससे साधुजन भिखारियों का दान देवो, तथा आडंबर करके बंदने को आओ, दोनों का में मौन रखते हैं, नहीं तो निषेध करते हैं और नहीं स्थापन करते, है यह वातराग का न्यायमार्ग है. परंतु अब भ्रामारों मित्रों ! तुम्हारे गुरुजी की श्रद्धा और प्रवृत्ति में ध्यान देवो कि उनकी श्रद्धा और प्रवृत्ति किस तरह की है. वद दिखलाते सो सुनिये प्रथम करुणा करके दान देने का निषेध नहीं करत सो तुम्हारे साधुजी प्रत्यक्ष निषेधते हैं और त्याग भी करते सो हमने ऊपर तुम्हारे गुरु भीषमजी की जोड़ है निमर्ष दान की गाथा लिख दी है. अब देखो कि सिद्धांत में नां निषेध करना उसका तो निषेध कर रहे हैं और एकांत पाप बतलाते हैं और जो कोई आडंबर करके बंदना करने को आं है उसका निषेध या एकांत पाप तुम्हारे ग्रंथों में कहीं भी नां देखा है. उलटा यह सुनते हैं, कि तुम्हारे साधुजी तुमको उां श दे के त्याग कराने हैं कि हमारी पंचकोश दश कोप बीस

कोश तक सेवा करनी या पूज्यजी जिस ग्राम में हों उस ग्राम में शालभर में एक दो बह्र आके जल्द दर्शन करने ऐसे न्याग कराने हैं और तुम लोग बँने करते भी हो. अब देखलो कि सिद्धांत में दान देनेका नहीं निषेध करना. उसका तो निषेध करते और त्याग कराते है. एकान्त पाप बतलाते हैं देने वाले को महा पापी हकमी मानते हैं और परमेश्वर ने दशकोश बीस कोशादिक गृहस्थ को संग रखने की मनाइ करी है उसका त्याग कराके संघ में रखते हैं.

पूर्वपक्ष-गृहस्थ को पंचकोश दशकोशादिक तक संग में रखने की मनाइ किस शास्त्र में करी है?

उत्तरपक्ष-सूत्र नसोथजी के दूसरा उद्देश में गुलासा पाठ है कि गृहस्थी तथा अन्य तीर्थों के संग में जंगल में जावे, शय्यादिक की जगे जावे या गृहस्थ के संग जाहार पानी लेने को जावे और ग्रामानुग्राम विहार करे तो उस साधु को एक महीने का प्रायश्चित्त जावे है. इसका मूलपाठ चौथा प्रश्न में लिखा है. अब पूर्वोक्त तीनों काम तुम्हारे शुरूनी करते हैं. तुम्हारे पूज्यजी शरीर बिना को टंड लेजावे.

वहाँ भी तुमलोक संग जाते हो और तुम्हारे पूज्य जी तुम्हारी भक्ति गिनते हैं. और तुम निर्लेप भी नहीं रहते हो कि किस शास्त्र में यह कलर भगवंत ने फरमाया है कि गृहस्थी के संग शरीर बिना को जाना, जाना तो कोई भी सूत्र में नहीं कहा है. परन्तु जंगल गृहस्थी संगाने जानेजाने को भला जाये तो चौदानी प्रायश्चित्त जाना है अब निरर व नामो प्रायश्चित्त सेवन वाले को तुम्हारी श्रद्धा में साधु कैसे मानते हो. तथा

ग्रामानुग्राम भी तुम ऊंट घोड़े गाड़ी में बैठ के पूज्य जी की  
भक्ति निमित्त संग रहते हो. और पूज्य जी तुमको त्याग दिला  
के संग रखते हैं और धर्म मानते हैं. देखो २ बड़ा आश्चर्य है  
कि जिस काम को साधु को सफा मनाई करी है उस काम  
तो तुम्हारे पूज्य जी भक्तिरूप धर्म मान कर तुम लोगों से मूल्य  
भोजनादिक लेते हुये विहार करते हैं और तुम लोकभक्ति  
करते हो और विचारे गरीब अभ्यागत दुखी भुखी को दान  
का त्याग कराते हैं. और एकांत पाप बत्ता के गरीबों की हानि  
छेद करते हैं. बड़ा आश्चर्य है कि किस तरह ऐसी श्रद्धा ब  
जानी है हमने तो बुद्धिमानों के तोलने के लिये यह दोनों प  
स्पष्ट लिख दिये हैं. अब मध्यस्थ होगा तो तोल लेवेगा ।

पूर्वपक्ष-हमारे गुरुजी तो घोड़ा गाड़ी आदिक में बैठ  
आने जाने को धर्म नहीं कहते हैं किंतु वंदनादिक को धर्म  
कहते हैं ।

उत्तरपक्ष-जेकर आने जाने में धर्म नहीं कहते तो भाव  
को सामे आने के या साधु के संग में रहने के त्याग क्यों  
करावे. उलठी दशकोश बीशकोश भक्ति करना ऐसा क्यों को

पूर्वपक्ष-त्याग कराने से भावक की भक्ति भांगे, इस  
साधु के सामने जानेका आडंबर से जानेका त्याग नहीं करावे

उत्तरपक्ष-हे भाई इसी से हम कहते हैं कि यह मिश्रण  
है. सर्व संहित लाभ है, इससे प्रदेशी राजा को भी किसी श्रम  
महारान ने आडंबर से आने की आज्ञा नहीं दी और न  
निषेध किया. वैसे ही दान देने की नहीं तो रजा दी, और  
नहीं निषेध किया. परंतु तुम्हारे गुरुजी भावक के संग वि





दृष्टांत जहर अपृत का यहाँ नहीं मिले, वस हमारा तो पानना जैसा केसी श्रमण महाराज ने आडंबर से बंदना करने को आने में और दान देने में ज्ञेय पदार्थ है यानी जानने योग्य है सो मान रखी, वैसाही हमारा मानना है और मंगलादिह को करुणा करके देना उसमें जितनी ममता पुङ्गलों से उनार के देवे या करुणा दया आवे उतना शुभ योग्य पुण्य में है और हिंसादि साव्य व्यापार होवे वह पाप में है, जिस काम का साधुजी निषेध नहीं करे या स्थापना भी नहीं करे, उसको मिश्रपन्न कहना वह ज्ञेय पदार्थ जानने लायक है इति ।

इससे तुम्हारा लिखना है कि जो साधु के सिवाय दान में लाभ मानते हो तो बचा हुआ आहार दे के लाभ वों नहीं करते हो! इसका उत्तर ऊपर से संपूर्ण समझ लेना है हम एकांत पुण्य नहीं कहते हैं अपितु मिश्रपन्न है जिससे साधु को एकांत पुण्य कहने का या एकांत पाप कहने का ही कन नहीं तो देने लेने का कैसे होसके, यह बुद्धि बल से समझ लेना, तथा तुम्हारा उलटा प्रश्न है कि गृहस्थी असंयति अत्राति अन्यतीर्थी इनको दान देने में धर्म कहते हो सो पाठ दिखलावो. यह प्रश्न अनुचित है, क्योंकि हमारा एकांत मानना नहीं है नया सिद्धांत में मिश्रपन्न कहा वैसा हम मानते हैं, और ऊपर लिख दिया है, तथा तुम्हारा लिखना प्रश्नोत्तर के पृष्ठ ८ वें में है, कि श्री तीर्थकर भगवान् का वर्षी दान देना जन्म महोत्सव के कलश का पानी डालना स्नान करने की रीति के समान है ।

यह भी अल्पन्न बिना विचारी वान है. क्योंकि स्नानको



इं पदे तो श्री १६ मा मल्लिनाथ परमेश्वरने भी वर्षादान दिया फिर उनको एक महर में ही. केवल ज्ञान क्यों उपजगया. उन का तुम्हारे कहने माफिक कर्म क्यों नहीं बंधे. तिसमें निश्चय जाना कि श्री तिर्यङ्कर भगवान् का वर्षादान देना. स्नान करने में पानीका कलश ढोलना सरीसा कभी नहीं होता क्योंकि जल ढोलने का श्रान करने का निषेध तो श्रीभगवान ने करा है परन्तु कहणा करके दान देने का निषेध कौइ तीर्थङ्कर परमेश्वरने नहीं करा है ॥ इति ॥

इति प्रत्युत्तर दीपिकायां द्वितीयं प्रत्युत्तरं समाप्तम्



चर दीपिका ग्रन्थ के प्रथम भाग के प्रथम खंड का  
शुद्धाशुद्ध पत्र ।

पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१६	नहीं	नहीं
६	दान में	दान देने में
११	भद्रा गुरुजी की	गुरु जी की
१७	कर करने लगा	करने लगा
२०	बोलों को	बोलों की
=	किया	किया
६	भावकों को	भावकों ने तैरापंटी भावकों को
१०	साहब	साहिब
२०	अज्ञेय	अज्ञेय
५	पदा	पद
१०	भावकों को	भावकों की
२०	बंदोबस्त	बंदोबस्त
१६	झर	झर
२१	म ली दिने जी	म ली दिने जी
१३	नहीं तो	नहीं तो
१२	बा बने	बा बने
१३	मनमन्मलकी	मनमन्मलकी
१२	बाहू दिने	बाहू दिने





५६	६	दानदुर्ग	दामदुर्ग
"	१०	वहावीरे	महावीरे
"	१८	पञ्जावेइ	पञ्जावेइ
६८	२३	महामिथ्यात्व	महामिथ्यात्व
६६	११	परमेश्वर दोष	परमेश्वर पै दोष
७०	१८	तराणं	तराणं
"	१६	रायमट्टं	रायमट्टं
"	२०	तराणं	तराणं
७१	२	आपाहिलं	आपाहिलं
"	६	तराणं	तराणं
"	१५	जागीरका	जागीरका
"	२०	भगवंत अर्ज	भगवंत को अर्ज
७२	५	नहीं	नहीं
७२	१०	भगव	भगव
"	१४	विद्वत्तानि	विद्वत्तानि
"	१६	प्रतिगुराया	प्रतिगुराया
७३	१०	करने	करने
७४	२१	मोरीपगणे	मोरीपगणे
७४	१२	नयादिक	नयादिक
"	१४	का	का
"	१६	य	य
"	२१	दग	दग
७६	१०	माला अंक	माला में अंक
"	२०	न	न







## ॥ प्रश्न ३ प्रारंभ ॥

४२ दृष्टल अलके अहार के भोजी प्रतिमाधारी ( पड़ि-  
 भाषी) उत्कृष्ट श्रावक नपत्नी को. ४२ दृष्टल अलके देने वाले  
 को एकांत पाप कहते हो मो पाप दिखलावो ॥

उपर-तेरे पंडियों ने प्रश्नोत्तर में जपवाया है. वह यह है  
 श्रीभगवान् महावीर स्वामी के पड़िभाषारी श्रावक ज्ञानंदजी  
 ने मंधारा ( अनशनव्रत ) में कहा है कि. मैं गृहस्थी हूं. यह  
 ज्ञान् उपाशुक दशा सूत्र के प्रथम अध्ययन में कही है. और  
 गृहस्थी को अशलादि चारों आहार देने में श्री भगवान् ने  
 पाप कहा है। जिसके प्रमाण नीचे लिखे जाते हैं। गृहस्थी  
 को अशलादि चारों आहार देवे. दिवावे, देतेहुये को अनु-  
 मोदन करे, तो चोमासी प्रायश्चित्त आवे। यह वार्ता सूत्र न-  
 भाष के १५ में उद्देश के ७४ में श्लोक में कही है. और भगव-  
 ती सूत्र के २ में शतक के लड़े उद्देश में भी कही है। जब कि  
 श्री महावीर स्वामी के ज्ञानंदजी जैसे पड़िभाषारी उत्कृष्ट  
 श्रावक ने अपने ताई गृहस्थी कहा है. और गृहस्थी को दान  
 देने में श्रीभगवान् ने एकांत पाप कहा है. तो आप समझ  
 सकते हैं कि गृहस्थी असंयती समती अन्य तीर्थों को दान देने  
 में पाप क्योंकर न होगा इति ॥ यह उनका उत्तर है ॥

अब इसका प्रत्युत्तर सुनिये. प्रथम तो इस विरुद्ध उत्तर  
 को देख के विद्वान् तो समझ ही लेते है। इ सूत्र का नाम  
 लेकर कैसा सूत्र से उद्यमशग और विरुद्ध उत्तर लिखा परन्तु  
 अल्पज्ञ पानी कम समझने वालों के वास्तव भ्रम हो जाता है.  
 उसको हर करने के लिये इसका समाधान लिखत है इन्द्र









लेवोगे तो अपने गुरुजी को भी अन्य संसारी पापी के समान मानने का दूषण तुम्हारी समझ को प्राप्त होवेगा। अब विचारो कि आनंदजी श्रावक, या अन्य पड़िमाधारी श्रावक, अन्य तीर्थी, गृहस्थी, सारंभी, किसी प्रमाण से उदर ही नहीं सघने हैं, तो पड़िमाधारी का प्रश्न में असंयती अत्रती का ऊपरान्त उत्तर देना सत्य होता ही कहां से।

पूर्वपक्ष-नसीथजी के १५ मा उद्देश के ७४ में बोलें तो समुच्चय गृहस्थी का कथन है उसको देवे, दिवावे, देते हुये को भला जाने, उसमें चौमासी प्रायश्चित्त कहा है।

उत्तरपक्ष-अरे भाई, वहां तो साधुदेवे, जिसका प्रायश्चित्त है। परंतु तुमने साधु का नाम गोप के देवे, दिवावे, देते को भला जाने, उसका प्रायश्चित्त आता है, ऐसा विरुद्ध लेख सूत्र का नाम लेके क्योंकर लिख दिया। और यह भी विचारना चाहिये, कि पड़िमाधारी श्रावक का तो साधु से जाचणका कल्प ही किसी सूत्र में नहीं। तो फिर साधु पड़िमाधारी जाचे ही नहीं तो साधु को प्रायश्चित्त आवे कैसे! इसलिये जो नसीथ सूत्र के १५ मा उद्देश के ७४ में बोलें तो ऐसा पाठ है कि ( नेभिरकु, अनुत्थिणवा, गारिथिणवा, ) यानी जो साधु अन्य तीर्थी गृहस्थ को अनुपार्ण आदि देवे तो प्रायश्चित्त आवे। तो वह सारंभी सपरिश्रम समझना। क्योंकि पड़िमाधारी तो साधु से लेवे ही नहीं, तो उनको साधु देवे ही कैसे, जिसमे नसीथ की सात्ती वतार्न भी बिना विचार की है, क्योंकि पड़िमाधारी श्रावक को अन्य तीर्थी सरीसे कहना विचारवान का काम नहीं।





पूर्वपक्ष-महावीरजीके साधु उद्देशिक लेवे उममें तो दाता र आर साधुजी दोनों को महावीरजीके साधु भला नहीं जानें परंतु पारशनाथजी के साधु को भला जानने में कुछ दोष नहीं

उत्तरपक्ष-हे भाई वैसेही समझ लेवो कि. पड़िमाधारी थावक को साधु देवे जिसको साधु भला नहीं जाने. पान्तु गृहस्थ देवे उसका तो धर्म ही है. साधु भी उसको बुरा नहीं समझते हैं ।

पूर्वपक्ष-पड़िमाधारी थावक को देने में धर्म किस सिद्धांत में कहा है ?

उत्तरपक्ष-प्रथम तो हम दूसरे प्रश्न में ही सिद्ध कर चुके हैं कि मंगते भिखारी को भी करुणा भाव से देने में पुन्यका सद्भाव है तो फिर पड़िमाधारी का तो कहना ही क्या । ११ मी पड़िमा धारी को तो साधु सरीसा कहा सो उसको देनेका फलभी साधु सगीसा समझना । सो ही कहते हैं सूत्र दशाधुव स्कंध का अध्ययन छठे में श्री भगवान् ने ११ मी थावक की पड़िमा फर्माई है तिसमें ऐसा पाठ है ।

सूत्र—जे, इमे समणाणं, निगंथाणं, घम्मे, तंसम्मं, का एणं, फासेमाणं, पालेमाणं, गुरउ, जुगमायाए, येहमाणे, इह एण, तस्सेपाणे, उट्ठुक्क, पायारिज्जा, साहदु, पायारिज्जना, वि, रिद्धंवा, पायकट्ट, रियज्जा, संतिपरकम्मे, संजयामेव, परिके ज्जा, नां, उज्जुयं, गद्धेज्जा; इति ॥

अस्यार्थः—जे, इमे, समणाणं, निगंथाणं, घम्मे, के.वे हवो सगण साथ नः धर्म क्षमादिक- तंसम्मं, काएणं, फासेमा,



४ नीधों की अनुरूपा का करने वाला है, इत्यादिक साता का कामी होने से भविजावत् चरम भगवान् सनत्कुमार इन्द्र है। अब विचारना चाहिये कि सनत्कुमार इन्द्र साधु साध्वी था वह श्राविका की साता बंधने से ही सुलभ बोधों और चम भवि का फल कटा तो फिर पड़िमाधारी उत्कृष्ट श्रावक को दातार निर्दोष भात पाणी देके साता उपजाये तो मोक्ष का फल क्यों नहीं दोगे. अपितु दोगे ही। तथा यह भी विचारो कि पड़िमाधारी श्रावक को दातार देवे, वह क्या जगण के देवे. क्या ११ मी पड़िमाधारी श्रावक को संसार का काग भांग सेवाने वास्ते देवे, या कोई पाप कराने को देवे। नहीं १ उन कामों के वास्ते तो पड़िमाधारी श्रावक को देने का संभव ही नहीं. क्योंकि ११ मी पड़िमा में पाप करने के त्याग है तो जो दातार पड़िमाधारी को देवे वह तो फल गुणापार जाण. गुण अनुमोदन करके देवे तो देनेवाले दातार को तो धर्मका लाभहीन हाणका संभर होता है। तथा सूत्र में यह ११ मी पड़िमा में भिन्नावृत्ति करणी भी तोर्थकरने उपदेशी है तो जाणो कि श्रीतीर्थकर भगवान ने केवल ज्ञान में महा लाभ दायक वृत्ती जानके ऐसी कठिन वृत्तिका उपदेशी है।

अगर तुम्हारे समीची श्रद्धा परमेश्वर की होती तो एव श्रावक पड़िमाधारी तो निरे और घणो देने वालो दाता इव ऐसी वृत्ति भगवान् क्यों कर करमाते तो कही भाई पड़िमाधारी श्रावक को दान देने में एकान्त पाप बचावे वह क्या संभर स भी - पादा जाना है? कभी नहीं। तथा ११ मी पड़िमा में तो पड़िमाधारी पाप करन का करान का न्याग करे है तो



४ नीयों की अनुकंपा का करने वाला है, इत्यादिक साता का कामी होने से भविजावन् चरम भगवान् सनत्कुमार इन्द्र है ।  
 अथ विचारना चाहिये कि सनत्कुमार इन्द्र साधु साध्वी श्रावक श्राविका की साता वंदने से ही सुलभ शोधों और चरम भवि का फल कहा तो फिर पड़िमाधारी उरुहूट श्रावक को दातार निर्दोष भान पाणी देके साता उपजाये तो मोक्ष का फल क्यों नहीं दायें. अपितु होवे ही । तथा यह भी विचारो कि पड़िमाधारी श्रावक को दातार देवे, वह क्या जाण के देवे. क्या ११ मी पड़िमाधारी श्रावक को संसार का काम भोग सेवाने वास्ते देवे, या कोई पाप कराने को देवे । नहीं २ उन कामों के वास्ते तो पड़िमाधारी श्रावक को देने का संभव ही नहीं. क्योंकि ११ मी पड़िमा में पाप करने के त्याग है तो जो दातार पड़िमाधारी को देवे वह तो फल गुणापात्र जाण. गुण अनुमादन करके देवे तो देनेवाले दातार कोता धर्मका लाभहीन हाणका संभर होता है । तथा सूत्रमें यह ११ मी पड़िमा में भित्तवृत्ति करणी भी तीर्थकरने उपदेशी है तो जाणो कि श्रीनीर्यकर भगरान ने केवल ज्ञान में महा लाभदायक वृत्ती जानके ऐसी कठिन वृत्तिका उपदेशी है ।

अगर तुम्हारे सगीमी श्रद्धा परमेस्वर की होनी तो एक धारक पड़िमाधारी तो निरे और घणों देने वाला दातार हूँ ऐसी वृत्ति भगवान् क्यों कर फरमाने तो कही भाई पड़िमाधारी श्रावक को दान देने में एकान्त पाप यवावे वह क्या सर्वज्ञ से भी ज्यादा जाना है? कभी नहीं । तथा ११ मी पड़िमा में पाप करने का कमान का त्याग करे है ना



को जो कोई दातार निर्दोष भात पानी सं भाव सहित प्रति-  
लाभे तो उस दातार को भी फल साधु सरीसा होवे ।

पूर्वपक्ष-११ मी पड़िमा को धारन करने वाला तो पड़िमा  
पूर्ण हुवे पीछे गृहवास में चला जाता है, संसार का काम करता  
है, उसको देने में निर्जेरा लाभ कैसे होवे ।

उत्तरपक्ष—प्रथम तो जिस श्रावक ने ११ मी पड़िमाधारी  
वाद गृहवास में जावे ऐसा संभव नहीं । ११ मी पड़िमा  
का काल पूर्ण होने से, या तो पुनः फेर पड़िमाधारन करे, या, सं-  
यम लेवे या संथारा करे । क्योंकि मांग के भित्ता वृत्ति क्रियां बाद  
गृहवास में आने से जैनधर्म की हांसी होती है, इससे और आनंद-  
जी आदि १० श्रावकों ने ११ मी पड़िमाधारे बाद संथारा किया,  
परन्तु गृहवास में पीछे नहीं आये । तो यह बात कहनी भी संभव  
नहीं है कि ११ मी पड़िमाधारी पीछा गृहस्थ का काम करने  
लग जावे, दूसरा जो कदाचित् कर्म के जोरसे, कोई गृहस्था-  
श्रम में चला भी जावे, और गृहस्थ के साव्य काम करने भी  
लग जावे तो दातार तो उसको साधु समान क्रिया कर्ता जान  
के देवे है, उसके गुण अनुमोदना कर्मके देवे है, परन्तु गृहस्था-  
श्रम में जाने वास्ते नहीं, तो फिर देने वाले को पाप किस  
वास्ते लगे? या तुम हठ करके कहो कि देने वाले को पाप  
लगे ही, तो कोई साधु साधुपना पालना था उसवक्त में साधु  
जान के किमी ने दान दिया, तो फिर वह साधु कर्म के जोर  
से भ्रष्ट होगया तो दान देने वाले को धर्म हुआ कि पाप ।

पूर्वपक्ष- हम को तो मालूम नहीं पड़े कि यह अब होवेगा.





पालो, तिसका भागी दातार नहीं। जेकर ऐसा नहीं मानांगे तो जिनको तुम गुरु श्रद्धे हो वह सर्व मृत्यु के पश्चात् अत्रती होवेंगे, तो उनका अत्रत का पाप भी तुम को लगेगा। क्योंकि तुम्हारे अन्नादिक के प्रताप से तुम्हारी श्रद्धा से तुम्हारे गुरु देवलोक में जाते हैं। जेकर तुम दान देवो ही नहीं तो तुम्हारा गुरु कोई होवेही नहीं, और देवलोक में जावे ही नहीं तो फिर तुम तुम्हारे गुरु को दान क्यों देते हो ।

पूर्वपक्ष—इमतो दानादिक करके हमारे गुरु का संयम साज देते हैं परंतु देवलोक के अत्रत सेवाने के कामी हम नहीं ।

उत्तरपक्ष—वैसेही समझ लेवो कि पड़िमाधारी श्रावक को दातार साधु सरीसी वृत्ति पालने का साज देते हैं परंतु गृहस्थ संबंधि आश्रव से बाधने को नहीं। वस इसी तरह से सूत्र के प्रमाण से ११ मी पड़िमाधारी श्रावक को निर्दोष ४२ दूषण टाल के दातार भाव सहित दान देवे उसको तो साधु को देने सरीसा लाभ सूत्र से सिद्ध है परंतु एकांतपाप नहीं ।

इति मृत्युत्तरदीपिकायां तृतीयं मृत्युत्तरं समाप्तम् ।

## अथ चतुर्थ प्रश्न प्रारंभ ।

साधुजी महाराज को किसी दुष्ट ने फांसी दी, और दयावान ने धर्म बुद्धि से खोल दी, तुम उन दोनों को पाप कहने हो तो पाठ दिखलाओ ।

उत्तर-तेरेपंथियों का प्रथम तो साधु को फांसी देना ही धर्म विरुद्ध है क्योंकि साधु को फांसी कौन देवे। कारण साधु पंच महाव्रत पालता है, यह तो सदा धर्मज्ञ है उसको फांसी देने का प्रश्न ही वृथा है परंतु कोई अज्ञानता से प्रश्न करे उसके वास्ते शास्त्रोक्त उत्तर यह है ।

इनका प्रत्युत्तर—( समाधान ) देखा भाई, जो पुरुष आप धर्म से विरुद्ध आचरण करता है, तब उसको दूसरे का प्रश्न भी विरुद्ध मालूम पड़ता है, क्योंकि जिनकी श्रद्धा ऐसी विपरीत है कि साधु को मरते हुये को फांसी काट के बचावे तो पाप लगता है, तो वैसे ही दया रहित पुरुषों को यह प्रश्न धर्म से विरुद्ध दीखता है, क्योंकि विरुद्ध धर्म वाले को दयारूप प्रश्न दीखता है । तथा आप अज्ञानी होने जद दूसरे के सत्य प्रश्न को भी अज्ञान रूप बतावे, परन्तु सूब मालुम हुवा कि, तेरेपंथियों ने पूज्यजी से कैसे प्रश्न का उत्तर धार के लिखा है कि प्रश्न है तो भी उसप्रश्न को विपरीत बतलाते हैं । परन्तु हे मज्जन पुरुषों, जो मध्यस्थ दृष्टिमान होवों तो विचारना कि प्रश्न विरुद्ध है कि नृत्पार्ग समझ विरुद्ध है । सो लिखते है । प्रथम तो श्री अंगददशांग जी से लिखा कि श्री कृष्णजी व भाट और देवकी के अज्ञान वसुदेवजी के

पुत्र मुनिगण सुकुमालजी श्रानेपनाय २२ मा तीर्थकर के शिष्य तान मुनि ने स्मशान में ध्यान किया, वहां पर सोमल ब्राह्मण ने द्वेष से मस्तक पर मिट्टी की पाल बांध के खैर के खीरे ( अग्नि ) धर दिये उस परिपह से मुनि काल कर गये। इस बात को जैनियों के छोटे २ लड़के भी जानते हैं, सो देखो भाई दुष्ट जीव ने आगे खीरे मुनि के शिरपर धर दिया, कोई दुष्ट द्वेष भावसे फांसी भी चढ़ावे, उसमें आश्चर्य क्या है। परन्तु क्या करे छोटे २ लड़के जितना भी ज्ञान उत्तर देने वाले को नहीं रहा, तिसका क्या किया जावे। तथा अन्य भी मुनियों को बहुत से दुष्टों ने परिपह दिये, उनका भी विस्तार जैन ग्रंथों में बहुत है, जैसे किमेतारज मुनि के शिरपर सुनार ने आलावाद यानी चमड़ा बांध के मार डाले। खंदक मुनि की सारे शरीर की खाल उतरा डाली, जिससे मर गये। खंदक मुनि आदिक ५०० अणुगार को पालक पुरोहित ने घाणी में घाल के पील डाले। कहो रे मित्र यह साधुपणा पालते थे कि नहीं? उनको यह महा मरणांतक कष्ट क्यों उपजाया।

पूर्वपक्ष—सयम तो पालते थे परन्तु, दुष्ट पुरुषों ने उनको परिपह उपजाया।

उत्तरपक्ष—अहोरे मित्र, हमारा यह प्रश्न है कि कोई दुष्ट पुरुष साधुजी को फांसी देवे और धर्मवान पुरुष दया लाके काट देवे, तो तुमने इस प्रश्न को धर्म विरुद्ध कैसे बतलाया। यह तो प्रत्यक्ष दीखता है कि घाणी में पीलणा यह खाल सब शरीर की उतारणी ऐसा घोर कर्म दुष्ट पुरुषों ने किया तो फिर साधु को फांसी देने रूप घोर कर्म कोई दुष्ट पुरुष करे, इसका सभव



गौतम स्वामीजी ने तो क्रिया का प्रश्न करा और तुमने पुन्य पाप का नाम लिख दिया। मैं आगे मूल पाठ से दिखावेंगे अभी तो इनका उत्तर संपूर्ण लिखते हैं। फिर श्री भगवान ने सूत्र निशीथ के ३ रे उद्देश के ३४ वे बाल में कहा है कि साधु हर्ष छेदने छिदावे छेदने हृण को भला जाने तो १ महीने का प्रायश्चित्त आवे तथा सूत्र आचारांग के दूसरे स्कंध में तेरहवें अध्यायन में कहा है कि किसी साधु के मण फोड़ा कुंसी आदि है उसको गृहस्थों छेद तो उसका अनुमोदन करना बर्जित है यह नेरापथियों का उत्तर है।

अब हमका मन्युत्तर मुनिये कि प्रथम तो यह उत्तर मूल से ही विरुद्ध है क्योंकि प्रश्न तो फांसी का और उत्तर देना मर्मों का यह मन्युत्तर विरुद्ध है। परन्तु तुम क्या करो तुम्हारे गुरुजी ने भ्रमविध्वंसन के ११२ वे पत्र में फांसी छेदने का तो अपने मुखसे प्रश्न उठाया और उत्तर हर्ष छेदने का दिया इस से कहते हैं कि भ्रमविध्वंसन के भ्रम के गोलों का पार नहीं।

पुत्रपत्न ममा छेदने में किया है तो फांसीमें भी है।

उत्तरपत्न ममा छेदने में तो क्रिया शुभ कही है। उसका समाधान आगे सूत्र और अथ टीका सहित करेंगे परन्तु हाल ना यह बचाना कि ममा तो माधुक गरीरका एक अरथ है परन्तु फांसी की रम्या ना माय की नहीं। यह तो गृहस्थ की है उसका रम्या दयारान न मायके बचाने निमित्त काट टाली रम्य पाप नादना करा।

परपत्न मायु का गृहस्था म म करान क न्याग है और गृहस्था कृष ना त्रमकाऽ पुन्य न हिमा रान का न्याग किया



को गृहस्थ से काम कराने का त्याग है ऐसा गोलमाल कह-  
दिया, परन्तु कौनसा कार्य नहीं कराना. तिमका विधान नहीं  
खोला. अब हम पूछते हैं कि कोई साधू के ५ या १० हाथ  
कपड़े की जरूरत हुई तब कोई गृहस्थ दातार से साधू ने मांगा  
तब वह दातार बहुत देने लगा. तब साधू बोला कि ५ हाथ  
फाड़ दो तब दातार ने फाड़ दिया. कही भाई यह कपड़े फाड़ने  
रूप कार्य दातार ने साधू वास्ते किया तो उस दातार को पाप  
हूरा या धर्म या साधुभी के गृहस्थी से काम कराने के त्याग  
भागि कि रहे.

पूरेपल्ल इस में तो दातार को धर्म हूरा क्योंकि साधू को  
कपड़ा देने में साधू का संयम को उपर्युक्त यानी आधार दिया  
आर साधू तो क भी त्याग नहीं भागे क्योंकि कपड़ा आधार  
पानी तो गृहस्थी से लेते हैं इसके त्याग नहीं हैं अपनी नेम-  
गाय की चीज को तोड़ने फोड़ने रूप काम गृहस्थ से नहीं कराने  
हैं. कपड़ा तो गृहस्थ का है उसको साधू के वास्ते फाड़के  
देने तो लेने में कुछ भी टाँप नहीं.

उपर पल्ल ना है भाई हम ऐंमही कहते हैं कि दो तीन  
हाथ का पन्नादार कपड़ा फाड़ के गृहस्थी देवे तो देने वाले  
को धर्म हूरा. ना ये क्या आर्या अगुनी की जाड़ी कांसी की  
गर्मी को साधू का बचन वास्ते फाट तो उसमें पाप कहां से  
उड़ गया हा हा हा मरक जगसा कपड़ा ट के साधू का साधू  
पल्ल का माल प उम प ना ना किम मान हूय साधू की  
कामा क रक पल्ल क गस्वन म प व किमा मनि में लगा  
दिया नेम हूरा साधू क नहा नेम गस्वा भी साधू की





समझ लेना. हम तो तुम्हारे हित के लिये जो सिद्धांत में मरणांत कष्ट होने से कोई कार्य गृहस्थी साधू का करे तो स्थिवरकल्पी साधू को कल्पे तिसका मूल सूत्र का पाठ लिख दिखाते हैं सो एकाग्रचित्त करके श्रवण करिये. सूत्र व्यवहार का उद्देशा पाचवां सूत्र २२ मां का पाठ ।

सूत्र-निग्रंथचणं, राउवा, वियालेवा, देहपुठो, लुसिञ्जा, तंडळी एवा, पुरिमोवा. उमजेञ्जा, पुरिसोवा, इक्षीए, उमजेञ्जा, एवंमे, कप्पति, एवंसे चिठानि, परिहारेचं, नोप्पाअणति, एस कप्पो, थेर कप्पियाणं, एवंसे, नोकप्पंति, एवंसे, नो चिठइ, परिहारं च, पउणइ, एसकप्पो, जिण कप्पयाणं,

इसका ट्यार्थ जैमा है तैसा लिखते हैं-साधु साध्वी नइ रात्रइ वियालेइ देह सर्व सर्व विप डंक दीधो करइ पुरुपनेइ हायेइकरो डसनी तिगिच्छा करावइ तंएहवो डसइ तिवारं कारने स्त्री जातं पुरुपइ स्त्री ने हाथे करी डसनी तिगिच्छा करइ इम इणा पनेइ एणइ प्रकारे ते थिवर कल्पी नइ कल्पे थिवर कल्पी अपवादां बहु इच्छी एण प्रकारेइ ते थिवर कल्पी ने अपवाद मेवनां परियाय तिष्ठ रई पिण थिवर कल्पी भृष्टन थार्ई परिहार तप पिण न पाये एह कल्प आचार थिवर कल्पी नो कहेऊ इम तेह नेइ नइ कल्पइ इणे प्रकारे व्यावच नो कराउवो जिन कल्पी ने न कल्पई उत्सर्ग थित इण प्रकारे जिन कल्पी पर्याय न तिष्ठे न रंहेउ परिहार तप पिण पापइ एह कल्प जिण कल्पी नो कहेउ उम मे जिन कल्पी ने रहे प्रायश्चित्त पाये एह आचार जिन कल्पों ने एइ कल्पों ॥ इत्यार्थ

अब अर्द्धी नाम से उम सूत्र के मूलपाठ में साफ कहा

है कि साधू साध्वी को सर्प काटे तिसके जहर को कोई गृहस्थ स्त्री वा पुरुष हाथादिक का भाड़ा देकर उतारें तो स्थिवर कल्पी साधू को कल्पे और इसका प्रायश्चित्त भी कुछ नहीं आवे. अब विचारो कि जब सर्प का जहर भी साधू साध्वी को गृहस्थों के पास भड़ाना कल्पे एमा मूलपाठ सूत्र का बोल रहा है तो तुम्हारे गुरु जीतमलजी का कहना सर्वथा वृथा है और सिद्धांत से विरुद्ध है कि नहीं जो साधू की फांसी काटने में पाप बतलाया और जिसने साधू को फांसी काटी उसका त्याग भंग कराने वाला बतलाया. हे पित्रो ! वीतराग के वचनों की प्रतीति हो तो विचारना कि जो साधू साध्वी को सर्प का जहर भड़ाना कल्पे तो फिर फांसी कटानी क्यों नहीं कल्पे. सिद्धांत के लेख से साधू को सर्प के डंक का जहर उतारने में और फांसी काटने में एकांत धर्म है और स्थिवर कल्पी साधू साध्वी को सर्प के जहर भड़ाने का व फांसी की रस्सी कटाने का त्याग भी नहीं है तिससे इन उपरोक्त कामों का साधू को प्रायश्चित्त भी नहीं है ।

अब जो तुम्हारी सूत्र भगवतीजी की साक्षी श्रवण जाण मनुष्यों को भ्रमाणे के लिये दी है सो हम सूत्र पाठ तित्वके भ्रम दूर करते हैं एकाग्र चित्त करके श्रवण करो ।

सूत्रपाठ-नन्मय, अंनियाड, लंबड, तंचेविभ, अदखुड, सि, पाडेड, पाडेडत्ता, अंमिया, उद्विडेभा, मेगूणं, भंवेजे, छिडेभा, नन्मकड, विगिया, कज्जड, जन्मछिड्जडणो, नन्मद्विगिया, कज्जड, एणणंभंगणं, धम्मनगण्डणं, इना, गायमा, जल्लिडड, धम्मं नराणण. ॥ इति .

अस्यार्थः तेहने ब्रह्म फोडा हर्ष ते नासिकारी लटके छे तेने तेइ ज प्रते निश्चय वैद्य देखी ने अष्टपि प्रति भूमिकाइ लगारे कपाडी ने पढ्या विना छेदाए नहीं. ते भणो हर्ष पाद्वणा थी छेदइ ते निश्चय है. भगवान् ते वैद्य हर्ष प्रते छेदे तेने केतली क्रिया लागे. वैद्य ने क्रिया व्यापार रूप ते शुभ धर्मनी बुद्धि छेदताने अने लोभादिकयी छेदता ने अशुभ क्रिया होबे. जे साधुनी हर्ष छेदे ते साधु ने क्रिया न हुवे. निर्व्यापार पणा यकी सर्वथा क्रिया अभाव अथवा इम नहीं ते कहे छे एक धर्म अंतराय लक्षण क्रिया तेने पिण थाए एतले धर्म अंतराय शुभध्यान नो विछेद हर्ष छेदन अनुपोदना थी इति प्रश्नः

उत्तर—हे गाँतम जे छेदे इत्यादि, धर्म अंतराय एतला लगे कह्यो. ॥ इति सूत्रार्थ ॥

अब देखो भाई इहाँ सूत्र में तो जो वैद्य धर्म बुद्धि से छेदे तो उसको शुभ क्रिया यानी पुण्य या धर्म है और जेकर लोभलाभ से हर्ष छेदे तो अशुभ क्रिया है फिर तुम या तुम्हारे गुरुजी धर्म बुद्धि से मुनि का हर्ष वैद्य छेदे. तिसमें पाप कहां से कहने हो. तथा टीका में भी ऐसा ही खुलासा है.

तथा च टीका ॥ तस्सति वैद्यस्य क्रिया व्यापार रूपा साच शुभा धर्म बुध्याब्धिदानस्य. लोभादिनात्त्व शुभा क्रियते.

टीकाथे—निम वैद्य की क्रिया छेदन व्यापार रूपा सो क्रिया शुभ है धर्म बुद्धि करके काटे तो लोभादिक करके काटे तो अशुभ हाना है. इति

अब फिर उर्मा टीका में विचारलो कि धर्म बुद्धि से हर्ष



हुए तो कहां भाई उस साधू को संकल्प विकल्प मलीन परिणाम से दातार देनेवाले को दान देने में धर्म हुआ कि पाप.

पूर्णपक्ष—दातार को तो धर्म है क्योंकि दाता का भावतो उन मुनि को साता उपजाने के हैं परंतु मलीन परिणाम करने के या तकलीफ उपजाने का नहीं ।

उत्तर पक्ष—तो हे भाई वैसे ही क्यों नहीं समझते कि वैद्य का भाव तो मुनि के दुःख मिटाने के हैं परंतु साधू के धर्म अंतराय पाड़ने के नहीं और मुनि अपना कल्प छोड़ के अनुमोदना करे तो धर्म अंतराय होवे परन्तु वैद्य को तो धर्म ही होवे. धर्म के भाव से हर्ष काटने से तथा कोई गृहस्थ ने पथ्य मनोद्ग आहार कोई साधू को दिया और साधू ने उस पर राग भाव अच्छा जाण सराह के खाया तो खाने वाले साधू को दोष लगा परन्तु दातार को धर्म ही हुआ वैसे ही हर्ष छेदने का साधू अनुमोदे तो साधू को धर्म अंतराय होवे परन्तु वैद्य को अशुभ किया नहीं, तथा तुम्हारा यह भी कहना ठीक नहीं कि जिम काम को साधू भला नहीं जाणे उसमें किंचित् मात्र धर्म नहीं, क्योंकि कई काम ऐसे ही हैं कि साधू को अनुमोदना नहीं करनी परन्तु गृहस्था को धर्म का लाभ होता है सो दिखाने हैं. जैसे कोई मुनि विहार करके जाते उस वक्त कोई गृहस्थ भक्तिवान साधू को पहंचाने को चला, साधू ने निषेध कर दिया तो भी वह गृहस्थ मुनि की भक्ति के वास्ते पांच मान कोश मंग गया अब साधू तो उमको भला भी नहीं जाण उमम कुछ लेव भी नहीं, जेकर साधू उससे लेने का परिचय करे या भला जाणे तो उमको प्रायश्चित्त आवे.

अब कहो भाई साधू की भक्ति वास्ते गृहस्थी साधू के संग जावे उसको साधू तो भला नहीं जाये परन्तु गृहस्थी को तो भक्ति का लाभ हुवा कि नहीं, तुम्हारी श्रद्धा के लेखे तो वह गृहस्थ साधू के त्यागको भंगाने का कामी ठहरे। उससे एकांत पाप उस गृहस्थी को हुवा समझते होंगे जेकर एकांत पाप होवे तो फिर तुम लोक तुम्हारे पूज्य आदिकों को कई कोश लग पहुंचाने क्यों जाते हो या तुम्हारे गुरुजी तुम्हारे संगते क्यों विहार करते हैं और तुम को पांच मात कोश तक सेवा भक्ति करणी ऐसा नियम क्यों कराते हैं तो हे भाई तुम्हारी श्रद्धा के लेखे तो तुम सर्व नेरेपंथी श्रावक कि जो तुम्हारे गुरु को पहुंचाने जाते या संग रहते वह या तुम्हारे गुरुजी जो तुम्हारे संग विहार करें यह सर्व तुम्हारी श्रद्धानुसार भगवंत की आज्ञा बाहिर ठहरे।

क्योंकि श्रीभगवान ने तो एक वक्र भी गृहस्थ के संगते विहार करे तो प्रायश्चित्त आवे ऐसा फुरमाया है तां फिर तुम्हारे पूज्यजी तो गृहस्थी के संग विना प्रायः विहार करते ही नहीं, तो तुम्हारी श्रद्धा के अनुसार तुम्हारे पूज्य जी को भी हमेशा दोष लगता होगा, और एक वक्र दोष लगावे तो तुम्हारी श्रद्धा साधू मानने की है नहीं, तो फिर यह बड़ा विचार का कार्य है, सो बुद्धिमान समझलेवोंगे, या तुम्हारी श्रद्धा के अनुसार जो श्रावक श्राविका साधू को पहुंचाने जाते हैं को-शाबंध संग रहते हैं वह भी साधू का साधू पणा के लुटारे ठहरे, तो यह तो बड़ा पाप है, कि साधू का साधू पणा लुटाया तो वह जो साधू को पहुंचाने जावे, या संग रहे, वह सब महापापी ठहरेंगे.

पूर्वपक्ष-साधु को गृहस्थ संग विहार करने का मायभिन  
हिस सूत्र में कहा है.

उत्तरपक्ष-सूत्र नमीथ के दूसरे उद्देश के ४० मा ४१ मा  
४२ मा सूत्र में शुलाशा पाठ है. सो लिखते हैं ध्यान लगा कर  
सुनिये—

सूत्रगत-जेभिस्तु, अणत्थिएणवा, गारत्थिएणवा, परिहा-  
रित्था, अपरिहारिएणं, सद्धिं, गाहावद्, कुलं, पिंढ्याय, पदि-  
याए, अणुपविमद्, भावा, निव्वमद्, भावा, अण, परिसंतवा,  
निव्वमंतवा, साइभद्, ४० जेभिस्तु, अणत्थिएणवा, गारत्थि-  
एणवा, परिहारित्था, अपरिहारित्था, एणं सद्धिं, यदिया,  
वियारभूमिंसा, वियारभूमिवा, निव्वमद्भावा, पयिसद्भावा,  
निव्वमन्वा, पविमन्वा, साइभद्, ४१ जेभिस्तु, अणत्थिए-  
णवा, गारत्थिएणवा, परिहारित्था, अपरिहारिएणं, सद्धिं,  
गामाण्णाम, द्दुइभद्, द्दुइभंतंसा, साइभद्, ४२ ॥ इति ॥

अब देखो सूत्र नमीथजी के मूलगत में लिखा है अब  
अच्छी तरह से हृदय के ज्ञान नेत्र खोल कर के देखो कि जो  
साधु अन्यनेत्री अथवा गृहस्थों अथवा पाशुण्या के माये  
गान्धी जाव शरीर बिना का जावे. शूत्राय की भूमिका  
में जाव या मायाण्ण नाम विहार करे, करवे, करत हृय का बना  
जाव न उस साधुको ? याम का मायभिन भावे. अब रिया-  
ग्ना सादिय कि तुम्हारे गृहस्थों गृहस्थों के माय बेरों का भी जा-  
ने है और तुव जाव साधुना जाव पसहके गुलाह भी लाने और  
तुम्हारे गृहस्थों के गृहस्थियों के संग शरीर बिना का भी  
जावे है आ. तुव जाव गृहस्थों के माय माइ ममभके शरीर







होने में तो तुम आबक नाम के धराते हो, और तुम्हारे तुम तुम संग जानेवाले आबक को भ्रम माने कि माधु पनेकी सुंदरी माने, और जो काम माधु नहीं करते वह काम तुम्हारी माधुके मन उपरांत, माधुके वास्ते परे तो हमसे तुम्हारे सुखी माता, दुर्गति के खाता बताते हैं, तो फिर तुम दुर्गती शामिल करने को सुखी के संग बंधो जाते हो, व तुम लोगों को तुम्हारे सु-रक्षी ने नशीब का पाठ नहीं दिखाया है कि और तुमको संग माने नहीं रोके तो और कर या उपरल पाठ को देख के म-मझ जाओ।

दूरदल पहुंचाने को तो तुम्हारे आबक लोगकी मानते हैं। उपरदल-माने हैं पानु तुम्हारे मरीमी हानी अज्ञा नहीं कि फिर काम को माधु भला नहीं माने किनसे विविन्नवर्ती धर्म नहीं।

दूरदल-माधुको आबक पहुंचाने जाते हमसे तुम क्या समझते हो ?

उपरदल-हमसे भिन्नता के जेमा है जेमा ही समझते हैं, कि कथन को हम तुम्हारे को संग मानने का उपदेश नहीं देते हैं कि तुम हमारे संग अहि नेहा कि विद्य को या ऐसे न्याय भी नहीं समझते कि तुम हमारे संग पाँच दल होना ही अहि समझते ही अंधकार का बंधो, कर तुम्हारी हमारी सुखी ने पहुंचाने माने या तुम्हारे के बाहिर उनका कर देते हैं कि कर हमारे संग मान कर कर

दूरदल मान कर कर तुम्हारे बाहिर हमारे तुम के बाहिर कर है ?

उत्तरपक्ष-सूत्र आचारांग के दूसरे ध्रुतस्कंध के १५ वां अध्यायन में श्री महावीर मधु जी दीक्षा लेके विहार करा. तब सर्व कुटुम्ब को भापासपिति से विसर्जन किये. यानि आगे हमारे संग मत आवो ऐसे कह के आगे चले. वैसे ही साधू भी गृहस्थ को निषेध करके आगे विहार करते हैं और निषेध करणें उपरांत भी मुनि की सेवा भक्ति करणें को गृहस्थी आवे तो मुनि उससे अन्न पाणी नहीं लेवे उसका साज रस्ते में नहीं घंटे. क्योंकि उससे अन्न पाणी आदि लेवे तो वह साधू गृहस्थी को संग रखने का कामा ठहरा और गृहस्थी को संग राखे, रखावे, रखते को भाला जाये तो साधू को एक मास का मा, याश्चित्त आवे, इस वास्ते साधू तो उस को अनुमोदे भी नहीं. उससे कुछ लेवे भी नहीं. किन्तु निस्पृहणीय रहे. और उस आते हुए को निषेध भी देवे कि हमारे संग मत आवो. तो उस साधू को दोष नहीं संभवे. परन्तु जो मुनि के गुण को अनुमोदन करके मुनि की सेवा भक्ति बने जहां तक करे तो उस भक्ति के करने वाले को तो भक्ति का धर्म यानी लाभ ही हुवा. और जो एकांत पाव होना तो श्री भगवान् श्रावकों को मनादि फरमा देते कि तुम को मुनि के सामने जाना नहीं कसे या पहुंचाने जाना नहीं कसे. ऐसा कोई सूत्र में लेख नहीं है. अथ वैसे ही समझ लेवो. कि जैसे साधू का गृहस्थ के संग जाने का विहार करने का कल्प नहीं. और गृहस्थ संग आवे तो निषेध भी करदेंगे. परन्तु गृहस्थी अपना भक्ति से मुनि के गुण अनुमोदन भक्ति का लाभ ही है. वैसे ही मुनि का गृहस्थी से हर्ष छेदन कराना नहीं. जेकर छेदवावे तो याश्चित्त आवे





## प्रश्न पंचम प्रारंभः ॥

गायों ने बाढ़ा भग हुआ है. निममें किमी दृष्ट ने लाप लगा दी. किमी दयावान ने किबाड़ गोल बाहिर निकाल दी. और गायें बच गई. तुम इन दोनों को पाप कहते हो सो पाठ दिग्बलाघो ॥ इति प्रश्नः ।

जरा तैरे पंथा मित्रों विद्याना कि इमान प्रश्न नो उपर लिखे मुताबिक है और तुमने प्रश्नोत्तर में कुछ विषय बदल के लिखा सो यह है. गायों ने बाढ़ा भग हुआ है निममें किमी ने लाप लगा दी किमी ने किबाड़ गोल बाहिर निकाल दी. निममें गायें बच गई. इसमें पाप कहते हो सो पाठ दिग्बलाघो ॥ इति ॥

अब ख्याल करना चाहिये कि प्रश्न नो दृष्ट लाप लगा दी. और दयावान ने निकाल दी और तुमने दयावान और दृष्ट इन पद को और दोनों को पाप कहते हो. यह सब किम लिये लिखा इन बुद्धिमान नो हमने ही समझाये हैं कि जैसे प्रश्न के शब्दों को लिख के लिखते है वैसे ही मित्रों के शब्दों को कुछ गौर के विना लिखते है तो कुछ और लिख दिया कुछ नो हम पहिले प्रश्न में लिख जाये हैं. और औरों को भी लिखेंगे निममें बाहिर हो जायेंगे अब मेंसाधियों ने उत्तर दिया सो लिखते है

इसका इस प्रश्न का समाधान प्राप्त यह दिख हो के मुनिने ह प्रश्नोत्तर में कुछ बदल के लिखा सो यह है. गायों ने बाढ़ा भग हुआ है निममें किमी ने लाप लगा दी किमी ने किबाड़ गोल बाहिर निकाल दी. निममें गायें बच गई. इसमें पाप कहते हो सो पाठ दिग्बलाघो ॥ इति ॥

बांधे, बंधावे, तथा बांधते हुए को अनुमोदे तो चौमासी प्रायश्चित्त आवे. यह पाठ श्रीभगवान् ने स्पष्ट रीति से कहा है. जिसपर भी आप लोग नहीं मानोगे तो हम लोग आप लोगों को मोहनी कर्म का उदय विशेष समझेंगे यह तेरे पंथियों का उत्तर है.

इसका प्रत्युत्तर सुनिये—देखो देखो देखो भाई! तुम लोगों की भूल का कहां तक कथन किया जावे कि प्रथम तो नशीथ जी का १२ वां उद्देश का पाठ जिसको तुमने १३ वां उद्देश बतलाया और सूत्र तो गयरूप है जिसको तुमने पद्यरूप यानी गाथा बतलाई और सिद्धांत में तो ( जेभिसु, कोलूण, वडि-याए ) यानी जो साधु करुणावश जीव को करुणावती, दया मणी पण की वृत्ति करके बांधे, बंधावे या अनुमोदे, छोड़े छुड़ावे या अनुमोदे तो साधु को प्रायश्चित्त आवे और तुमने साधु का नाम और दयामणी वृत्ती का नाम छोड़ के समचे बांधे, बंधावे इत्यादि गोलमाल सूत्र से विरुद्ध लिख दिया तो अब विचारो कि मोहनी कर्म का उदय तुम्हारे प्रवल होरहा है कि नहीं, क्योंकि सूत्र का हर्फ १ भी जाण के ज्यादा कमती लिखे तो उसको मिथ्यात्व मोहनी कर्म लागे. मिथ्यात्व मोहनी जिसके उदयभाव में होवे वो ही विरुद्ध लिखे, कदाच तुम्हारे गुरुजी ने तुमको गोलमाल विपरीत धरा दिया तो उनको तो अपनी असत्य कल्पना को सूत्र का नाम ले के सत्य करने की लोभ दशा आगई हावे तो खैर उनकी वां जाणे, परन्तु तुमको तो गुरुजी से पूछना था कि चौमासी प्रायश्चित्त त्रम जीव गृहस्थी छोड़े

पंथाने खोले मुलांचे ही काये कां यह तो प्रत्यक्ष दोषता है कि पशु आदिक का बांधना, लड़का लड़की राखना, खाना, चराना, हाथी घोड़े पालना इत्यादि काम तो साधु प्रत्यक्ष करते ही नहीं, जैन साधु तो अलग ही रहे परन्तु अन्य राम-स्नेही मन्वासी आदि अपने मत की क्रिया में चलते हैं वं भी ऐसा काम नहीं करते हैं कि किसी के माय आदि पशु को बांधना खोलना तो साधु तो बांधे खोलेही कैसे अगर कदा-चित् कोई साधुपण से परमेश्वर की आज्ञा को उलंघि के किसी गृहस्थादि की मृशापद से या आजीविका कालिया कोई गृहस्थ के पशुआदि जानवर को बांधि, बांधाये, खोले, मुला वं निममे प्रायश्चित्त आवे, नगीथ में सर्व कथन साधु का है परन्तु गृहस्थ का नहीं परन्तु मरते, दृष्ट जीव को कोई खोले या लाय में बाहर निकाले, निमका प्रायश्चित्त कदा होरे तो बतावो ?

पूरुषत्र इमां मुकती करते हैं कि मूत्र नगीथ के १२ वें उद्देश में ऐसा पाठ है—

मूत्र-बन्धु, हान्गु, बटियाण, अगारं, तमबार्ण, त्राइ, तगवामण, लवा, मुत्रवामणरा, कट्टवामणरा, चम्ब-वामणरा, बलवामणरा, मृत्रवामणरा, मुभवामणरा, बरड, बरडवामाऽग्रजः । बन्धु, राड्डवर्तण, मुत्र, मुत्रं-वामाऽग्रजः ॥

इस पाठ में कहते हैं कि मूत्र का पचन मूत्रम त्रैव जे हारे तब मूत्र मूत्र वर प्रथम आवे है मूत्र मूत्र का



बंधावे खोले खुलावे ही किये का यह तो प्रत्यक्ष दृष्टान्त है कि पशु आदिक का बांधना, लड़का लड़की राखना, खाना, चराना, हाथी घोड़े पालना इत्यादि काम तो साधु प्रत्यक्ष करते ही नहीं, जैन साधु तो अलग ही रहे परन्तु अन्य राम-स्नेही सन्वासी आदि अपने मत की क्रिया में चलते हैं वं भी ऐसा काम नहीं करते हैं कि किसी के गाय आदि पशु को बांधना खोलना तो साधु तो बांधे खोलेही कैसे अगर कदाचित् कोई साधूपणे से परमेश्वर की आज्ञा को उलंघने के किसी गृहस्थादि की सुशापद से या आजीविका कालिया कोई गृहस्थ के पशुआदि जानवर को बांधे, बंधावे, खोले, खुलावे जिसमें प्रायश्चित्त आवे, नशीथ में सर्व कथन साधु का है परन्तु गृहस्थ का नहीं परन्तु मरते, हुए जीव को कोई खोले या लाय से बाहर निकाले, जिसका प्रायश्चित्त कहा होवे तो यतावो ?

पूर्वपक्ष—हमारे गुरुजी कहते हैं कि सूत्र नशीथ के १२ वें उद्देश में ऐसा पाठ है—

सूत्र—जेभिणु, कोलूण, वडियाए, थणपरं, तसपाणं, जाई, तणपासए, खवा, मुंजपासएणवा, कट्ठवासएणवा, चम्मपासएणवा, वेत्तपामएणवा, रजुपासएणवा, सुभपासएणवा, वधइ, वधंतंवासाइज्जेइ १ जेभिणु, वडिअतंवा, मुपइ, मुपंतंवासाइज्जेइ २.

इस पाठ से कहने हैं कि जेभिणु कहिये साधु व्रत जीव ने बांधे तथा खोले तो प्रायश्चित्त आना है तो फेर गायों को

लाना बताया तो वैया ही कुलुणवद्विया शब्द का अर्थ करणा करके खालना का भी अर्थ है क्योंकि सूत्र का पाठ को लुण वद्विया ऐसा है वस्तु अनुसंधानवद्वियाए नहीं है तथा तुम्हारे गुरुजी ने ( कोलुणवद्वियाए ) शब्द को करणा स्थापना निमित्त सूत्र आचारंग शतक २ अध्ययन २ उ० १ की साथी दी तो भी सूत्र विरुद्ध भावे है क्योंकि आचारंग में तो ( करण, वद्वियाए ) ऐसा पाठ है और नशीथनी में ( कोलुण, वद्वियाए, ) ऐसा पाठ है ॥ अर्थ ॥ तो कोलुण वृत्त्या याना आर्त्तावहा का होता है और आचारंग में ( करण, वद्वियाए ) इसका अर्थ करणा अणुंवा भक्ति अर्थ ऐसा होता है सो टीका में भी कहा है ( यतः कारुण्येन भक्त्या ) तो नशीथ का और आचारंग का पाठ अर्थ एकसा है नहीं तो मात्तो निगना भी भ्रम का प्रताप है.

पूर्ववद्वि-इसारे गुरुजी ने संतगद सूत्र में मूलमात्रो की अनुसंधान की साथी दी है.

उत्तरवद्वि-यहां तो अनुसंधान उपाए पाठ है वस्तु अनुसंधान वद्वियाए ऐसा पाठ नहीं है सो भी अयुक्त मात्तो है तथा तुम्हारे गुरुजी ने श्रीकृष्ण की मात्तो दीं सो भी निमित्त है तथा कि वहां भी अनुसंधान उपाए ऐसा पाठ है सो निमित्त व नहीं निमित्त तथा निर रक्षिया की रेखा देतो द्वारा करणा तय्यम पूर्व ऐसी मात्तो देते है वह भी अर्थ है क्योंकि सूत्र व वा ऐसा पाठ है कि रेखा देती ने निर रक्षिया उपाए दिया वहां ऐसा पाठ है निमित्त निमित्त कुलुण विष्ट उपाए है व अर्थ ॥ निमित्त उपाए मति देते काने करीने करणा देता

लना पताया तो वैसा ही कुंलुणवडिया शब्द का अर्थ करुणा करके खोलना का भी अर्थव्यक्ति है क्योंकि सूत्र का पाठ को लुण वडिया ऐसा है परन्तु अनुकंपवडियाए नहीं है तथा तुम्हारे गुरुजी ने ( कोलुणवडियाए ) शब्द को करुणा स्थापना निमित्त सूत्र आचारांग शतक २ अध्ययन २ उ० १ की साक्षी दी तो भी सूत्र विरुद्ध भावे हैं क्योंकि आचारांग में तो ( करुण, वडियाए ) ऐसा पाठ है और नशीयनी में ( कोलुण, वडियाए, ) ऐसा पाठ है ॥ अर्थ ॥ तो कोलुण वृत्त्या पाना आजीवका का होता है और आचारांग में ( करुण, वडियाए ) इसका अर्थ करुणा अर्थात् भक्ति अर्थ ऐसा होता है सो टीका में भी कहा है ( यथा कारुण्येन भक्त्यावा ) तो नशीय का और आचारांग का पाठ अर्थ एकमा है नहीं तो साक्षी लिखना भी भ्रम का प्रमाण है.

पूर्ववच-इसके गुरुजी ने अंतगद सूत्र में गूलमार्गी की अनुकंपा की साक्षी दी है.

उत्तरवच-वहाँ तो अनुकंप ठयाए पाठ है परन्तु अनुकंपा वडियाए ऐसा पाठ नहीं है सो भी अगुरु साक्षी है तथा तुम्हारे गुरुजी ने श्रीकृष्ण की साक्षी दीरी सो भी निर्गह है क्योंकि वहाँ भी अनुकंप ठयाए ऐसा पाठ है सो निर्गह में नहीं विने तथा बिने रगिया की रेणा देरी ऊपर करुणा उग्रद हूँ ऐसा साक्षी देने हैं वह भी अर्थव्यक्ति है क्योंकि सूत्र में तो ऐसा पाठ है कि रेपणा देरी ने तिन रिगद उग्रद किया वहाँ ऐसा पाठ है बिगद दिने कलुण दिने उग्रद दिने । अर्थात् ॥ बिगद इम साक्षी देने वने वरने करुणा दया

दे के वांरके खेलते हैं या मुहपती आदि के कपड़े में रखते हैं कि जिससे वे मक्खी आदिक जानवर गर्मी पाके चेत जाते हैं और तुम्हारे गुरुजी भी मक्खी आदिक को बचाते हैं कपड़े में वांरने हैं तो ऐसे जीव बचाने में पाप तुम कहते हो तर तो तुम्हारी भद्रा से साधु का साधु पण्य भी नहीं रहा क्योंकि तुम्हारे भ्रम विभ्रंसन के पत्र २० में कहा है कि अने प्रस और ने वांरें श्रोते ने साधु नहीं, वीतरागनी आशा लोपी ते माटे बंधन बांटे निणने साधु नहीं कहणों ते असाधु छे गृहस्थ गृह्य छे ॥

अब विचारो कि तुम्हारी भद्रा के अनुसार तो सर्वे साधु गृहस्थी गृह्य ठहरे क्योंकि धारण पाणी आदिक में पड़ी हुई मक्खी आदिक कहाने हैं कपड़े में लिपटने हैं पक्षी म्वांरने हैं पाण्डे संरण में ऊदग आदि मांटा जानवर पनन्शी पड़ जाते उमही भी पात्र क जन से बाहर निकामने हैं इसमें तथा तुम्हारे गुरु जी यह काम करने हैं तो भी तुम्हारी भद्रा अनुसार सर्वे साधु गृहस्थ गृह्य ठहरे क्योंकि चाहे ना पाप-स्त्रिन तुम ममन्त हा और मृद यह काम तुम्हारे गुरुजी करने जान हैं अहमोम है कि ऐसी भद्रा का बलोन कहीं तक दिया जाव.

पूरेरुत इवांरें गुरुजी ना अरना पात्र राज्म का मक्खी आदि का करदादिह में वांरने हैं या ऊदगादिह वह नाव ना अरना पात्र से बाहर काटने हैं ना उनका वाप्यायन ना है

उपश्रव-वर्गाव व ना वमा नहीं कहा कि अरन पात्र से मक्खी आदिह वहमाव ना अन्वहता करह करदादिह के वांरें म्वांरें उमहा वाप्यायन ना है वही ना मक्खी हपर है



वो तो करुणा ही हुई करुणा बिना पाप टरता ही नहीं और सिद्धांत वेभी ठाम ठाम करुणा करके बचाने का अधिकार सूत्र ठाणोंग आचारंग परन व्याकरण भगवती ज्ञाता आदि सूत्रों में है परंतु अपना पाप टारणे को बचाने ऐसा पाठ कोई सूत्र अर्थ टीकादिक में कहा भी नहीं कहा है.

पूरुषतः ऐसा है तो सिद्धांत में करुणा करके साधु बांधि बंधारि जिसका मायशिव्त क्यों कहा.

उत्तरपत्रः-इसी वास्ते हम ऊपर कह चुके कि सिद्धांत में तो ( कालुण उदियाए ) ऐसा शब्द है जिसका अर्थ आर्त्तविका निमित्त जाणना चाहिये और प्रम शब्द से मवादिक जाणना चाहिये क्योंकि इंद्रियादिक लट, मिठोला, कीदो भागी आदिक को रम्मी वर्गह से बांधना प्रत्यक्ष प्रमाण से भी नहीं छंटे और जानैत पढ़नों में लिखने भी हैं कि प्रम वाली से मोटे मवादिक पशु ग्रहण करणें इन वास्ते मोटे जीव मोद-दादिक जाणने निज को गृहस्थ की सुगामह दीनपणा करके यानी यह ग्रहस्थ के टार निकल जायेंगे इसलिये इनको बांध देउ तो ग्रहस्थ परे को आशागादिक देंगा. या गृहस्थ के बुद्ध जोनादि निमित्त टार को छोड़े कि टार के छोड़ने से प्रहस्थ परे पर सुगो हा के बुद्ध परे को देंगा या गृहस्थ का रागदा जिया टार टार को बांध छोड़े तो साधु का मायशिव्त कहा है. इत्यादिक अर्थ भी संभवनी मानुन जानी है परन्तु परने तं. व को दोहने का विषय कहा भी नहीं है.

पूरुषतः-कालुण उदिया नाम आर्त्तविका निमित्त करुणा शब्द कहा कहा है तथा मोद निमित्त करुणा शब्द कहा कहा है.

उत्तरपक्ष-मुनिये भाई प्रथम इस नसीध सूत्र का पाठ ही कोलुण बडियाए ऐसा है तिसका अर्थ करुणा वृत्ति होता है तथापि हम ऐसा ही पाठ दूसरे सूत्र से बताते हैं साख सूत्र दुख विपाक के पहिले अध्ययन में एक जन्मांध भित्तारी का अधिकार चला है तहां ऐसा पाठ है—

सूत्र-मियागाम, नयरे, गिहे गिहे कोलुण बडियाए, विच्छि कपेमाणे, विहरई.

अस्यार्थः—मृगागाम नगर में घर २ ने विषे दीन वृत्ते करी आजीविका करतो यको विचरे ले अब देखो कि अंध पुरुष मृगागाम नगर ने विषे घर २ प्रते ( कोलुण बडियाए ) कहता दिन वृत्ति तो विचारो कि कोलुण बडिया नाम दीन वृत्ति का है कि नहीं तथा इन सूत्र की टीका में भी कहा है ( कोलुण बडियाएति कारण वृत्त्या विच्छि कपेमाणेति जीविका कुवा-  
णः ) तो देखो टीका में भी कहा कि करुणा की वृत्ति करके आजीविका करता भया ए देखो करुणा की वृत्ति यानी दीन दयामण शब्द करके आजीविका करणे वाला भित्तार अंध पुरुष कहा बने ही नसीध में कोलुण बडिया शब्द करुणा की वृत्ति यानी दयामणी वृत्ति करके दुःख बांधला छोड़ना करके आजीविका भित्तार करतो बजिन करी है तथा सूत्र उत्तराध्ययन के अध्ययन २२ गाथा १३ वी का १दा ४ में ( काण्ण दीरो हरिवेर इणो ) वहां भी कहा है कि जो कामादिच में आगुक होरे सो (कारुण दीरो वाता अरुण दीन दयामणी होरे तथा टीका में भी कहा. तथा च टीका ॥ कीटगमन करुणाये अहं. काख्यर काख्यरन्तेन दीन काम्यर दीन अन्वर्त दीन इत्यर्थः )

अस्यार्थः—कैसा होता हुआ उसको देख के दूसरे को करुणा आवे उसको अत्यंत दीन कहते हैं इति टीकार्थ ।

देखो इस सूत्र पाठ टीका में भी कारुण्य नाम दीनपने का कहा है तथा सूत्र प्रश्न व्याकरण का ? संवर द्वार की रे भावना में साधु को भिक्षा की विधि बताई है वहां भी ऐसा पाठ है ( अदीष्टे अकलुणे ) दीनपणा रहित दयामण्य पणे रहित, अत्र देखो यहाँ सूत्र में अकलुणे नाम दयामण्य पणा रहित भिक्षा करे तो साधु भगवंत की आज्ञा का आराधिक है और अकलुणे कहने दयामण्य पणे से भिक्षा लेवे तो प्रायश्चित्त आता है तैये ही विचारो कि तुम्हारे गुरुजी भ्रम विध्वंसन में ( कोलुण वडियाए ) इसका अर्थ अनुकंपा का लिख के जीव मरते हुए को बचाने में पाप लगना है वो कदापि नहीं मिलता, क्योंकि दयानान करुणानान तो साधु सदा ही होते हैं करुणा का दया का प्रायश्चित्त किसी सिद्धांत में नहीं फल कोलुण वडियाए नाम तो दयामण्ये की वृत्ति का है सो साधु को दीन दयामणी वृत्ति करणी भगवान ने बर्ना है ॥ परंतु ऐसा तो भी भगवान ने किसी सिद्धांत में नहीं फरमाया कि हे साधु तू करुणा दया मत करजे वलदा करुणा दया करणे का तो उपदेश सूत्र में ठाम २ परमेश्वर ने फरमाया है तो फिर तुम सिद्धांत विरुद्ध अर्थ क्यों करते हो कि अनुकंपा करके प्रस जीव को नहीं छोड़ना यह सूत्र से अमंभव भदा तो तुम्हारी ही है परंतु दयावंत उत्तम प्राणी की नहीं होता तथा तुम्हारे भ्रम विध्वंसन में मोह अनुकंपा सिद्ध करने को रंशा देवी की मात्रा दी है सो भी विपरीति है क्योंकि



मूत्र में तो ऐसा लेख है कि रयखा देवी ने जिनरिख को अनेक प्रकार के मोहरूप सिंगार रस के करुणा रस के शब्द मुनके मोहरूप करुणारूप रस उत्पन्न हुआ परन्तु दया अनु-कंपा जीव वचाएँ कि नहीं सो हमने ऊपर मूल पाठ सहित लिखा है और यह करुणा रस का वर्णन मूत्र अणयोग द्वार में है सो मुनिये-

पि, अत्रिष्य, ओषंबंधवह, वाहिविणी, वाय, संभमुष्णो  
सोई, अविलवि, अप, यहाय, रुमलिंगो, रसोकरुणो, ॥ १६॥  
अस्यार्थः—अत्र करुणा रस हेतु, लक्षण थी कहे छे पि अगारा  
प्रिय विप्रयोग बंध व्यथा व्याधि विनिपात सम्भ्रम थी उपनो  
करुणा रस हुई ए संबध तिहां प्रिय विप्रयोग बल्लभनु वियोग  
तथा बंधन व्यथा पीडन व्याधी रोग विनिपात कहता पुत्रादिक  
परण तथा संभ्रम ते पर चक्रादिक भय ते थी उपनो करुणा  
स होय ए संबध किस्था लक्षणा तेहना तिहां सोच युं ते  
नो विकार तथा विलाप ते वचन नो आक्रन्दन तथा  
ज्ञान स्वेद तथा रुम रुदिन प्रसिद्ध एतला लिंग कहतां  
ए छे जेहना ते तथा ॥ १६ ॥

अथ देखो जरा ज्ञान नेत्र करके देखो कि अपना प्रिय  
योग से आक्रंद करुणा या शरीर में रोग होवे जद हाय  
न करुणा पुत्रादिक के परखे में सोच करुणा रात्रादिक  
य से मलापादि करना इत्यादि कारुण करुणा रस रूप  
में का वर्णन है तो जिनरिख का भी रण देवी का  
रूप करुणा रस यानी मोह प्राप्त हुआ सो मूल ज्ञानाज्ञी  
ए के प्रनाप से जिनरिख का ( सनुपन, कनुणभावं )

यह कथन है परंतु जै व दया वचन में मोह रम भगवत ने किसी सिद्धांत में रम को कालुण्य ऐसा सूत्र सुप्रगडाग का १ मुनभंद में अ० २ उ० १ में कहा है कि मुनि क आगे आके प्राप्त पिता कलत्र आदिक करुणा दयामणा शब्द कहते हैं सो पाठ जई कालुण्यवा कायोवा अनक करुणा प्रताप वचन बोला देखा यहा वि शानुणा शब्द म मा का प्रताप कहा है परंतु दया नहीं तथा उमा सूत्र क अ-पयन ४ उ० १ की गाथा ७ वा में कहा है कि र्वा मायु का वचन करुणा रूप करुणा शब्द कई सू० । मण वरण, विष्णोवेदि, कनक, विष्णाय मुचगमित्तान इति ।

अर्थार्थ: मन का वचन को एम अनक प्रकार पपन रूप निममे पुरुष का मोडरूप करुणा रम उपन एम शब्द विनय सहित मायु की मयीव आके कहा है ॥ अब देखा यहा भी कलुण्य शब्द मोह का कहा है इत्य दि धार भी वदून सी जग सिद्धांत में करुणा रम को कालुण्य शब्द म कहा जा बुद्धि होगी तो समझ लेवेगा कि नमाथ का भी परमार्थ एमा ही भासे है कि दयामर्णा वृत्ति करु या एस्थ के माह नीमन चतुष्पदादिक का नहीं ग्यान परंतु करुणा करु र्जाय वचन से या गायत्रिक को लाय में निहानेन में प्रायश्चन नहीं कहा है ॥

नगी होवे या नरना होवे वह बोले तो दोष नहीं लेकर तुम को नतीप के अर्थ को आत्मा है तो फिर नतीप में तुलना लिया है कि अर्थात् का पदेवडा पानी काप नगी होवे या अति गाड़े बंधन करी नइकड़ा होवे या नरना होवे उपादि कारण में छोड़े तो दोष नहीं. यह अर्थ बहुत माना है कि जो भोपनी के बाप दादा का जन्म में हो जाने को तुमारी पढ़तो में लिया है तो फिर तुम लोग उन अर्थ को क्यों नहीं मानते हो.

पूर्व पक्ष-इन ती मंत्र में लिखा अर्थ मानते हैं.

उपर पक्ष-लिदांत में तो नगे शीव को बचाने का अर्थ अच्छे तरह में लिखा है समु तुमारी विगीत श्रद्धा का मतार है तो दया का रूपन नहीं रहता है. और जेकर नगे शीव को बचाने का अर्थ नहीं लिखा है तो फिर तुमारे मुह को जगती आदिक में न शीव नहीं छोड़ो अंदग आदिक का रहे है तो फिर वे तुमारी श्रद्धा में मंत्र में विगीत जगती अ-रेगा क्योंकि शीव बचाने में सब बचाना और मुह शीव को पानी नशिकादिक को जगती में शर के कड़े में गढ़के नवेर करते हैं तो फिर तुमारी श्रद्धा के मंत्र में वे नाहू केने उरें क्योंकि वन शीव को शीव छोड़े लिखी तुम तुमारी तुम्य मनहरे हो और अन्वित्वंनन में लिखा भी है और फिर तुमारे मुहो वन शीव नशिकादिक को बचाने है छोड़े है तो तुमारी श्रद्धा में ही तुमारे नाहू तुमारी तुम्य वने बचाने वह श्रद्धा पंग को कल्पना हो आर को नहू करने वने छोड़े छोड़े-बानो लिखने का यह बरंजन है के मंत्र में वन श्रद्धा न

भरोसा मत करो कि तुम सत्य सिद्धांत का लेख को समझ के दया में ही जिन धर्म की आस्ता रखते परन्तु ऐसा विपरीत सूत्र का अर्थ करके लोगों के हृदय की दया निकालने का उपाय मत रचो.

पूर्व पक्ष—नसीधर्मी की साक्षी गायों के बाड़े खोलने में नई हुई तो खर परन्तु सूत्र आचारांग के दूसरे स्कंध के तीसरे अध्ययन में पहिले उद्देश्य में कहा है कि साधू नाव में बैठा है. और नाव में छिद्र हो के पाणी आवे उसको साधू ने देखा. अन्य लोगों ने नहीं देखा तो साधू को लोगों के प्रति उसका बतलाना वर्जित किया है नाव में बैठे साधू श्रावक तथा गृहस्थी डूबे. जिस अवसर में भी श्री भगवान् ने नाव में आते हुए पानी को साधू के लिये बतलाना वर्जित किया है तो विचारने की बात है कि सर्वोत्कृष्ट मनुष्य शरीर को बचाने में भी धर्म नहीं कहा तो गायों आदि पशु जीवों को बाड़े में से छुड़ाने में तथा बाहिर निकालने में धर्म कैसे माना जावे इस विषय में हम ने आपको सूत्रों का पाठ दिखाया है. जैसे यदि आप धर्म मानते हो. उसका पाठ आपको दिखाना चाहिये साधू जो कार्य करता है. वह धर्म का कार्य है. उसमें पाप का अभाव है. और साधू के लिये जिस कार्य का निषेध है. वह पाप का कार्य है. यह पूर्व पक्षियों का लेख है.

इस का प्रत्युत्तर हा हा हा रे मित्रो तुम्हारी दया को फाटने की चेष्टा देग के बड़ा खेद उत्पन्न होता है कि हमारे जैनी नाम धारक मित्र सिद्धांतों का व्यर्थ नाम ले के दया धर्म को नष्ट करने की चेष्टा क्यों करते हैं क्योंकि जैन सिद्धांत में तो

एक छोटासा वे इन्द्रियादि सुदृढ़ जीव वचाने में भी महा लाभ कहा है. और तुम मूत्र का नाम लेके लिखते हो कि. सर्वोत्कृष्ट मनुष्य शरीर को वचाने में भी दया करने में धर्म नहीं इस से प्रकट हुवा कि ऐसी दया से उल्टी श्रद्धा इस आये मंडल में तुम्हारे तरेपंथियों के सिवाय किसी की नहीं. कि जो मनुष्यों को वचाने में पाप बतलावे हा हा हा क्या तुम्हारी मति थोड़ी-सी भी दया धर्म से अनुकूल नहीं रही. कि जिससे ऐसा अज्ञ-वगनंत्र लिखते हैं सो ध्यान लगा के सुना.

पूर्वपक्ष—हमने तो सिद्धांत का पाठ को साक्षी बतलाई है. श्रीभगवान के आज्ञानुसार लिखने में क्यों डरे—

उत्तरपक्ष—हे मित्रो अफसोस तो इसी बात का है कि सिद्धांत का नाम ले के विपरीत प्ररूपणा करते हो जिससे जगत में जिन वाणी की घृणा यानी निंदा कराते हो. यह महा दूषित कर्म का कार्य है. हमको तो तुम्हारे दूषित कर्म का अफसोस आता है. जिससे भी ज्यादा श्री जिन वचनों का आता है. कि हे अल्पज्ञ मनुष्यों परमेश्वर के वचनों को विपरीत प्ररूपणा करके घृणा मत करावो.

पूर्वपक्ष—बतलाइये जो हमने आचारांग मूत्र की साक्षी बतलाई वह क्या विपरीत है.

उत्तरपक्ष—सुनिये रे जग ध्यान दे के सुनिये कि तुम्हारा उत्तर अत्यन्तात्यन्त विपरीत है क्योंकि प्रश्न तो नावो को लाय से वचाने का था. और उत्तर नाव के छिद्र में पानी आवे वह साधु नहीं दिखलावे. यह उत्तर विन्दु है क्योंकि आचारांग में तो नाधु को नाव का वाणी इमालिये नहीं बताना

किं पाणी की हिंसा साधू को लागे. क्योंकि पानी आता हुआ देख के गृहस्थ उस पानी को उलेचनादि जल की हिंसा करे इसलिये नहीं बताना परन्तु सिद्धांत में ऐसा लेख नहीं कि मनुष्यों को बचाने में पाप लगे सो सिद्धांत आचारांग का पाठ लिखते हैं सो ध्यान ल्या के सुनो—

मृत्रपाठ—जेभिसु, शावाए, उतिगेणं, उदयं, आसवमाणं, हाए उवरु वरिणा वाचं, कज्जलावेमाणं, पेहाएणो, परं, उवसंकमित्तु, एवं वृया, आउसंतो, गाहावइ, एयं, तेणावाए, उदयं, उत्तिगणे, आसवति, उवरुवरिवाणवा, कज्जलावे, तिप्प तप्प गारंमणं वा, वायं, वाणो पुरओकट्टु, विहरेज्जा, इति ॥

अस्यार्थः—भिन्नु चारित्रि यो ना वाने विपे उत्तिग छिद्रे करि उदक पाणी आथव तो देखी तथा उपरि २ घणे पाणिये करीकज्जलावेमाणं के०'—नावा भराति देखी ने ते साधू परं गृहस्थ ने-उवसंकमित्तु के०' तेनी समीपी आवी एहवा न कहे अहो आयुष्मंत गृहस्थ एताहारीनावाने छिद्रे उदकपाणी आवे छे तेणे आवते उपरि २ घणे घणे आवते कज्जलावेइ. के०' भराई छे-तप्पगारं के०' एहवा भाव सहित मन अथवा वचन पुर ओकट्टु के०' आगली करी विचरे नहीं इति ॥ अध्ययन दूसरा उद्देश पहिला में ॥

अब देखा भाटे मृत्र में तो यह कथन है कि नाव पाणी कम्के बहन मर्ती होय ता उस नावरति नावडिया को साधू को नहीं कहना यह कथन है आर तुमने आचारांग का नाम ले के लिख दिया कि नाव में छिद्र हो के पानी आवे उसको मानु ने देखा अन्य लोगों न नहीं देखा तो साधू को उसका

बतलाना वाजित किया है, अब देखो देखो कि तुम लोग मूत्र से और अर्थ से विरुद्ध अर्थ करने वाले हो कि नहीं, क्योंकि मूत्र में तो ऐसा नहीं कहा कि नाद का पानी माधु निवाय अन्य नहीं देखे, ऐसा पाठ है ई नहीं, तथा साधु और नाद का मालिक निवाय अन्य लोक श्रावक या दूसरे नाद में बँडे हैं, ऐसा भी मूत्र अर्थ दीक्षा दीपिकादिक में कहाँ भी नहीं तो तुम सिद्धान्त के पत्रों से विरुद्ध अनभव बातें मन में उठा के आचारांग का नाम क्यों लिया है, वल इन्हीं से हम कहते हैं कि तुमने मूलसाठ तो मूत्र का लिया नहीं, और भावार्थ को भी विरगीत मनमाना बातें भेद भाव के लिए दीपाविल्लने आचारांग की साक्षी देनी तुम्हारी विरगीत है, परन्तु स्वयं अब भी मन्द के निश्चयासाद को छोड़ के विरगीतता निशानी यह उग्रम दाम है.

पूर्वपक्ष-नाद में तो बहुत से मनुष्यों का बँडना संभव है.

उत्तरपक्ष-हां नाद में बहुत से मनुष्यों का बँडना संभव है, परन्तु यह भी मन्वज है कि कोई एक नाद का मालिक अपनी स्वामी नाद जो भी कोई मँके पर ज्यो तीर में पैली तीर से जाता है, उन एक माधु को पैली तीर जाना है और नाद में से हो जाता है तो माधु और नादविद्यारी यह दोनों बँडे हो के ऐसा ही मन्वज होता है, उदाहर ऐसा भी मानिये कि जल में मनुष्य नाद में बँडे है और माधु भी बँडा है उन एक एक एक माधु में मन्वज तो तुमने यह ईमे निश्चय पदक पर माधु देखे तो इन्हीं बातें देखे यह भी सिद्ध है कि 'मन्वज नाद' और मनुष्यन में बँडना नहीं, क्योंकि मूत्र में

तो ऐसा लिखा है कि नाव घणा जल करके भरती होय यह मूल सिद्धांत में लिखा तो जरा अकल से तो विचारो कि बहुत घणा घणा जल से नाव भर जाय और साधू देखे दूसरे नहीं देखे तो क्या वह सर्व नाव में बैठने वाले अंधे थे जो साधू तो उस जल का प्रवाह को देखे और दूसरे नहीं देख सके क्या पानी में भी ऐसी कोई शक्ति है कि जो साधू के नजर आवे. और के नहीं आवे. बाहारे बाहा मत्स्य का भी तुमको ज्ञान नहीं तो फिर सिद्धांत से विपरीत लेख लिख के भव परंपरा क्यों बंधाने हो. परंतु हे मित्रो तुम क्या करो तुम्हारे गुरु भीषमजी ने ऐसाही सिद्धांत से विरुद्ध अनुकंपा की छठी ढाल की १८ मी गाथा में कथन किया है

ढाल-साधू बैठा नाव माहीं आई नावड़िये नाव चलाई.  
 नावा फूटी मांहे भवे पाणी साधू देखी लोगां नाही जाणी ॥  
 १८ ॥ अब देखो कि तुम्हारा गुरुजी ने ही ऐसी विरुद्ध जोड़ करी है परन्तु इतना तो विचारो कि सिद्धांत में तो किसी ठिकाने नहीं कहा है. और तुम मत्स्य के लिये कैसे कहते हो तथा इतना ही विचार तुमको नहीं आता कि साधू देखे. और नहीं देखे तो औरों के नेत्र कहां गये. क्योंकि जल का किंचित आना भी मूत्र में नहीं कहा है कि जो साधू के ही निगाह में आवे. मूत्र में तो उपरा उपनिनाव भगाये तो बैठने वाला क्यों फर नहीं देखे और नाव जल से डूबे ऐसा तुम्हारे गुरुजी ने अनुकंपा की छठी ढाल की १९ मी गाथा में माना है.

गाथा-आप डूबे अनेग प्राणी अणुकंपा किणरी नहीं आ-  
 णी. वनावे तो विरतां में भंगो जिणगे साखी आचारंगो १९



देखो यह तुम्हारे गुरुजी का लेख है कि नाव जल से डूबे. आहा हा हा आश्चर्य है देखो गुरुजी और चेलाजी कैसे विपरीत लेख लिखते हैं कि नाव डूबे. इतना जल नाव में आया तो भी साधू तो जल को देखे. और गृहस्थ बैठने वाले जल को नहीं देखें. ब्रह्म २ अफसोस की बात है कि एक थोड़ासा समझदार भी समझ के कहसके कि अत्यन्त जल से नाव भराय तो बैठने वाले कैसे नहीं देखे अवश्य देखेही. परन्तु जिस बात को किञ्चित् समझदार समझसके उसको भी तेरे पंथी साधू श्रावक नहीं समझे. और अनुचित लेख लिखते नहीं डरे तो निश्चय हुआ कि मोहनी कर्म का स्वभाव ऐसा ही है.

पूर्व पक्ष—कोई काल में नाव का मालिक कोई कार्य निमित्त खाली नाव को लेकर जली तीर से पैली तीर जावे उस वक्त में साधू को भी पैली तीर जाना हुआ तब नाव में बैठ गए. नाव छूटी हुई उसमें जल भर आया उस वक्त नावड़िया तो नाव के खेवणे के कार्य से जल नहीं देखे परन्तु साधू देखे तो उस नावड़िये को बचाने को जल नाव में आवे है. नाव डूब जायगी ऐसा क्यों न कहे.

उत्तरपक्ष—हे मित्र नावड़िये को बचाने में पाप नहीं है. परन्तु साधू को जल को हिंसा करणो नहो. करते को भला जानना नहीं ऐसा नियम पानो त्याग साधू को है विससे जो नावड़िये को पानो नाव में आना बतावे तो वह नाववान् पुरुष जल को उल्लेखनादि करके हिंसा करे. और जो साधू जल को बतावे तो मन बचन में जल को हिंसा लागे उमवान् साधू का कल्प नहीं मो नहीं बतावे.

पूर्वपक्ष माथू को पानी की हिमा कहाँ बनी है.

उत्तर पक्ष मंत्र दशर्वाकालिक का जटा अध्ययन की ३०  
वीं गाथा में पाठ है सो निम्नमे ४

मंत्र गाथा भाउ. कार्ये. नागति मणमा. वयमा. काय-  
मा. निविहेण. कृण. जपिण. मंजरा. सु. ममाशिया. ॥  
इति ॥ ३० ॥

अब देखो कि सिद्धांत में क्या कि उपकार की हिमा  
तीन कृष्ण तीन जोग करके कृष्णी नहीं निम्नवाम्ने माथू नाउ  
का पानी नहीं बनावे. जल की हिमा रोपे उम में नहीं बनावे  
परन्तु श्री भगवान ने ऐसा नहीं कहा कि नारायण पुरुष उच  
जावे इस वाम्ने जल नहीं बनावे यह कृष्णा तो तुम्हारा है.  
परन्तु परमेश्वर का नहीं. नारायण को तो वचान का म्प है  
परन्तु जल हिमा का त्याग का भग शरीर निम्न में जल बनाने  
का साधू का कल्प नहीं.

पूर्वपक्ष—थोड़ी हिमा जल की होवे परन्तु पचन्ती जीव  
मनुष्य का शरीर बन जावे तो फिर थोड़ा पाप और यम बढ़त  
होवे तो यह कार्य साधू क्यों नहीं करे.

उत्तरपक्ष—हे भाई तुम्हारे को पूरा जाणपणा नहीं होत में  
यक्ष उपजा है. परन्तु यह तुम नहीं समझने हो कि पम ना कउ  
कार्य है कि निम्नमे थोड़ासा पाप और यम बढ़त है ना भा  
साधू का कल्प नहीं सो सुनिये हम थोड़े में बनाने के साउ  
पृथग् टीक्षा लेने की अज्ञ कर कि मैं टीक्षा लेऊं परन्तु तुम  
में कये पाणी में भजि हुए हाय में गरी आदिक परकार  
बनिये ~~साधू~~ पानी में लेता ना मैं टीक्षा ले लेऊं तो कहां भाउ

दीक्षा देने में तो बहान्याम है. और कचे पाणी में भीजे हाथ में लेने में साधु को दोष है. तो दीक्षा का उत्पत्त के बाले कचा पाणी का हाथ में क्यों नहीं करें. परा दीक्षा देने में पाप है कि कचा पाणी में भी जे हाथ में बंधने में पाप है ।

पूर्वपक्ष-पाप तो कचा पाणी में भी जे हाथ में लेने का है और दीक्षा देने में तो एकांत धर्म है.

उत्तरपक्ष-तो यह थोड़ासा दोष लगा के दीक्षा देने का बहान उपकार साधु क्यों नहीं करें.

पूर्वपक्ष-साधु जो कचे पाणी में भीजे हुए हाथ में बंधने के पानी अष्ठादिक लेने के त्याग है तो त्याग तोड़ने का कल्प नहीं. कल्प तोड़ने तो मासभित्त है इनमें कचा पाणी में भीजे हुए हाथ से साधु बंध के दीक्षा देने का काम नहीं करने कल्प नहीं है इन में.

उत्तरपक्ष-तो हे भिद इन यह सबक लेयो कि नार का पानी बचाने का साधु का कल्प नहीं. परन्तु नारदियों को बचाने का तो धर्म ही है परन्तु पूर्व शक्तिज्ञा जल विना यह त्याग होने में जल नहीं बचाने के लेने कल्प में भीजे हुए हाथ में लेने में पाप है परन्तु दीक्षा देने में नहीं है लेने नार का जल बचाने में पाप परन्तु नारदियों को बचा बचाने में नहीं. लेने कल्प में भीजे हुए हाथ में बहात में के दीक्षा देने का कल्प नहीं. क्योंकि धर्मार्थे मासभित्त विचार्य होने में साधु का तो पूर्वोक्त अंगुष्ठ है इनमें कल्प नहीं लेने ही नारदियों को नार का पानी बचाने बचाने का साधु का कल्प नहीं. क्योंकि मासभित्त जल विचार्य होने में क्या कोई पूर्व ने कल्प नहीं अंगुष्ठ बचाने का

नियम लिया है और कोई दुष्ट बादशाह एक मनुष्य को बंधु मार रहा है अथवा वह दयावान् मांस का त्यागी बादशाह से कहे कि तुम इस को मत मारो तब बादशाह कहे कि जेकर तुम एक ग्रास मांस खालेंगे तो हम इस मनुष्य को नहीं मारें. तो कहो भाई वह मांस का त्यागी एक ग्रास मांस खा के एक मनुष्य को बचावे अपितु नहीं बचावे क्योंकि मांस नहीं खाने का नियम होने से परन्तु मनुष्य को बचाने में तो बहुत उपकार समझता है. तैसे ही मुनि जल बना के नावड़िये को नहीं बचा सक्ते हैं जल हिंसा का त्याग होने से परन्तु नावड़िये को बचाने का तो धर्म ही है.

पूर्वपक्ष—हम तो मनुष्य को बचाने में धर्म नहीं समझते किन्तु पाप मानते हैं तो फिर यह दृष्टांत की युक्ति हमारे लिये देना ठीक नहीं.

उत्तरपक्ष—हे भाई ऐसा दया से तुम्हारा उलटा कथन क्यों हुआ कि मनुष्य को बचाने में भी धर्म नहीं किन्तु पाप होता है.

पूर्वपक्ष—हमारे गुरु भीषमजी ने अनुकंपा की छठी ढाल में की चौथी गाथा में ऐसा कहा है.

गाथा—(गृहस्थी के लागी लायो घरवार निकलियो न जायो. बलता जीव विल विल बोले साधू जाय किवाड़ न खोले).

अर्थ:—कोई गृहस्थ के घर में लाय लागी और बाहिर से किवाड़ जड़े हुए हैं उस वक्त गृहस्थी के वेदा वेदी आदि रोवे रुदन करे तो भी साधू किवाड़ नहीं खोले. तब यह है कि साधू नहीं खोले. इससे श्रावक को भी नहीं खोलना खोले तो श्रावक को भी पाप होवे. जिससे पापी कहिये. यह हमारे गुरु भीषमजी का कहना है इससे हम भी कहते हैं.



पूर्वपक्ष—हमारी आचारांग की सारी नाव के पानी बताने की जल्ता हुआ गायों के बाड़े को खोलने के लिये ठीक नहीं तो स्वर परन्तु हमने मूत्र उत्तमाध्ययन के ९ में अध्ययन की सारी लिखी है कि निमिगाय ऋषि को चलायमान करने के लिये ब्राह्मण का रूप धारण कर इन्द्र ने आकर कहा कि तेरी मिथिलानगरी और अन्नःपुर जनाना अग्नि से भस्म होता है और तेरी शक्ति में अमृत है सो एक बर तेरे देखने से नगरी और अन्नःपुर बच सकें हैं निमपर निमिगाय ऋषि ने उत्तर दिया कि मेरा तो कुछ भी नहीं जलता. मेरे तो ज्ञानदर्शन चास्त्रि है सो मेरे पाम है. ऐसे कहकर चुप होकर नगरी के सामने नहीं देगा. किंचित् भी राग भाव नहीं लाये यह सारी हमने दी है. वो तो ठीक है कि नहीं है—

उत्तरपक्ष है मित्र यह सारी तो बिलकुल ठीक नहीं क्यों कि मूत्रों का नाम ले के मूत्रों में भगवान् के बचनों से विपरीत प्ररूपणा करने हैं. उममें

पूर्वपक्ष क्या हमने सारी बतलाई यह उत्तराध्ययन में नहीं है.

उत्तरपक्ष है भाई आंगों में अमृत है सो एक बर तेरे देखने से नगरी और अन्नःपुर बच सकें हैं. यह तुम्हारा कहना मूल मूत्र में थपे में शिला दवा में कहा भी नहीं है फल तेरेपरी माधु आरक्षों की रूपान कलना के मित्राय कहीं भी नहीं है. हा हाहा तुम लोगों को क्या मूत्रा है. कि मिद्रांश में नहीं इस वेग की नहीं है तो भी गुच्छों की बात पर इड करके लिखने पारने नहीं जानते हैं. इनका भी मशाल तुम

लोगों को नहीं है कि गुरुजी को सच्चा ठहराने को सिद्धांत की झूठी साक्षी लिखेंगे तो पीछे कोई पृष्ठने वाला मिलेगा. उस वक्त क्या उत्तर देंगे इतना भी तुमको मालूम नहीं पड़े तो निश्चय होता है कि फक्त पत्र के मारे डेक में कल्पित गोले चलाते नहीं डरते हो.

पूर्वपक्ष—जेकर आंख में अमृत का झरना और एक वक्त देखने से अन्तःपुर का बचना सिद्धांत में नहीं होता तो हमारे गुरुजी ने हमको यह बात कैसे सिखलाई क्या वह सिद्धांत नहीं वांचते हैं.

उत्तरपक्ष—हे भाई गुरुजी तो मत की ममता में बंध रहे हैं और तुम सरीसे अल्पज्ञ को अपने मत की ममता यानी हठ के विषे बांधने के वास्ते मूत्र की मिथ्या बात न कहे तो तुम सरीसे भाई उनके मत में कैसे बंधो वस इसी कारण से कल्पित मूत्र की बातों की साक्षी तुमको सिखलाते हैं और तुम उनको सत्य मान के वादी होजाते हो.

पूर्वपक्ष—अच्छा गुरुजी ने कल्पित साक्षी बतलाई तो मूत्र तो सब एक है जो मूत्र में सत्य होवे वो आप बतलाइये—

उत्तरपक्ष—हां मूत्र एक है हम मूलपाठ लिख के बतलाते हैं ध्यान दे के पक्षपात मत्सर भाव छोड़ के सुनिये.

मूत्र—एत, अग्नी, य, वाऊ य, एयं, इज्झइ, मंदिंरं, भयवं, अंतैउरं, तेलं, कीसखं, नाव, पिखह, ॥ १२ ॥

अस्यायैः—( एत ) के०' ए प्रत्यक्ष ( अगोय. वाऊय ) के०'  
 अग्नि अने वायवे करि ( एयं. इज्झइ. मंदिंरं ) के०' ए प्रत्यक्ष  
 तुम्ह संबंधियो बले छे मंदर घर ( भयवं अंतैउरंतेलं ) के०' हे

भगवंत अंत उरताइरूँ ( फीसणं, नाव पित्वाह ) के०' किंसा  
 भणी साहपो न थी जो तो तुम्हने तो जिम ज्ञानादिक राखवा  
 तिम अन्तःपुर पिणरा खउं इत्यर्थः ॥

अब देखो मूत्र में तो इन्द्र ने परीचा निमित्त कहा कि यह  
 तुम्हारे घर और अंतःपुर बलते हैं सो तुम इनके मालिक हो सो  
 जैसे ज्ञानादिक तुम्हारे हैं तिनकी रक्षा करते हो तो ऐसेही अंतः  
 पुरादिक भी आप के हैं सो इनकी रक्षा करो यदि इनको अपना  
 समझ के इनकी रक्षा करो, क्योंकि अपनी वस्तु है उसको रा-  
 खणी चाहिये. ज्ञानादिक के दृष्टांत ते इस प्रश्न से अंतःपुर और  
 महल मकान पर मोह है कि नहीं. ऐसी परीचा करने को कहा  
 कि इनकी तुम रक्षा करो. परंतु ऐसा तो नहीं कहा कि तुम्हारी  
 आंखों में अमृत भरे है तुम्हारे एकवार देखने से यह सब बचते  
 है यह तुमने मूत्र से अतिरिक्त प्ररूपणा क्यों करी मूत्र में तो  
 करुणा का कथन नहीं है मूत्र में तो अपणायत पणे का कथन है  
 यानी ( भयवं, अंतोउरं, तेणं, ) हे भगवंत तुम्हारे अंतोउर है,  
 इससे इनकी रक्षा करो यह कथन है जितर निमीराय ऋषि ने  
 उत्तर दिया कि मेरा तो कुछ भी नहीं बले मेरे तो ज्ञानादिक  
 गुण है शेष अंतःपुरादिक मेरे नहीं. यह उत्तर निमीराय ऋषि ने  
 दिया. परंतु जेकर तुम्हारे मगीसी श्रद्धा निमीराय ऋषीश्वर की  
 होनी कि जीव बचाने में पाव है तो फिर निमीराय ऋषि इन्द्र को  
 ऐसे कहते कि मेरे को जीव बचाने नहीं कल्पे. में तो किसी को  
 जिवाना नहीं चाहता हूं. सो ऐसा तो कहा नहीं वहां तो प्रश्न ही  
 अंतःपुरादिक का अपणायत रूप मोह की पहिचान का था  
 तिमका उत्तर में निमीराय ऋषीश्वर ने अपना अंतःपुरादिक से



निर्मोहत्वपदोरूप अपणायन का अभाव दिग्बलाया भया यह तो प्रत्यक्ष है कि लांघ लगी होवे तो उनमें साधू क्या करें क्योंकि साधू का तो अग्नि पुनाने का जल सींचने का कल्प नहीं. यह कैसे क्या संक यह तो नाब का पानी नहीं दिग्बलाने समान परा भी समझना चाहिये. जैसे जल की हिंसा खातिर जल नहीं बतावे. तैसे अग्नि पुनाने के जीव नहीं क्या सके.

पूर्वपक्ष-मूत्र में सामने जाने का तो कहा है इसमें अनुमान होता है कि उनकी आत्मा में अमृत है जब सामने देखने का कहा है. और उससे रक्षा भी होती है तो फिर हमारी सारी इंद्रियों कैसे हुई.

उपरपक्ष-हे भाई सामने जाना नाम अंतःपुर की रक्षा करने का उपाय कौन ऐसा अर्थ दीक्षा में खुलासा है परंतु सामने जाना अमृत आत्मा में है उसमें कल्पे रह जावे ऐसा अच्छता अनुमान की तुल्य क्योंकि कल्पना करते हो तथा अरपूर्वी में भी चिखने है कि जैसे आत्मा ही है आत्मादिक की रक्षा करनी है. अंतःपुर की भी करनी ॥

तथाच अरपूर्वी-यथात्मनः स्वैरुद्दरीयं तथा आत्मादि स्वैरे भवति अंतःपुर जित्वादि सम्भव ॥ १२ ॥

अर्थ-अपराधला उनकी रक्षा करना जैसा आत्मादिक को करता है वैसे अंतःपुर की करना है अर्थः-

अब हमें अरपूर्वी में भी ऐसा जितना है कि जैसे आत्मा ही है आत्मादिक की रक्षा करनी वैसे अंतःपुर की तुल्य है अरपूर्वी की रक्षा करनी ऐसा कहा परंतु अमृत हमें तो माला हमें वह कल्पना तो तुल्य करने हो क्या ऐसा वे जो कहा कि जैसे आत्मा-

दिक का देखना वैसे अंतःपुर को भी देखना चाहिये. ज्ञान का क्या देखना अर्थात् उमरु की रक्षा का पठन पाठन रूप उपाय करना वैसेही अंतःपुर को क्या देखना कि उनको जलादि करके अग्नि बुझानादिक उपायों से राखना तथा देखना नाम उसका यत्न करने का उद्यम करना ऐसा मूत्र उधराध्ययन का १९ मा अध्ययन की गाथा ३८ भी में कहा कि ( अहीवेगतं, दिद्वीष्ट, चरिष, पुत्तदुष्टरे ) अस्वार्थः सर्पनी परे एकांत दृष्टि इ एकाग्र चालनु छै जी हां एहउं चारिष्र है पुत्र दुष्टर पालीवो दोहीलो. इत्यर्थः ॥

ए देखो मृगापुत्र को माना ने कहा कि हे पुत्र सर्प की नाई एकाग्र एक दृष्टि से संयम का पालना है तो यहां भी वही दृष्टि है कि संसार के सर्व भाव छोड़ के मोक्ष का ही साधन करना संयम में है तथा टीका में भी ऐसा ही लिखा है.

टीका-तथा साधू मार्गे साधूश्चरेत् मोक्षमार्गे दृष्टि विधाय चरेत् ।

अर्थ-साधू मार्ग में साधू विचरे मोक्ष मार्ग में दृष्टि देकर विचरे इति.

अब जरा आंख खोल के देखो कि जैसे सर्प एक दृष्टि से चले वैसे ही साधू मोक्षमार्ग में दृष्टि देकर चले यह टीकाकार प्रकट लिखते हैं तो कहो मोक्षमार्ग में दृष्टि क्या आंखों का देखना है कि ज्ञान दृष्टि से मुक्तिमार्ग का ही उद्यम करना परन्तु संसार का नहीं बस समझ लेंवो कि जैसे दृष्टि साधू की क्या है कि एकांत मोक्ष का ही उद्यम करना अन्य नहीं वैसे ही नमीरायजी को देखना नाम अंतःपुरादिक की रक्षा निमित्त अग्नि बुझानादिक उद्यम करने का कथा परन्तु आंख से देखने

का नहीं तथा नृप आचारांग स्कंध पहिला अध्ययन ५ में  
 कहा कि ( रागप्रभुदे ) एक मोक्ष के विषे दत्त दृष्टि देखो यहां  
 भी साधू को कहा कि एक मोक्ष में ही जिन्होंने दृष्टि यानी नजर  
 दी है तो कहा क्या मोक्ष के सामी आंख फाड़ के देख रहे हैं कि  
 मोक्ष का उपाय ज्ञानादिक का साधन कर रहे हैं तो आंख का देख  
 ना तो किसी तरह तिद्ध नहीं अपितु ज्ञानादिक का आचार चा-  
 रित्र मोक्ष के साधन करना बोही मोक्ष की दृष्टि यानी देखना है  
 तथाच थीका में भी कहा है.

टीका—( रागप्रभुदे ) एको मोक्षो अशेष मलकलंक रहित  
 त्वात् संयमो वा राग द्वेष रहित त्वातन्न प्रगतं मुखं यत्पस तथा  
 मोक्षे तदुपाये वा दत्तैरुदृष्टिः ।

अर्थ—एक मोक्ष संपूर्ण पाप और कलंक इनसे रहित होने  
 से अथवा संयम राग द्वेष इनसे रहित होने से तिससे दूर नहीं  
 हुवा है मुख नितकता तैस्तेही मोक्ष में तथा मोक्ष का उपाय में  
 दी है एक दृष्टि नितने इत्यर्थः ॥

अब देखो जरा ज्ञान नेत्र खोल के यहां भी कहा है कि  
 मोक्ष के सामने है मुख नित साधू का तो विचारो कि मोक्ष  
 के सामे मुख कहा तो क्या जैसे दूज के चन्द्र देखनेवन् मुख  
 मोक्ष के सामे करे कि संयम पालने का यत्न करे तिससे यहां  
 थीका में भी कहा कि मोक्ष का उपाय में दीनी है नजर जिन्हों  
 ने वैसेही समझ लेंवो कि इन्द्र का कहना निमिराय ऋषीश्वर  
 से यह है कि आप इन अंतःपुर के मालिक हो इतसे इनको  
 देखो यानी रक्षा का उपाय करो तथा प्रत्यक्ष में भी देखो कि  
 कोई पुत्रादिक अपने घर की संभाल नहीं करे उन वक्त उन

को स्वजन परजन कहते हैं कि देखो फलाने पुरुष की अपने पर सामे नजर नहीं है, तो क्या इतनी भी तुम्हारे में समझ नहीं कि यह तो प्रत्यक्ष दीखता है कि घर पर नजर नहीं उस का मतलब यह है कि घर का काम को नहीं करता है, वस अब अच्छी तरह से विचार लेंगे कि मूत्र से अर्थ से टीका से और दीपिका से और प्रत्यक्ष लोकोक्ति से तुम्हारा कहना देखना नाम भाग्यों में अमृत झरता है, और एकबार देखने से रक्षा होती है यह बिलकुल कपोल कल्पना सिद्धांत से विरुद्ध है और सत्य नहीं.

पूर्वपक्ष—आखों में अमृत झरना कहाँ भी लेख नहीं है तो स्वर द्रुम गुरुजी में समझेंगे परंतु निमिरायजी ने अंतःपुर आदि की रक्षा क्यों नहीं किया.

उत्तरपक्ष—हे मित्र यहाँ तो निमिरायजी की इन्द्र महाराज ने मोहरून अपनायत की परीक्षा करी कि इनने संयम तो लिया, परन्तु अंतःपुर से अपना अपनायत यानी माल की पणे रूप मोह अलग हुआ या नहीं तिसकी परीक्षा वास्ते इन्द्र ने यह वक्ष किया कि तुम इस अंतःपुर के मालिक हो, इसलिये अग्नि से बचावो तिमपर निमिराय श्रेणी ने कहा कि मेरा अंतःपुरादिक नहीं है मेरा तो ज्ञानादिक गुण है, इससे इन्द्र को सिद्ध हो गया कि इस मुनि का अंतःपुर में रागभाव अपनायत पम्मा नहीं रहा, परन्तु जीव मरने कृये को बचाने का तो यहाँ वक्ष नहीं किन्तु अपनायत का है और यह भी तुम्हारी कम ममत्र का मयाज है कि गावों को बल्ले बाँद में दिखाए माल के कोड़े दयाराज निहाने उम निकालने वाले

को पाप हुआ कहते हो तो मूत्र का लेख दित्तलावो उस प्रश्न के उत्तर में यह लिखना कि निमिराय मुनिजी ने अग्नि बुझा के अंतःपुर की रक्षा नहीं करी तिससे गायों वचाने में हम पाप कहते हैं तो क्या तुम को इतना ही ज्ञान नहीं जो कोई दयावान् बाड़ा खोल के भरती हुई गायों को बाहिर निकाले तिसपर मुनिराज को अग्नि बुझाने का उत्तर देना तो यह अत्यन्त अनुचित है क्योंकि मुनि अग्नि को कैसे बुझावे.

पूवरक्ष-निमिरायजी ने संयम इन्द्र ने प्रश्न किये तिसके पहिले लिया कि पीछे.

उत्तरपक्ष-तुम्हारे गुरु भीषमजी ने तो पहिले ही माना है. तो लिखते हैं अनुकंपा की डाल दूजी गाथा ११मी में (ननीराय ऋषि चारित्त लिया वे तो बाग में उतरयो आयेर इन्द्र आयो तिपने परखा वे तो क्रिण विध बोल्यो वायेर ११ जीवा मोह अपुकंपा न कीजिये थारी अगन करी निथिलोवल एकवा स्युं सानो जोयेर अंतःपुर बलवां मेलती आतो वाव सिरे नहीं तोयेरजीवा १२ मुत्त वपरायो सारालोक्त में विलत्ता देत्त पुत्र खरे तो तुं दया पालन ने उडीयो तो तुं कर यारायबरे जीवा १३

अब देखो तुम्हारे मत के निकालने वाले तुम्हारे गुरु भीषमजी ने यह गाथा रची तिसमें ननीराय ऋषीश्वर को दीक्षा लियां बाद इन्द्र ने प्रश्न पूछे माने हैं ( और जो तू दया पालन ने ऊडियो ) इत्यादिक कितनाक विषय नरपन के लिये हुए सिद्धान्त से अतिरिक्त यानी मन के मते ज्यादा कहा परन्तु आत्मा में अभूत है तिससे एकवार देतने से अंतःपुरादिक

वचन सके ऐसा मिथ्या कथन तो उन्होंने भी नहीं किया तथा भ्रम विध्वंसन के पत्र ५२ मा पौ जीतमलजी ने लिखा कि जैसे ज्ञानादिक राखणा जैसे अंतःपुरात्रिक भी राखना चाहिये तो अब विचारो कि हमारा गायों को मरती हुई को दयावान् वचावे तिसमें तुम पाप कहते हो सो मूत्र का लेख दिखलावो ऐसा प्रश्न हमारा था तिसका उत्तर में तुमने लिखा कि नमिराय जी साधू ने शहर बलते हुए को अग्नि युद्धा के नहीं राखा. तो यह तुम्हारा उत्तर बिलकुल बिना विचार का सिद्ध हुआ क्योंकि मुनि अग्नि को कैसे युद्धावे मुनि को अग्नि युद्धाने का त्याग है इससे और तुम्हारा आखों में अमृत भरने का लिखना और एकवार देखने से सर्व की रक्षा होती है ऐसा लिखने से तो तुम्हारे गुरु भीपमजी और जीतमलजी से भी तुम्हारी श्रद्धा मूत्र से विपरीत हुई क्योंकि भीपमजी जीतमलजी ने तो ऐसा नहीं लिखा कि नमिराय की आखों में अनृत था. और एकवार देखने से सर्व की रक्षा होती है तो तुमने यह बात कैसे लिखदी

पूर्वपक्ष-हम को तो हमारे पूज्य डालचन्दजी ने धारणा कराई है.

उत्तरपक्ष- तो हे मित्रो निश्चय हुआ कि तुम्हारे गुरु की परंपरा सिद्धांत से विपरीत प्ररूपणा बढ़ती जाती है. क्योंकि जो बात भीपमजी जीतमलजी ने विपरीत नहीं लिखी वह उत्तराध्ययनजी का नवम अध्यायन का नाम लेकर तुम्हारे गुरु डालचन्दजी ने तुमको सिखलाई तो निश्चय हुआ कि भीपमजी जीतमलजी की श्रद्धा से भी डालचंदजी की श्रद्धा अति विपरीत हुई. कि जिले परमेश्वर के वचनों से अतिरिक्त प्ररूपणा

करने को कमर बांधी तो हे भोले भाई ऐसे सिद्धांत से विपरीत प्रवृत्तियां करके अपने मत को सच्चा करने को चाहते हो परन्तु विद्वानों के सामने तुम्हारा मत सत्य कभी नहीं ठहरता है. किन्तु सत्य होगा तो ही ठहरेगा. तो तुम्हारी नसीब की आचारांग की उत्तराध्ययन की तीनों की साक्षी गांधी को बचाने के निषेध में लिखी वह सर्व मूत्र से विपरीत और तुम को ही असत्यवादी ठहरानेवाली हुई.

पूर्वपत्र—हमारी साक्षी सत्य नहीं हुई तो तब हमने यह भी लिखा है कि जो आप जीव को बचाने में धर्म मानते हो तो मूत्र का पाठ दिखाइये.

उत्तरपत्र—हां पाठ सिद्धांत में बहुत टिकाने में है सो हम थोड़े से लिख के बताते हैं मूत्र उत्तराध्ययन का अध्ययन २२ वें में कथन है कि श्री नेमीनाथजी की इच्छानुसार सारथी ने जीवों को छोड़ दिये. तब नेमीनाथजी ने सारथी को जीवों को बचाने का इनाम दिया. तो प्रकट मूत्र के प्रमाण से जीव बचाना अभयदान में है. और अभयदान देने से जीव संसार को पड़त करके मोक्ष गति का फल को प्राप्त होता है निसी हेतु से श्रीनेमीनाथजी ने जीव बचाने का इनाम दिया है.

पूर्वपत्र—यहां तो हमारे गुरु जीवमल्लजी का कहना है कि नेमीनाथजी तोरण से पीछे फिरे सो तो अपना पाप शूलने को पीछे फिरे. परन्तु पशु जीव को बचाने वाले नहीं फिरे ऐसा हमारे गुरुजी कुछ भ्रम विध्वंसन का पत्र १७ वां पर लेख है. सो बड़ यह है तथाच. ( केवल एक कड़े असंजती से जीवों को बाँछयां धर्म नहीं. तो नेमीनाथजी जीवों के दिन बाँछयां इन कथों

त्यां जीवारे मुक्ति रो हेत तो थयो नहीं ते माटे जीवां रो जीवणो वांछयो ए जीवां रो हित छे इम कहे. वली ( सणु को से जीव हँउ ) ए पाठ रो उंथो अर्थ करी जीवां रो हे तथा पे छे. साणु कां से कहेतां अनुकंपा सहित ) जी पेहिउ, केतां जीवां रो हेत वांछयो ते जीवां रो जीवणो वांछयो. इम कहे ते शूरा चोळणहार छे एतो विपरीत अर्थ करे छे त्यां जीवां रे जीवण रे अर्थे तो नेमीनाथजी पाद्धा फिरया नहीं. एतो जीवांरी अनुकंपा कही तेनो न्याय इम छे जे म्हारा न्यावरे वास्ते यां जीवां ने हणं तो मोने यह कार्य करवो नहीं इम विचारी पाद्धा फिरया एतो अनुकंपा निरवद्य छे अने जीवरो हेत वांछयो मूत्र नो नाम लेई कहे ते मिद्धांतरा अज्ञाण छे. अने केतला एक ट्वा में कर्मा सकल जीवांनां हितकारी तेहनो न्याय इम प्रथम तो अब चूरी पाई टीका में तथा टीपिका में यह अर्थ नहीं ते माटे एटवो ते टी का नो नहीं. इत्यादि तथा पत्र ४८ वां पर लिखा कि- ( एकारज मोने परलोक में कल्याणकारी भलो नहीं इम विचारी पाद्धा फिरया पिण जीवाने छोड़ाय चाल्या नहीं ) इति.

यह हमारा गुरु जीतमलजी का कइना है तिससे हम श्रद्धे हैं कि श्री उत्तराध्ययनजी का वाईमवां अध्ययन की दीपिका पाई टीका अरचूरी में श्री नेमीनाथजी का जीवों पर हित करना या पशुओं को छोड़ाने का कथन नहीं होगा जेकर होवे तो हम को आप मूल मूत्र टीपिका या पाई टीका या अरचूरी कालेर दिग्बन्धो पशु स्वार्थ तो हमारे गुरुजी ने जीवों के हित विषय में टीपिकानुसार टीक नहीं माना नाके उसको छोड़ के प्रमाण बनाइये.



उत्तरपक्ष—है भाई तुम्हारे गुरु जीतमलजी ने तो ऐसा कहा है कि जैसे कोई हाथ से मूर्य को ढाक के कहे कि मूर्य आकाश में है ई नहीं तो ऐसी चेष्टा से मूर्य नेत्रवालों को नजर आता बंध नहीं होता है. तैसे ही श्री नेमीनाथजी महाराज का जीवों पर हित करना मूत्र का पाठ दीपिका में है और नेमीनाथजी की इच्छा माफिक सारथी ने पशु जीवों को छोड़ दिया तिसका इनाम श्री नेमीनाथजी ने सारथी को दिया. तिसका अधिकार मूत्र का मूल पाठ दीपिका अवचूरी और पाई टीका में खुलासावार है तां पि तुम्हारे पूज्य जीतमलजी अपनी स्वकपोल कल्पित चेष्टा से मूत्र का कथन को छिपाते हैं कि उत्तराध्ययन का वाईसवां अध्ययन की दीपिका में ( जीयेहेट ) का अर्थ जीवों का हित बंदने का नहीं है सो कहते हैं और लिखते हैं कि श्री नेमीनाथजी ने जीव छोड़ाया चाल्या नहीं तो ऐसा जीतमलजी की स्वकपोल कल्पना से मूत्र का कथन ज्ञान नेत्र वालों से छिपा नहीं रहता है सो अब हम मूल मूत्र का पाठ और दीपिका अवचूरी पाई टीका काही ज प्रमाण प्रकट बतलाते हैं कि श्री नेमीनाथजी महाराज की इच्छानुसार सारथी ने पशु आदिक जीवों को छोड़ दिये. तब श्री नेमीनाथजी ने सारथी को इनाम दिया वह मूत्र का पाठ लिखते हैं सो हे भव्यो एकाग्र चित्त से विचार के सत्यपक्ष का ग्रहण करना.

मूत्रपाठ—अ, हसो, तत्य, निज्जंतो, दिस्त, पाणे, भवदुवे, वोडोहिं, पिजरोहि, च, सनिरुडे, सदुत्तिए, ॥ १४ ॥ जीवियंतं, तुसपंचे, मंसटा, भत्तियव्वए, पासित्ता, से, महापणे, सारोहिं इणमव्वइ ॥ १५ ॥ कस्तद्धा, इमेणाणा, एएसव्वे, सुहेसिणे, वा-

डेहिं, पंजरेहिं, च, सन्निरुद्धा, य, अन्धिहिं, ॥ १६ ॥ अह,  
सारही, तभो, भणइ, एए, भदाभो, पाणोणो, तुज्जं, विवाह-  
कज्जमि, भायावउ, वहुंजणं, ॥ १७ ॥ सोऊण, तस्स, सोवणं  
बहुपाणि, विशासणं, चिंतइ, से, माहापत्ते, साणुकोसे, जिये-  
हिभो, ॥ १८ ॥ जइ, मज्ज, कारणा एए, हन्विति, सुसहु,  
जीया, न, गे, एयंतु, निस्सेसं, पल्लोणे, भविस्सइ ॥ १९ ॥  
सां कुडलाण, जुगले, सुत्तयं, च, महापसो, आभरणाणि, व,  
सव्याणि, सारहिस्स, पयाएए, ॥ २० ॥

अथ दीपिका ॥ युग्मं ॥ अथ अनंतरं सेनेपिकुमारः सार-  
थिं इदमब्रवीत् किं कृत्वा. तत्र विवाह मण्डपा सन्ने निर्मन् अवि-  
गच्छन् भयङ्गुनान भय व्याकुलान् प्राणान् जीवान् स्थल चरान्  
मृग शरा मृगा निचिन् आवकादीन् मां साथ भक्षितव्यान्.  
पानित्वा. इति विचार्य दृष्ट्वा कथं भूतान् प्राणान् वाटकं भिर्नि-  
भिः कण्ठक वाटिका भिरा निरुद्धान् अविश्वेन् यन्वितान् पुनः  
पथरै लोच्यद्वयं जलाकादि विनिर्मितैः पक्षि नियन्त्रणा स्थानैः  
सन्निरुद्धान् अतएव मुदुःखितान् पुनः क्रीदमान् जावितानं संभा-  
मान् ते प्रापिन एव जानंति अस्माकं मरणं आगतं कुतोऽस्माकं  
जीविनं इति मग्न द्रष्टा संभासान् क्रीदन्तां नेपिकुमारो मराप्राप्तो  
पदाचुद्धि महिनः अयान् ज्ञान प्रयेण विस्मयीणं वृद्धिर्निव्यर्थः ॥ १५ ॥  
सार्गथिं हिनन्नरीतिः शर दे मार्गथे इपे मय्यथं दृश्यनालाः सर्व-  
माणाः वाटकेषु पुनः पत्रं सन्निरुद्धाः अन्धेनं नियन्त्रिताः कल्पार्थं  
कल्प देनां अथ इति विदिते क्रीदनाः इवे माणाः सुखार्थिनः  
सर्वे संभारिणां जीवा सुखार्थिनः सर्वे हिनये दृग्धो द्विवेन  
कल्पार्थे मार्गथे प्रच्छेदि

भावः ॥ १६ ॥ अथ नेमिकुमार वाक्य श्रवणानंतरं ततः सार-  
थिर्भणति हे स्वामिन् एतेभद्र प्राणिनः युष्माकं विवाह कार्ये बहु  
जनान् यादव लोकान् भोजयितुं एकत्र मीलिताः सन्ति ॥१७॥  
स इति. सनेमिकुमारस्तस्य सारथेर्वचनं श्रुत्वा चिंतयति कीदृशः  
स महाप्राज्ञः महायुद्धिमान् पुनः कीदृशः सजीवोहितः जीवविषये  
हितप्सुः पुनः कीदृशः सानुक्रोशः सह अनुक्रोशेन वर्तते इति  
सानुक्रोशः सदयः अथवा जीव इहि निश्चयेन सानुक्रोशः सक-  
हणः तु शब्दः पूरणे कीदृशं सारथेर्वचनं बहु प्राणि विनाशनं  
बहु जीवानां विधातकारकं ॥ १८ ॥ तदा नेमिकुमारः किंचि-  
तयतीत्याह यदि मम विवाहादि कारणेन एते सुबहवः प्रचुराः  
जीवा हनिष्यन्ते मारयिष्यन्ति तदा एतद्द्विसाल्यं कर्म परलोके  
परभवे निश्चयसं कल्याण कारिन् भविष्यति. परलोक भीरुत्वस्य  
अत्यन्तं अभ्यस्ततया. एवं अभिधानं अन्यथा भगवत्श्रमदेह-  
त्वात् अतिशय श्रत्वाच्च कुत एवं विधा चिंता इति भावः ॥१९॥  
स नेमिकुमारो महायज्ञा नेमिनाथस्याभिप्रायात् सर्वेषु जीवेषु बंध-  
नेभ्यो मुक्तेषु सत्सुसर्वाणि आभरणानि सारथे प्रणामयति ददाति  
कानि तान्याभरणानि कुंडलानां युगुलं पुनः मूत्रकं काटिद्वरकं  
चकारात् आभरण शब्देन हारादिनि सर्वांगोपांग भूषणानि  
सारथेर्ददाति ॥ २० ॥ इति ॥

मूत्रार्थः—अथ इत्थेके अनन्तर वह जो नेमिकुमार है सो  
सारथी के प्रति यह वचन बोलते भये कहा करके विवाह मंडप  
में गमन करता हुवा भयकर के व्याकुल जीव जो स्थलचर मृग  
( हरिण ) शाशला मूकर तीतर लावों (पक्षि विशेषः) इत्यादिक  
मांस के वास्ते भक्षण करने योग्य उन जीवों को विचार पूर्वक

देख करके कैसे कहें वे जीव भीतियाँ का बाड़ा करके और काटों का बाड़ा करके अत्यन्त रोके गये हैं फिर कैसे कहें वे जीव लोंहे और वंश की शलायाँ करके बनाये हुये पिजराँ करके अर्थात् पक्षियों के रोकने के जो स्थान उन्हीं करके रोके गये इस हेतु से दुखित होरहे पुनः कैसे कहे वह जीव प्राणों के नाश को प्राप्त होरहे अर्थात् वह प्राणी जानते हैं कि हमारा मरण आ गया. अब हमारा जीवन कैसे होवे इस प्रकार से मरण दशा को प्राप्त होरहे हैं कैसे कहें हैं वह नेमिनाथ महाबुद्धि सहित अर्थात् मति धृति अवधि ३ ज्ञान करके विस्तीर्ण बुद्धि हो रही है जिनकी ॥ १५ ॥ वह नेमिनाथजी सारथी से क्या बोलते भये सो कहते हैं हे सारथी यह प्रत्यक्ष देख रहे जो सर्व प्राणी बाड़ा करके पीजराँ करके अत्यन्त रोके गये और खड़े हैं सो किस वास्ते और कैसे कहें ये प्राणी सुख की इच्छा करने वाले सर्व संसारी जीव हैं सो सुख की इच्छा करने वाले हैं तो फिर बंधनादि करके क्यों दुखी किये जाते हैं भगवान् जानते हुये भी जीवों की दया प्रकट करने के वास्ते सारथी को पूछते भये यह अभिमाय है ॥ १६ ॥ नेमिनाथजी के वचन सुन के पीछे सारथी बोलता भया हे स्वामिन् जो निरपराधी-पणा से कल्याणकारक जो यह जीव हैं सो आपके विवाह कार्य में बहुत जन जो यादव लोक उनको भोजन कराने वास्ते इकट्ठे करे गये हैं ॥ १७ ॥ वह जो नेमिकुमार हैं सो सारथी का वचन सुन के चिन्ता करते भये. कैसे कहें वह नेमिकुमार, महा-बुद्धि वाले. फिर कैसे कहें जीव के विषे दिनकारक. फिर कैसे कहें दया करके सहित. अथवा जीव के विषे निश्चय कहणा

करके सहित. तु शब्द पाद पूर्यार्थ हैं. कैसाक वह सारथी का वचन बहुत प्राणी का विनाश करने वाला ॥ १८ ॥ उस वक्त में नेमिनाथ क्या चिंतना करते भये. जो मेरा विवाहादिक कारण से बहुत से जीव मारे जावेंगे तब यह हिंसा कर्म परलोक में कल्याणकारक न होगा परलोक से जो डरना उसका अत्यन्त अभ्यासपणा करके यह कथन है नहीं तो भगवान् का चरम शरीर होने से अति ही ज्ञाता होने से इस प्रकार की चिंता क्यों होती ॥ १९ ॥ वे नेमिकुमार बड़े यश के धारण करने वाले नेमिनाथ के अभिप्राय से संपूर्ण जीव बंधन से छूट गए तब संपूर्ण आभरण सारथी को देते हुए कौन से आभरण हैं. कुंडलों का जोड़ा, फिर कंडोरा, चक्रार शब्द से आभरण शब्द करके हारादिक जो संपूर्ण अंग उपांग के भूषण वह भी सारथी को देते भये ॥ २० ॥ इति दीपिकार्यः ॥ अब देखो २ हे मित्रो यह मूत्रपाठ दीपिका से प्रकट खुलासा है कि श्री नेमिनाथ भगवान् जिसवक्त राजीमती को परपने वास्ते तोरण पे आये तहां बहुत जीवों को बाड़े में और पिंजरे में अति दुत्तित देख करके उनकी करुणा लाके जानते हुए भी जीवों को बचाने वास्ते सारथी को पूंछा कि यह जीव विचारे मुत्त के अर्थों इनको क्यों रोक रक्खे हैं तब सारथी ने कहा कि भो स्वामिन्! यह जीव यादवों को भोजन देने वास्ते इकट्ठे किये गये. यह वचन सुन के श्री नेमिनाथ परमेश्वर हिंसा से डरने भये. और जीवों का हित चिंतते भये. यह अभिप्राय नेमिनाथ का था कि यह जीव विचारे छूट जावें तब सारथी ने नेमिनाथ के अभिप्राय को जानके सब जीवों को बाड़े में और पिंजरे में छोड़

दिये. तब श्रीभगवान् ने सारथी को कुण्डल युगल हारादि सर्व आभरण इनाम में दे दिये. देखो भाई यह प्रकट मूत्र और मूत्र की दीपिका का कथन है तो फिर तुम लोग जीव बचाने में पाप होता है, धर्म नहीं. या जीवका जीवना बचाने में पाप तुम्हारे गुरुजी बतलाने हैं तो क्या भी नेमिनाथ जी से भी तुम्हारे गुरुजी को अधिक ज्ञान है. नहीं नहीं यह प्रकट दीखता है कि तुम नेमिनाथ जी की श्रद्धा से विपरीत कथन करनेवाले हो. क्योंकि जो तुम्हारे सरसी भगवान् की श्रद्धा होवे तो सारथी ने नीच छोड़े तब आभरण गहने इनाम में क्यों देने. क्योंकि यह बात प्रत्यक्ष प्रमाण से ही दीखती है कि जो कोई अपने मालिक की इच्छा प्रमाणे काम करे तब उसपर मालिक खुश होके इनाम देने हैं जैसे कि उवाड़े मूत्र में कोणिक गजा को बागवान् ने श्रीभगवान् के पधारने की बधाई दी. तब गजा ने मुकूट को वर्त के सर्व आभरण बराडे में दिये. क्योंकि कोणिक को श्री भगवान् के भाने की बधाई पर अनिद्रम था तब ही यहाँ श्री नेमीनाथजी को नीचों को छोड़ने रूप दिया पर अनिद्रम था. तिमसे सारथी ने नीचों को ग्योल दिये. तब कुण्डल हारादि सर्व गहने सारथी को दिये. वग यह प्रकट मूत्र मूत्र और दीपिका का प्रमाण. हमने ऊपर इमलिये लिखा है. हे बुद्धिमानों पठ श्लोक के सिन्धुना कि तुम्हारे गुरु जीवयन्-श्री की कल्पना समस्त मूत्र का कथन का ज्ञान की है कि नहीं. वस्तु है प्रमाणे न्यायवर्धी होके मूत्र का कथन का विचारना हमन वा तुम्हारे वृत्तता क और तुम्हारे मनस्य मूत्र मूत्र का दबाय का ज्ञान क मूत्र का रात भर दीपिका और

दीपिका की हीज भाषा लिखी है. और यह भी ख्याल करना कि तुम्हारे पूज्य जीतमलजी ने लिखा कि नेमिनाथजी ने जीव छोड़ाया चान्धा नहीं. यह कहना निरर्थक है कि नहीं. और बुद्धिबल होवे तो विचारो कि मूल सिद्धांत और दीपिका में लिखा है वह सच्चा है कि भ्रम विध्वंसन की कल्पना सच्ची. निरपेक्षी जीव होगा वह तो सिद्धांत के वचन को ही प्रमाण करेगा. परन्तु मिथ्या कल्पना कि जो सिद्धांत से दीपिका से नहीं मिले उसको प्रमाण नहीं करेगा. जेकर इठवाद करके. यह प्रत्यक्ष सिद्धांत की साक्षी को भी नहीं मानोगे तो हम समझेंगे कि इन जीवों के प्रबल मोह कर्म का उदय हुवा है कि जिससे सर्वज्ञ प्रणीत सिद्धांत की श्रद्धा छोड़ के विपरीत कथन को मान बैठते हैं. हमने तो तुम्हारे हित के लिये मूल और दीपिका टीका सहित साक्षी लिखी है. परन्तु तुम्हारे सरीसी साक्षी नहीं लिखी कि नमिराज की आखों में अमृत झरता है. और एक बार देखने से संपूर्ण अंतःपुरादिक की रचा हो जावे ऐसा उत्तराध्ययन का नाम लेके लिख दिया. परंतु वह लेख उत्तराध्ययन के मूल अर्थ टीका दीपिका भ्रवचूरिका आदिक में कहाँ भी नहीं लिखा है. ऐसी एक नहीं किंतु बहुतसी साक्षी तुमने विपरीत सूत्र का नाम लेके लिखी है सो हम ऊपर लिख चुके हैं और आगे फिर भी लिखेंगे. और हमने जो साक्षी दी है वह मूल सूत्र अर्थ दीपिका से लिखी है. उसका मतलब यह है कि जो भव्य जीव आत्मा का हितेच्छु होगा तो विचार लेवेगा. और जीतमलजी का बनाया भ्रम विध्वंसन के पत्र ४७ मा पर ऐसा लिखा है कि—

दिये. तब श्रीभगवान् ने सारथी को कुण्डल युगल हारादि सर्व आभरण इनाम में दे दिये. देखो भाई यह प्रकट सूत्र और सूत्र की दीपिका का कथन है तो फिर तुम लोग जीव वचाने में पाप होता है. धर्म नहीं. या जीवका जीवना बंधने में पाप तुम्हारे गुरुजी बतलाते हैं तो क्या श्री नेमिनाथ जी से भी तुम्हारे गुरुजी को अधिक ज्ञान है. नहीं नहीं यह प्रकट दीखता है कि तुम नेमिनाथ जी की श्रद्धा से विपरीत कथन करने वाले हो. क्योंकि जो तुम्हारे सरीसी भगवान् की श्रद्धा होवे तो सारथी ने जीव छोड़े तब आभरण गहने इनाम में क्यों देते. क्योंकि यह बात मत्स्य प्रमाण से ही दीखती है कि जो कोई अपने मालिक की इच्छा प्रमाणे काम करे तब उसपर मालिक खुश होके इनाम देते हैं जैसे कि उर्वाई सूत्र में कोणिक राजा को वागवान् ने श्रीभगवान् के पधारने की बधाई दी. तब राजा ने मुकुट को वर्ज के सर्व आभरण बधाई में दिये. क्योंकि कोणिक को श्री भगवान् के आने की बधाई पर अतिप्रेम था तैसे ही यहां श्री नेमीनाथजी को नीशों को छोड़ने रूप दया पर अति प्रेम था. जिससे सारथी ने जीवों को खोल दिये. तब कुंडल हारादि सर्व गहने सारथी को दिये. बस यह प्रकट मूल सूत्र और दीपिका का लेख. हमने ऊपर इसलिये लिखा है. हे बुद्धिमानों पत्र छोड़ के विचारना कि तुम्हारे गुरु जीतमलजी की कल्पना सरामर सूत्र का कथन को छिपाने की है कि नहीं. परन्तु हे भव्यो न्यायपक्षी हांके सूत्र का कथन को विचारना हमने तो तुम्हारे पूज्यजी के और तुम्हारे मंतव्य मुजब सूत्र का स्वार्थ को छोड़ के सूत्र का पाठ भरु दीपिका. और



दीपिका की हीज भाषा लिखी है. और यह भी ख्याल करना कि तुम्हारे पूज्य जीतमलजी ने लिखा कि नेमिनाथजी ने जीव छोड़ाया चान्चा नहीं. यह कहना निरर्थक है कि नहीं. और बुद्धिबल होवे तो विचारो कि मूल सिद्धांत और दीपिका में लिखा है वह सच्चा है कि भ्रम विध्वंसन की कल्पना सच्ची. निरपच्ची जीव होगा वह तो सिद्धांत के वचन को ही प्रमाण करेगा. परन्तु मिथ्या कल्पना कि जो सिद्धांत से दीपिका से नहीं मिले उसको प्रमाण नहीं करेगा. जेकर हठवाद करके. यह प्रत्यक्ष सिद्धांत की साची को भी नहीं मानोगे तो हम समझेंगे कि इन जीवों के प्रबल मोह कर्म का उदय हुवा है कि जिससे सर्वज्ञ प्रणीत सिद्धांत की श्रद्धा छोड़ के विपरीत कथन को मान बैठते हैं. हमने तो तुम्हारे हित के लिये मूल और दीपिका टीका सहित साची लिखी है. परन्तु तुम्हारे सरीसी साची नहीं लिखी कि नमिराज की आखों में अमृत झरता है. और एक बार देखने से संपूर्ण अंतःपुरादिक की रचा हो जावे ऐसा उत्तराध्ययन का नाम लेके लिख दिया. परंतु वह लेख उत्तराध्ययन के मूल अर्थ टीका दीपिका अवचरिका आदिक में कहाँ भी नहीं लिखा है. ऐसी एक नहीं किंतु बहुतसी साची तुमने विपरीत मूत्र का नाम लेके लिखी है सो हम ऊपर लिख चुके हैं और आगे फिर भी लिखेंगे. और हमने जो साची दी है वह मूल मूत्र अर्थ दीपिका से लिखी है. उत्तका मतलब यह है कि जो भव्य जिव आत्मा का हितेच्छु होगा तो विचार लेवेगा. और जीतमलजी का बनाया भ्रम विध्वंसन के पत्र ४७ मा पर ऐसा लिखा है कि—

केतला एक ट्वा में कथो ( जीए हीऊ ) कहता सकल जीवां का हितकारी तेहनो न्याय इम. मयम तो अबचूरी टीका दीपिका में यो अर्थ न थी. ते बाटे ए ट्वार्थ ते टीका नो न थी ) इति भ्रमः.

अब देखो कि तुम्हारे पूज्य जीतमलजी का मानना ऐसा हुआ कि सकल जीवां का हितवान् नेमीनाथजी ये अर्थ ट्वा टीका दीपिका का नहीं. और फिर भी ( जीए ही ऊ ) का अर्थ जीवां का हितकारी ऐसा अर्थ करने वाले को जीतमलजी ऊंधा अर्थ करने वाले कहते हैं. परन्तु बुद्धि होवे तो विचारो कि दीपिका में तो स्पष्ट लिखा कि ( साणू को से जीवे हेऊ ) कहतां सजीवे हितः जीव विषये हितेषुः पुनः कीदृशः सानुक्रोशः सह अनुक्रोशे न वर्तते इति सानुक्रोशः सद्यः॥

अब देखो दीपिका में तो प्रकट लिखा कि ( जीव विषये हितेषुः ) जीवां के विषये हितकारक. यह दीपिका और भाषा दोनों विस्तार पूर्वक हमने ऊपर लिख दिया. तो विचारो कि भ्रम विध्वंसन के रचने वाले कहते हैं कि जीवां के विषये हित यह अर्थ दीपिका में है ही नहीं. तो कहो यह दीपिका कहाँ से आई. अफसोस है कि इस ग्रंथ का नाम भ्रम विध्वंसन रखवा तो यह ग्रंथ भ्रम का उच्छेदन कारक तो नहीं. परन्तु विचारो कम समझ जीवां को भ्रमरूप अंधकार में दाखल यानी प्राप्त करने वाला है. हे बुद्धिमानों तुम गुरुजी की कल्पना में विश्वास करके मत बैठे रहो. क्योंकि गुरुजी का भ्रम देखो कि जो कथन दीपिका में नहीं बताया है वह प्रकट दीपिका में है तो दीपिका हमने ऊपर लिख दी है. सो जो कोई न्यायपत्नी होवे

तो विचार लेना. और इनको तो अच्छी तरह में विदित हुआ कि जीवमूलजी ने अपना दोष नहीं करा कि दीपिका में जो बात छती है उनको मैं अच्छी त्यों कर लिभूं परन्तु उनका दोष क्या. दोष निष्पत्त्य का है. तथा लिखते हैं कि नेनानाथजी ने जीवों को नहीं छोड़ाये. और जीवों का जीव ने अर्थ नेनानाथ पावे नहीं फिर वह भी निष्पत्ता उहरी. क्योंकि जिन योंका दीपिका अच्युती की साक्षी मोहों को देते हो कि नेनानाथजी ने जीवों को नहीं छोड़ाये. और फिर नही बांझा सोही योंका दीपिका ने इनने निद्र किया है. तो उपर लिख चुके हैं कि नेनानाथजी के अभिप्राय से सारथी ने जीवों को मोल दिसे. और जीव सब गये. वह जीव स्वाने का इनत में मानुसख सारथी को देके नेनानाथजी पीठे छिरे. तथा अच्युतीका ने भी जीवों को मोलने का मुलाना है तो तुम्हारे विव के लिसे. फिर लिखते हैं ॥

वधाय अच्युती ॥ एवं च इत्य भवदाहृदिना सारथि वानो विंशु मत्सेषु परिशोषितोऽर्थात् कृपरात्तदहा ॥

अर्थ- इन वधाय ने शरदरी है स्वामी को अच्युति लिखते देना सारथी करके और कुछ होकर यह मन्त्र होने ने नेनानाथ को जो करते भरे तो करते हैं ॥ इति ॥

अब फिर भी देखते कि तुम्हारे मुक्तों जिन अच्युतीका को मारते होगे है उनमें वा नेव है कि जीवों को मारथी ने मोरे भिन्नका इनत में नेनानाथजी ने दिखा. तो अब देखते कि वा अच्युती विवम मत्सेषु ॥ १०१ ॥ वे वने है जीव तुम्हारे मुक्तों में भी बहुत हरी है तो अब देखत तुम्हारे मन्त्र को विव

केतला एक ट्वा में कणो ( जीए हीऊ ) कहता सकल जीवां का हितकारी तेहनो न्याय इम, मथम तो अवचूरी टीका दीपिका में यो अर्थ न थी, ते माटे ए ट्वार्थ ते टीका नां न थी ) इति भ्रमः.

अब देखो कि तुम्हारे पूज्य जीतमलजी का मानना ऐसा हुआ कि सकल जीवां का हितवान् नेमीनाथजी ये अर्थ ट्वा टीका दीपिका का नहीं, और फिर भी ( जीए ही ऊ ) का अर्थ जीवां का हितकारी ऐसा अर्थ करने वाले को जीतमलजी जंथा अर्थ करने वाले कहते हैं, परन्तु बुद्धि होवे तो विचारो कि दीपिका में तो स्पष्ट लिखा कि ( साणू को से जीवे हेऊ ) कहतां सजीवे हितः जीव विषये हितेषुः पुनः कीदृशः सानुक्रोशः सह अनुक्रोशे न वर्तते इति सानुक्रोशः सदयः॥

अब देखो दीपिका में तो मकट लिखा कि ( जीव विषये हितेषुः ) जीवां के विषे हितकारक, यह दीपिका और भाषा दोनों विस्तार पूर्वक हमने ऊपर लिख दिया, तो विचारो कि भ्रम विध्वंसन के रचने वाले कहते हैं कि जीवां के विषये हित यह अर्थ दीपिका में है ही नहीं, तो कहो यह दीपिका कहाँ से आई, अफसोस है कि इस ग्रंथ का नाम भ्रम विध्वंसन रखा तो यह ग्रंथ भ्रम का उच्छेदन कारक तो नहीं, परन्तु विचारो कम समझ जीवां को भ्रमरूप अंधकार में दाखल यानी प्राप्त करने वाला है, हे बुद्धिमानों तुम गुरुजी की कल्पना में विश्वास करके मत बैठे ग्यां, क्योंकि गुरुजी का भ्रम देखो कि जो कथन दीपिका में नहीं बनाया है वह मकट दीपिका में है सो दीपिका हमने ऊपर लिखदी है सो नां कांउं न्यायपची हांवां



नजर और मध्यस्थता होवेगी तो यह प्रकट सिद्धांत का लेख देख के त्रिनेश्वर देव के मार्गानुयायी होंगे.

पूर्वपक्ष—उत्तराध्ययनजी की पाई टीका में तो जीवों को छोड़ने का कथन नहीं होगा. क्योंकि जो होता तो हमारे गुरुजी ऐसा क्योंकर लिखते कि जीवों को छोड़ने का कथन चला नहीं.

उत्तरपक्ष हे भय्य नहीं कैसे हैं जो भूल मूल में हीन कथन है. वह पाई टीका में कैसे नहीं होंगे. पाई टीका में तो स्पष्ट जीव छोड़ने का इनाम नैर्मानाथजी ने मार्गी को दिया चला है. सो हम तुम्हारे हित के लिये पाई टीका का लेख भी लिखते हैं.

तथा च टीका पंचम विदित भगवदभिप्रायेण मार्गिना मोक्षितेषु सत्त्वेषु पत्नितोपायदर्माहृतवाम्निदाहः मूल कंच कटि मूल कंच च । इति.

टीकायः इम प्रकार कर्मकं ज्ञान लिया है भगवान का अभिप्राय त्रिमने ऐसा मार्गी ने प्राणियों को छोड़ दिये तब प्रसन्न होने में जो भगवान कर्मने भये सो कहते हैं. कटि मूल इत्यादिक इनाम दिया ॥

अब है बुद्धिमानों हृदय के नेत्र खोल के देखो पाई टीका में प्रकट लिखा कि श्री नैर्मानाथ भगवान के अभिप्राय में मार्गी ने जीवों को छोड़ दिये तब श्री भगवान ने हृदयार्थिक भूषण इनाम में दिये ता भया अब ता विचार कि श्री भगवान का जोर का आशाना स्पष्ट भिन्न है तथा फिर जो हमने नैर्मानाथजी का वाक्य आह्वन में मार्गी का इनाम देना जल्मा का मूल कटि में ही है नही ता फिर नैर्मानाथजी ने इनाम

सारथी को किस बात का दिया. जेकर कहो कि जान खातिर जीव मरने का उत्तर दिया इसलिये इनाम दिया तो यह कल्पना बिलकुल मिथ्या है. क्योंकि खबर तो सारथी को पेस्तर ही श्री भगवान् ने ज्ञान से जान ली थी कि इस निमित्त यह जीव इकट्ठे करे हैं परन्तु सारथी को पूछने का मतलब यह है कि जिससे दया को प्रकट जान जाय. जब सारथी ने प्रकट जानली तब जीवों को खोल दिये. तब श्री नेमिनाथजी ने सर्व आभूषण कुंडलादिक सारथी को इनाम में दिया. ऐसा लेख नूत्र का पाठ की दीपिका में है सो हमने ऊपर लिख दिया है. तथा कोई ऐसी कल्पना करे कि नेमीनाथजी को संयम लेने के खातिर गहने को खोलना था तिससे सारथी को आभूषण दे दिये तो यह भी श्रद्धा जैन सिद्धांत के अजाण की है. क्योंकि सारथी को इनाम देके तोरण से फिरे बाद १ वर्ष तक गृहवास में रहे हैं और वर्षादान दिया है. क्योंकि वर्षादान दिये वगैर कोई भी तीर्थकर दीक्षा नहीं लेते हैं. यह कथन मूल नूत्र में है. वस यह सिद्धांत का लेख स्पष्ट खुलासावार है. सो तुम्हारा लिखना है कि यदि आप मरते जीव को बचाने में धर्म मानते हो तो पाठ दिखलाना चाहिये. इससे हम अति खुश हैं और तुम्हारे से अति हित करके हम कहते हैं कि हे देवानुमिय यह नूत्र उत्तराध्ययन का २२ मा अध्ययन की अति पृष्ठ नाची लिखी है परन्तु गोलमान् नाम रूप ही नहीं किंतु नूत्र पाठ पाई दीक्षा, दीपिका, अवचूरी सहित लिखी है सो निरूपचना से पढ़के परमेश्वर के बचनों की आन्ता न्याये नाभी तो एक ही बहुत है. तथापि हम तुम्हारी ज्ञान दृष्टि बढ़ाने के लिये फिर

भी लिखते हैं. सूत्र प्रश्न व्याकरण का पहिला संवर द्वार तिस-  
में दया के गुण निष्पन्न ६० नाम कहे हैं तिसका ११ मा नाम  
दया ऐसा है. तिसका अर्थ देही यानि जीव की रक्षा का है  
सो टीका में खुलासा लिखा है. तथा च टीका ॥ ( तथा दया  
देहि रक्षा ) यह देखो देहि यानी जीव तिसकी रक्षा करणी  
उसका नाम दया कही है और दया पालके अनंत जीव मोच  
गये हैं तो फिर तुम कहते हो कि जीव बचाने में पाप. यह तुम  
कहां से लाये हो.

पूर्वपक्ष—हमतो दया का अर्थ नहीं इनने का कहते हैं यानी  
अपनी तर्फ से नहीं इनना यह अर्थ करते हैं.

उत्तरपक्ष—हे भाई सूत्र का अर्थ तो जो सूत्र में है वही रहे-  
गा. परन्तु कल्पित अर्थ मन मते से करना भवभीरु यानी सं-  
सार से डरने वाले का नहीं है. और नहीं इनना नाम तो ६०  
नाम में से एकही नाम हुवा. परन्तु सूत्र में तो ६० नाम कहे  
हैं सो एक को ही मानना बुद्धिमान् का काम नहीं. जेकर एक  
ही मानोगे तो सिद्धांत के घग्गे पाठों के उत्पापक होवेगे. जैसे  
इसी सूत्र में ३४ मा नाम ( रखा ) ३४ अस्य टीका. ( रक्षा  
जीव रक्षणम्भवात् ) जीव रक्षा का स्वभाव है, तिससे रक्षा  
कहते हैं. देखो नजर लगाके कि अपनी तर्फ से नहीं इनना  
उसकोही ज तुम दया मानते हो. और सूत्रकार कहते हैं कि  
जीव की रक्षा करना नाम भी दया है सूत्र की आस्ता होवे तो  
विचार लो. तथा ५४ मा नाम ( अमाथा ओ ) ५४ अर्थः  
( अमाथि गम्बवानेमिनाथ नी परे ) देखो यह द्यापा कि प्रश्न  
व्याकरण के पत्र ३३० मा पर लिखा है कि नेपानाथ के परे





टीका-सर्व जीव रक्षण रूपा या दया तदर्थं प्रावचनं प्रा-  
चनं शासनं भगवता श्री मन्महावीरेण सुकथितं न्यायाधि-  
त्वेन ॥

टीकार्थः-सम्पूर्ण जगत् का जीव उनकी रक्षा रूप जो  
दया निमित्त अर्थ सिद्धांत श्रीमान् महावीर स्वामी ने  
भन्दा कहा. न्याय का अवाधितपणा करके ॥ इति टीकार्थः ॥

अब अच्छी तरह से देख लेंगे कि यहां सूत्र में कहा कि  
सारे जगत् के जीवों को राखने रूप जो दया निमित्त अर्थ प्रा-  
चन ( सिद्धांत ) श्रीमान् महावीर मनु ने भन्दी प्रकारे कथे हैं.  
अच्छी तरह से फरमाये हैं तो हे मित्रो श्री भगवान् ने सिद्धांत  
फरमाये वद मने जगत् के जीवों की रक्षा लिये हैं तो फिर  
जोर की रक्षा यानी मरते जीव की रक्षा करने में तुम पाप कैसे  
करने हो.

पूरेपल जीव को मरने हुए को कौन रख सकता है. क्यों-  
कि जीव तो अपने आयु कर्म से जीता है. तो मात्र रक्षा तो  
हाइके की होती है परन्तु जीव की नहीं.

उत्तमपक्ष हे अन्यत्र त्रेकर जीव मरते हुए रक्षा करने में  
नहीं रहते हैं तो ऐसा निश्चय नय करके कठोमे तर तो जीव  
मारे में नहीं सकता है क्योंकि अपनी आयुय से ही मरता है.  
त्रेकर जेमा श्रद्धा तुम्हारी शोत्राय कि जीव माग्था मरे नहीं.  
तर नः एकर तुम्हारे मन म जीव श्रद्धा जगनी ही नहीं. तर तो  
त्राय जेमा ह अन्तर म तुम्हारे मन म माग्थ शाना श्री निश्चय  
है एकर ह जीव श्रद्धा जगनी ही नहीं. श्रद्धा का न्याय करी में  
है तर नः तुम्हारे मुख एकर मन है कि जीव मन हगा.



टीका-सर्व जीव रक्षण रूपा या दया तदर्थं प्रवचनं प्रवचनं शासनं भगवता श्री मन्महावीरेण सुकथितं न्यायावायित्वेन ॥

टीकार्थः-सम्पूर्ण जो जगत् का जीव उनकी रक्षा रूप जो दया तिसके अर्थ सिद्धांत श्रीमान् महावीर स्वामी ने भला कहा. न्याय का अवाधितपणा करके ॥ इति टीकार्थः ॥

अब अच्छी तरह से देख लें कि यहां मंत्र में कहा कि सर्व जगत् के जीवों को राखने रूप जो दया तिस अर्थ प्रवचन ( सिद्धांत ) श्रीमान् महावीर प्रभु ने भली प्रकारे कथे हैं. अच्छी तरह से फरमाये हैं तो हे मित्रो श्री भगवान् ने सिद्धांत फरमाये वह सर्व जगत् के जीवों की रक्षा लिये हैं तो फिर जीव की रक्षा यानी मरते जीव की रक्षा करने में तुम पाप कैसे कहते हो.

पूर्वपक्ष-जीव को मरते हुए को कौन रख सकता है. क्योंकि जीव तो अपने आयु कर्म से जीता है. तो मात्र रक्षा तो हाइके की होती है परन्तु जीव की नहीं.

उत्तरपक्ष-हे अल्पज्ञ जेकर जीव मरते हुए रक्षा करने में नहीं रहते हैं तो ऐसा निश्चय नय करके कहेंगे तब तो जीव मारे से नहीं मरता है क्योंकि अपनी आयुष में ही मरता है. जेकर ऐसी श्रद्धा तुम्हारी होजाय कि जीव पाग्या में नहीं. तब तो फिर तुम्हारे मन में जीव हिमा लगनी ही नहीं. तब तो जीव हिमा के अभाव में तुम्हारे मन में माधु होना भी निश्चय है. क्योंकि जीव हिमा नहीं तो फिर हिमा का त्याग कदा में रहे. तब तो तुम्हारे गुरु उपदेश देने हैं कि जीव मन रणा

यह कहना भी निरर्थक ठहरेगा. ऐसा मानने से तो तुम्हारा मत नास्तिक सर्रासा ही हो जायगा.

पूर्वपक्ष—जीव मारचा तो मरता है. तिससे जीव मारने में पाप है इस हेतु से हमारे गुरुजी उपदेश देते हैं. या स्वयं पाप जानके त्याग करके साधू होते हैं.

उत्तरपक्ष—तो हे भव्यो ऐसे ही समझ लेंवो कि जीव मारचा मरता है. वैसे ही जीव बचाया बचता है. और जैसे जीव मारने में पाप है वैसे ही जीव की रक्षा करने में धर्म है. क्योंकि जैसे मारने वाले की खोटी लेस्या, और खोटा जोग, खोटा अध्यवसाय होता है इससे पाप होता है. वैसे ही रक्षा करने वाले की भली लेस्या भले जोग भले अध्यवसाय होते हैं उससे धर्म पुण्य होता है. यह प्रत्यक्ष देखो कि एक जना तो जीव को मार रहा है. या गाँवों के बाड़े प्रमुख में लाय लगाने की इच्छा करता है. या ग्राम को जलाने की इच्छा करता है. और दूसरा जना कहता है कि भाई जीव को मत मार. लाय मत लगा. अब देखो कि जीव को मारने वाले की, लाय लगाने वाले की कृष्ण लेस्या नृत्र उत्तराध्ययन के ३४ मा अध्ययन की २२ मा गाथा में कही है.

नृत्र—निर्ध्वंस, परिमाणो, निस्संसो, अजिह्मिभो । एव जोग, समाउचो, कएहलेमंतु, पण्णामे ॥

अस्पाथः—जीवां प्रते ह्युतो शंका न करे ते निर्ध्वंस परिणाम निस्त्रंसति निर्दयइ. इन्द्रियानो अपण जंतियहार. एह्वो जोग करी समा उक्त सहित थको नु निधय करी कृष्ण लेस्या प्रते पण्णामे ॥ ३४ ॥

टीका-सर्व जीव रक्षण रूपा या दया तदर्थं प्रावचनं प्रवचनं शासनं भगवता श्री मन्महावीरेण सुकथितं न्यायावहितेन ॥

टीकार्थः-सम्पूर्ण जो जगत् का जीव उनकी रक्षा रूप जो दया तिसके अर्थ जिज्ञा सिद्धांत श्रीमान् महावीर स्वामी ने भन्ना कहा. न्याय का अवाधितपणा करके ॥ इति टीकार्थः ॥

अब अच्छी तरह से देख लेंगे कि यहाँ मूल में कहा कि सर्व जगत् के जीवों को राखने रूप जो दया तिस अर्थ प्रवचन ( सिद्धांत ) श्रीमान् महावीर मनु ने भन्नी प्रकारे कथे हैं. अच्छी तरह से कर्माये हैं तो हे मित्रो श्री भगवान् ने सिद्धांत कर्माये वह सर्व जगत् के जीवों की रक्षा लिये हैं तो फिर जीव की रक्षा यानी मरने जीव की रक्षा करने में तुम पाप कैसे कहेंगे हो.

पूर्वपक्ष-जीव को मरने हुए को कौन रख सकता है. क्योंकि जीव तो अपने आयु कर्म से जीता है. तो मात्र रक्षा तो हाइके की होती है परन्तु जीव की नहीं.

उत्तरपक्ष हे अन्धकार नेकर जीव मरने हुए रक्षा करने में नहीं रहते हैं तो ऐसा निश्चय नय करके कहेंगे तब तो जीव मार में नहीं परता है क्योंकि अपने आयुष से ही मरता है. जेकर ऐसा क्रूर तुम्हारी होनाय कि जीव माग्था मरे नहीं. तब तो फिर तुम्हारे मन में जीव रक्षमा जगनी ही नहीं. तब तो जीव रक्षमा के अन्धकार में तुम्हारे मन में मानु राजा भी निर्धर है क्योंकि जीव रक्षमा नहीं तो फिर रक्षमा का अ्याग कहा में ही तब तो तुम्हारे मुख परस्पर ही है कि जीव मन रणो.

उत्तरपक्ष—हे भाइयो वास्तव में सत्य तो यही है कि साधु को जीव मारते हुए को रोकना, जीव मतमार, परन्तु तुम्हारे गुरु भीषमजी की श्रद्धा मानने वाले भीषमजी की उपासक की श्रद्धा जीव मारते हुए को रोके उसमें धर्म मानने की नहीं. उल्टा जीव मारते हुए को रोके मनाई करे तो उसको महापापी कहते हैं और फिर कहते हैं कि जीव मारे उसको एक पाप और मारते को धर्म जानके बजे उसको १८ पाप कहते हैं. यह बात जो तुम्हारे गुरु या असली उनकी श्रद्धा के श्रावक जानते हैं और श्रद्धते हैं. औरों को भी ऐसा उपदेश देते हैं. परन्तु कितनेक भोले भाई उनको इस बात का वाकिबपणा नहीं है. जिसमें उनके मत में जैन धर्म के नाम से बंध जाते हैं. परन्तु जीव मारते हुए को कोई मनाही करे कि इस जीव को मतमार ऐसा उपदेश देने वाले को पाप लगें ऐसा कहते हैं और श्रद्धते हैं ऐसा उनका लग्न यहाँ बताते हैं. अनुकंपा की दाल चौथी गाथा ३८ मी.

( गिर सतरापगरे हेडे जीव आवे तो साधु ने बनावल्यो कठे नहीं बाल्यो. भारी करमा लोक ने भिष्ट करणने ओ पल पांचो कुपरा पाल्यो । ३८ । यहाँ एने एक गाथा लिखी है परन्तु इन विषय का कथन इन दाल में बहुत है. मंदिर ठोरे तो देवे लेना. गाथा को ब्याख्या. सुख्य के पल के हेडे उदंग मनुवर जीव आवे और सुख्य बिना उपरोक्त से नहीं देवे और साधु देवे तो भी साधु को नहीं बनावला हि यह जीव नेरे पल मोरे आवे तो नेरे को चार लेगेना. इत्यादिक नहीं बाल्यो किन्तु बान गान्बरी । )

यह देखो जीव मारता नहीं डरे उसको कृष्ण लेसी यानी पाप लेस्यावान् कहा है. और जीवों को बचाने वाला, पाप से डरने वाला को धर्म लेस्यावान् कहा है । और इसी अध्ययन की ३८ वीं गाथा में निम्नलिखित है.

मूत्र-पिये धम्मे, ददधम्मे, वद्वभीरुहिएसए. एय जोग, स्समाउत्तो, तेउ, लेसंतु, परिणमे ॥ ३८ ॥

अस्यार्थः—प्रिय धर्म छे जेहने बली हृद धर्म ने विपइ हृद वन्न पाप थकी वीहकण हितनो वंछण हार एवे योगे करी समायुक्त सहित थकउते जो लेस्या परिणमे ॥ ३८ ॥ इति मूत्रार्थः ॥

अब देखो मूत्र में मूलपाठ बोलता है कि पाप से डरने वाला और हित का चिंतनेवाला को तेजु लेस्या, यानी प्रशस्त धर्म लेस्यावान् कहा है तो विचारो कि जीव हिंसा लाय लगानादि पाप करनेवाला तो पापलेस्यावान् यानी पापी है. और बर्जनेवाला यानी मारते हुवे को लाय लगाते हुए को रोकनेवाला धर्म लेस्यावान् यानी धर्मात्मा है. क्योंकि पाप से डरना डराना, डरते हुए को भला जानना, यह सर्व कल्प धर्मी पुरुष के हैं तो फिर तुम जीव मारते हुए को मनादि यानी जो कोई रोके उसमें पाप कहते हो यह थद्दा किस सिद्धांत से निकाली. कोई सिद्धांत टीका, भाष्य, दीपिका, अवचूरिका में कहीं भी नहीं है.

पूर्वपक्ष—जीव मारते हुए को तो हमारे गुरुजी भी मनादि करते होंगे. क्योंकि साधु का उपदेश तो मत हणो मत हणो ऐसा है तो हमारे गुरुजी जीव मारते हुए को मनाही करने में पाप कैसे कहते होंगे.



उत्तरपत्र-हे भाइयो वास्तव में सत्य तो यही है कि साधु को जीव मारते हुए को रोकना, जीव मतमार, परन्तु तुम्हारे गुरु भीषणजी की श्रद्धा मानने वाले भीषणजी की उपासक की श्रद्धा जीव मारते हुए को रोकें उसमें धर्म मानने की नहीं. उल्टा जीव मारते हुए को रोकें मनाई करे तो उसको महापापी कहते हैं और फिर कहते हैं कि जीव मारे उसको एक पाप और मारते को धर्म जानके वज्रें उसको १८ पाप कहते हैं. यह बात जो तुम्हारे गुरु या असली उनकी श्रद्धा के श्रावक जानते हैं और श्रद्धते हैं, औरों को भी ऐसा उपदेश देने हैं. परन्तु कितनेक भोले भाई उनको इस बात का वाकित्वपला नहीं है. जिससे उनके मत में जैन धर्म के नाम से बंध जाते हैं. परन्तु जीव मारते हुए को कोई मनाही करे कि इस जीव को मतमार ऐसा उपदेश देने वाले को पाप लगे ऐसा कहते हैं और श्रद्धते हैं ऐसा उनका लेख यहाँ बनाने हैं. अनुकंसा की शाल चौपी गाथा ३८ नो.

( गिर सतरापररे हेटे जीव आवे तो साधु ने बनावरो कडे नहीं चाल्यो. भारी करना लोका ने निष्ट करखने ओ पच पोचो कुयरा चाल्यो । ३८ । यहाँ हमने एक गाथा लिखी है परन्तु इस विषय का कथन इन शाल में बहुत है. संदेह होवे तो देख लेना. गाथा की व्याख्या. गृह्य के पग के हेटे जंद्रा प्रभुत्व जीव आवे और गृह्य विना उपयोग ने नहीं देखे और साधु देने तो भी साधु को नहीं बनावला कि यह जीव नेरे पग नावे आवे मो नेरे को पाप लगेगा. इत्यादिक नहीं कहला किन्तु नैन गत्वरो ।

यह देखो जीव मारता नहीं डरे उसको कृष्ण लेसी यानी पाप लेस्यावान् कहा है. और जीवों को बचाने वाला, पाप से डरने वाला को धर्म लेस्यावान् कहा है। और इसी अध्ययन की ३८ वीं गाथा में निम्नलिखित है.

मूत्र-प्रिये धर्म्ये, ददधर्म्ये, वक्षभीरुहिणसए. एव जोग, स्समाउत्तो, तेउ, लेसंतु, परिणमे ॥ ३८ ॥

अस्यार्थः-प्रिय धर्म लेहने वाली हृद् धर्म ने विपद् हृद् वत्त पाप धकी बीहकण हितनो वंद्यण हार एवे योगे करी समायुक्त सहित धकउते जो लेस्या परिणमे ॥ ३८ ॥ इति मूत्रार्थः ॥

अब देखो मूत्र में मूलपाठ बोलता है कि पाप से डरने वाला और हित का चिंतनेवाला को तेजु लेस्या, यानी मगस्र धर्म लेस्यावान् कहा है तो विचारो कि जीव हिंसा लाय लगानादि पाप करनेवाला तो पापलेस्यावान् यानी पापी है. और बचनेवाला यानी पापने हृद् को लाय लगाने हृद् को रोकनेवाला धर्म लेस्यावान् यानी धर्मान्मा है. क्योंकि पाप से डरना डगना, डरने हृद् को भला जानना, यह सब कल्प धर्मी पुरुष के हैं तो हित तुम जीव पापने हृद् को मनादि यानी जो कोई गेके उममे पाप करने हो यह भद्रा किम भिद्दान मे निद्यायी. कोई भिद्दान यीछा, माध्य, दीपिछा, भद्रगुणिका मे करी भी नही है.

पुनरप्य जोर पापने हृद् को तो हमारे गुरुजी भी मनादि करने होंगे क्योंकि मातृ का उदरमे तो मन हगो मन हमो पेना है ना हमारे गुरुजी जीव पापने हृद् को मनादि करने में पाप कम करने होंगे

पाप लगने से रोका और ब्रत भी अखंड रखाया. तो कोई गृहस्थ धावक प्रभुत्व के पग तले जीव आवे उसको कोई साधू या कोई भी दयावान् वता देवे उसको भीषणजी ने लोकों को भ्रष्ट करने वाला क्योंकर लिख दिया. तो निश्चय हुआ कि भीषणजी की श्रद्धा दया धर्म से बिल्कुल हुई. परन्तु दया का उपदेश दाता, पर नीचे जीव बताने का उपदेश दाता. लोकों को भ्रष्ट करने वाला किसी सिद्धांत प्रमाण से प्रत्यक्ष प्रमाण से सिद्ध नहीं होता है परन्तु धर्म का पालने वाला सिद्ध होता है. और पाप से बचाने वाला सिद्ध होता है.

पूर्वपक्ष—हमारे गुरुजी कहते हैं कि वर्तमान काल में कोई पाप करता होवे तो उसको मना नहीं करना. परन्तु वह पाप नहीं करता होवे जीव मारणे के भाव नहीं होवे, उस वक्त उपदेश का मौका आवे तो पाप के कड़वे फल बताना देना. परन्तु वर्तमान काल में पाप करता होवे, कोई किसी को मारता होवे, कोई किसी को गाली देता होवे तो साधू को मना नहीं करना. और कुछ नहीं कहना क्योंकि जगत् के सगड़े में साधू काई को पड़े. साधू को तो कोई वर्तमान काल में पाप करता होवे तो कुछ भी नहीं कहना.

उत्तरपक्ष—हां भाई जल्द तुम्हारे गुरुजी की ऐसी ही श्रद्धा है कि जीव मारने को कुछ भी नहीं कहना. तथा कोई किसी को आक्रोश करना होवे तो आक्रोश मत करो लड़ाई मत करो ऐसा भी नहीं कहना. यह वान भ्रम विध्वंसन के पत्र ४० में पैं लिखा है. भ्रमरूप साक्षी भी ठी है. परन्तु हम मूत्र मात्मी सहित परमेश्वर का भाग वर्तमान काल में पाप करने वाले को

जैकर कोई गृहस्थ के पग हेटे जीव आवे और गृहस्थ नहीं देखे, साधू देखे और उस जीव पर पग मेलने वाले गृहस्थ को साधू कह देवे कि उपयोग रख जीव मत मार तेरे पग नीचे जीव आता है. ऐसा कहे उस कहने वाले दयावान् को भीषमजी भारी कर्मी कहते हैं. या लोकों को भ्रष्ट करने वाला कहते हैं और कोई के पग नीचे जीव आवे तो नहीं इनने का उपदेश देवे तो धर्म है ऐसा भरूपणे वाले को भीषमजी कुगुर कहते हैं लोकों को मिथ्यात्व रूप घोचे घालने वाले कहते हैं इति गाथा की व्याख्या.

हा ! हा ! हा ! अफसोस है ३ कि भीषमजी की कैसी क्रूर श्रद्धा है कि जीव मारते हुए को भी मत मारो ऐसा उपदेश नहीं और श्रावक जिसको उस जीव मारणे के त्याग है. और जीव मारणा नहीं चाहता है परन्तु बिना उपयोग से कीड़ी मकोड़ी आदि पर पंर रखता है. उसको साधू ने कहा कि देख जीव पे पग मत दे तुझे पाप लगेगा और व्रत भंग होवेगा. ऐसा करुणा का उपदेश श्रावक को साधू देवे जिसमें साधू को क्या पाप लगा. जो उनको भीषमजी कुगुर कहते हैं या लोकों को भ्रष्ट करणहार कहते हैं. और जिस श्रावक के जोग से जीव मरता था व्रत भी भांगना था उसको साधू के चेताने से जीवहिंसा का पाप भी टर गया. व्रत भी भखंड रह गया. उसमें कहा भाई वह श्रावक क्या भ्रष्ट हुवा कि उलटा पाप से छत्र. यानी मुद हुवा.

हा ! हा ! हा ! बुद्धिमान विचारों कि श्रावक को उलटा



जेकर कोई गृहस्थ के पग हेठे जीव आवे और गृहस्थ नहीं देखे, साधू देखे और उस जीव पर पग मेलने वाले गृहस्थ को साधू कह देवे कि उपयोग रख जीव मत मार तेरे पग नीचे जीव आता है. ऐसा कहे उस कहने वाले दयावान् को भीषमजी भारी कर्मी कहने हैं. या लोकों को भ्रष्ट करने वाला कहते हैं और कोई के पग नीचे जीव आवे तो नहीं इनने का उपदेश देवे तो धर्म है ऐसा प्ररूपण वाले को भीषमजी कुगुर कहते हैं लोकों को मिथ्यात्व रूप घोंचे घालने वाले कहते हैं इति गाथा की व्याख्या.

हा ! हा ! हा ! अफ़सोस है ३ कि भीषमजी की कैसी मूर श्रद्धा है कि जीव मारते हुए को भी मत मारो ऐसा उपदेश नहीं और श्रावक जिसको ब्रस जीव मारणे के त्याग है. और जीव मारणा नहीं चाहता है परन्तु बिना उपयोग से कीड़ी मकोड़ी आदि पर पैर रखता है. उसको साधू ने कहा कि देख जीव पै पग मत दे तुझे पाप लगेगा और ब्रत भंग होवेगा. ऐसा करुणा का उपदेश श्रावक को साधू देवे जिसमें साधू को क्या पाप लगा. जो उनको भीषमजी कुगुरु कहते हैं या लोकों को भ्रष्ट करणहार कहते हैं. और जिस श्रावक के जोग से जीव मरता था ब्रत भी भांगता था उसको साधू के चेताने से जीवहिंसा का पाप भी टर गया. ब्रत भी अखंड रह गया. उसमें कहे भाई वह श्रावक क्या भ्रष्ट हुआ कि उलटा पाप से छटा. यानी शुद्ध हुआ.

हा ! हा ! हा ! बुद्धिमान विचारों कि श्रावक को उलटा

पाप लगने से रोकता और ब्रत भी अखंड रखाया, तो कोई गृहस्थ थावक प्रमुख के पग तले जीव आवे उसको कोई साधू या कोई भी दयावान् बताने देवे उसको भीपमजी ने लोकों को भ्रष्ट करने वाला क्योंकि लिख दिया. तो निश्चय हुआ कि भीपमजी की श्रद्धा दया धर्म से खिले हुए. परन्तु दया का उपदेश दाता, पैर नीचे जीव बताने का उपदेश दाता, लोकों को भ्रष्ट करने वाला किसी सिद्धांत प्रमाण से प्रत्यक्ष प्रमाण से सिद्ध नहीं होता है परन्तु धर्म का पालने वाला सिद्ध होता है. और पाप से बचाने वाला सिद्ध होता है.

पूर्वपक्ष—हमारे गुरुजी कहते हैं कि वर्तमान काल में कोई पाप करता होवे तो उसको मना नहीं करना. परन्तु वह पाप नहीं करता होवे जीव मारणे के भाव नहीं होवे, उस वक्त उपदेश का मौका आवे तो पाप के कड़े फल बताना देना. परन्तु वर्तमान काल में पाप करता होवे, कोई किसी को मारता होवे, कोई किसी को गाली देता होवे तो साधू को मना नहीं करना. और कुछ नहीं कहना क्योंकि जगत् के जगड़े में साधू काहे को पड़े. साधू को तो कोई वर्तमान काल में पाप करता होवे तो कुछ भी नहीं कहना.

उत्तरपक्ष—हां भाई जरूर तुम्हारे गुरुजी की ऐसी ही श्रद्धा है कि जीव मारने को कुछ भी नहीं कहना. तथा कोई किसी को आक्रोश करता होवे तो आक्रोश मत करो लड़ाई मत करो ऐसा भी नहीं कहना. यह बात भ्रम विध्वंसन के पत्र ४९ में पें लिखा है. भ्रमल्प साक्षी भी दी है. परन्तु हम नृप नात्मी सहित परमेश्वर का मार्ग वर्तमान काल में पाप करने वाले को

रोकने में धर्म है ऐसा लिख दिखाते हैं. एकाग्र चित्त करके सुनिये. सूत्र भगवतीजी के शतक १२ मा उद्देग पहिले में संख श्रावक का अधिकार में संख श्रावक ने पोपलीजी प्रमुख श्रावकों को कहा कि हे देवानुमिया तुम ४ प्रकार का आहार निप-जाचना फिर अपने सर्व जणे आहार करते हुये पत्नी पोषा की जागरणा करते विचरेंगे तब पीछे उन श्रावकों ने वही काम किया. परन्तु संखजी श्रावक को तत्पश्चात् ११ मा प्रतिपूर्ण पोषा करने की इच्छा हुई जिससे ४ आहार के त्याग करके पोषधशाला में प्रतिपूर्ण पोषा किया. और दूसरे संख सिवाय श्रावकों ने जीम के पोषा किया. दूसरे दिन संखजी भी श्री भगवान् वर्द्धमानजी का धर्मोपदेश सुनने को दर्शन करने को आये और दूसरे श्रावक भी आये. धर्मोपदेशना सुनने के बाद संखजी के ऊपर दूसरे श्रावक आक्रोश ला के संखजी को कहने लगे. कि हे देवानुमिय कल तुमने हमसे तो भोजन करके पोषा करने को कहा. और तुमने ४ आहार का त्याग करके परिपूर्ण पोषा कर लिया सो अब हम देवानुमियों तुम्हारे हित के वास्ते सूत्रपाठ लिखते हैं सो श्रवण करिये.

सूत्र-तंसद्दुगं, तुम्मं, देवाणुष्पीया, अम्हे, हीलेसि । अज्जो, तिसमणे, भगवं, महावीरे, ते, समग्घो, वामए, एवं, वयासीमा-  
 णं, अज्जो, तुम्भे, संखं, समग्घोवासगं, हील्लह, निदंह, खिसह,  
 गरह, भवमाण्ह ॥ इतिः ॥

अम्यार्थः ते भन्तु कग्घो इमो उल्लभो देइ कहे तुमने अम्हे  
 अहो देवानुमिये, हमे हील्लम्या गरु साखे. ऐमा श्रावक का व-  
 र्ताव देखके भगवंत महावीर म्यापी ने कहा कि मत हे आयो



ऐसे आमन्त्रण देके कहते यथे, कि हे आर्यों संख श्रावक को हिलोनिंदो खिसो मत. इनकी अवज्ञा मत करो. इत्यर्थः.

अब देखो यहां मूल सूत्र में कहा कि संख श्रावक की हीलना निंदना करते हुये ऐसे पोपली प्रमुख श्रावकों को श्री-भगवान ने श्रीमुख से बर्जे तो हे भाई विचारो जो परमेश्वर की तुन्हारे सरीसी श्रद्धा कि वर्तमान काल में पाप करते हुए को मनादी नहीं करने की होती तब तो संख पोपली का झगड़ा श्री भगवान् क्यों मेटते तो निश्चय हुआ कि परमेश्वर की श्रद्धा तो पाप करने को रोकने में श्रावकों को हीलते हुए को बर्जने में है और झगड़ा मिटाने में धर्म मानने की श्रद्धा है. परन्तु पाप करते को देख के उसको मना करने में पाप लगने की नहीं जैसे संख श्रावक पैं उन पोपली प्रमुख श्रावकों को क्रोध करते हुए को बर्जे तैसे ही समझ लेना हर कोई पाप करते हुए को बर्जे पाप छोड़ावे तो धर्म है परन्तु पाप नहीं.

पूर्वपक्ष-यह तो तीर्थंकर के लिये कहा. परन्तु वह तो सर्वज्ञ है आगम विहारी है परन्तु द्यमस्य साधू किसी को पाप करते हुए को मनाई करे कि नहीं.

उत्तरपक्ष-साधू के लिये भी कहा है. ठाणंग के तीजा ठाणा उद्देश तीसरा में कहा कि हिंसादि अकार्य करते हुए को उपदेशादिक धर्म की प्रेरणा करके प्रेरणा करे पाप से छोड़ावे और तुन्हारे गुरु जीतमलजी कृत भ्रम विध्वंसन के पत्र ५४ मा पैं लिखा भी है ( अथ अष्टपण कयो हिंसादि अकार्य करना देखी उपदेश देई समझावणो ) अब देखो भाई जीतमलजी तो कहते हैं कि हिंसादि अकार्य यानी जीव को मारना देखके, या

और भी कोई पाप को करता देखके कोई उपदेश देवे कि जीव मत मार. या और कोई पाप मत कर. ऐसा कहे तो उस कहने वाले को धर्म होना है और भीषमजी तो कहते हैं कि कोई गृहस्थ के पैरादि करके जीव परता हो तो नहीं चेतावणा. जीव मत मार ऐसा नहीं कहना. कहे तो कुगुरु समझना और जीतमलजी कहते हैं कि हिंसा करता देखके उपदेश देके समझावणा. तो फिर श्रावक के पग नीचे जनावर आता देखके साधू उपदेश देके जीव बचाया. श्रावक का पाप टरा. इसमें पाप भीषमजी ने कैसे बनाया. हा ! हा हा ! परस्पर विरुद्धता का हाल लिखा नहीं जावे. अब भीषमजी की श्रद्धा के लेखे तो जीतमलजी कुगुरु ठहरे. क्योंकि जीतमलजी तो हिंसा करते को उपदेश देना कहा. अब कही भाई भीषमजी की श्रद्धा को सत्य मानते हो कि जीतमलजी की श्रद्धा को सत्य मानते हो. और भी तुम्हारे गुरु भीषमजी की श्रद्धा को प्रगट करते हैं ध्यान लगा के तुनों. अनुकंपा की ढाल दूसरी २ ॥

( चेड़ाने कोणी करी वार्ता. निरावली का भगोती साखरे. मानवमुया दाय संग्राम में एक कोइ ने असी लाखरे ॥ ३९ ॥ भगवंत अनुकंपा आली नी. पोते न गया न मेल्या साखरे. याने पेला पिसु वज्या नहीं ने तो जीवारी जाण विराथरे. जीवा० ४० ॥ एमा तो दया अपुंकंपा जाणता. तो वीर वटीने जायरे. सगळरे साना उदनावता एतो थोरा म देता मित्रावरे. जीवा० ४१ ॥ कांजक भगत भगवान रो. चेड़ो वारे व्रत धाररे. इन्द्र भीर आया नेट समझीनी. तो किम विध ओपना काररे. जीवा० ॥ ४२ ॥ इतिः ॥



और भी कोई पाप को करता देखके कोई उपदेश देवे कि जीव मत मार. या और कोई पाप मत कर. ऐसा कहे तो उस कहने वाले को धर्म होता है और भीषमजी तो कहते हैं कि कोई गृहस्थ के पैरादि करके जीव मरता हो तो नहीं चेतावणा. जीव मत मार ऐसा नहीं कहना. कहे तो कुगुरु समझना और जीवमलजी कहते हैं कि हिंसा करना देखके उपदेश देके समझावणा. तो फिर थावक के पग नीचे जनावर आता देखके साधु उपदेश देके जीव बचाया. थावक का पाप दरा. इसमें पाप भीषमजी ने कैसे बनाया. हा ! हा हा ! परस्पर विरुद्धता का हाल लिखना नहीं जावे. अब भीषमजी की भ्रद्धा के लेखे तो जीवमलजी कुगुरु उहरे. क्योंकि जीवमलजी तो हिंसा करने को उपदेश देना कहा. अब कही भाई भीषमजी की भ्रद्धा को सत्य मानते हो कि जीवमलजी की भ्रद्धा को सत्य मानते हो. और भी तुम्हारे गुरु भीषमजी की भ्रद्धा को प्रगट करते हैं ध्यान लगा के चुनो. अनुकंपा की ढाल दूसरी २ ॥

( चेदने कोरी करी यार्ता. निरायली का भगोनी साखरे. मानवभुसा दोय संग्राम में एक कोइ ने अमी न्याखरे ॥ ३९ ॥ भगवंत अनुकंपा आरी नी. पांति न गया न मेल्या सारं. याने पेला पिन रुसा नहीं ने तो जीसा ही जाण विराभरं. जीवा० ४० ॥ एना तो दया अनुकंपा जाणता. तो वीर बलीने जायरे. मानवरे नावा उरनावा एता थोग में देता निग्रयरे. जीवा० ४१ ॥ कोलक जगत भगवान गो. चेदं वां वन धारं. इन्द्र वीर शरत नर नपहोनी तो दिग विर व्यपता कारं. जीवा० ॥ ४२ ॥ इतिः ॥

अब देखो भीमजी की श्रद्धा है कि कोई राजा परस्पर संग्राम करते होवे तो भी उपदेश दे बंध नहीं करना. संग्राम करते पहिली भी नहीं बर्जना. क्योंकि कौणिक राजा और चेडा राजा की लड़ाई हुई तदा उपदेश देने को भगवंत नहीं गये. पहिले भी मनाई नहीं करी इन वास्ते उपदेश देके संग्राम भेदे लड़ाई छोड़ावे तिसमें भी पाप होता है. और जीतमलजी मूत्र ठाखांग की सान्नी देके भ्रमविध्वंसन के पत्र ५४ मा पर लिखा कि ( अठे पल कयो हिसादिक अकार्य करतो देखी उपदेश देई समभावणी ) अब देखो जीतमलजी तो कहते हैं कि उपदेश देके हिसादि अकार्य करतो देखी समभावणी. हिसा छोड़ावणी. और भीमजी ने अनुकंपा की दूमरी ढाल में लिखा कि जो संग्राम छोड़ने में दया अनुकंपा भगवान जाणता तो विशाला नगरी जाता. परन्तु भगवान् नहीं गये. निमसे उपदेश देके संग्राम भेटवा में भी पाप है. परन्तु दया अनुकंपा नहीं. अब बुद्धिमान विचारो कि प्रथम तो जीतमलजी और भीमजी के कथन में बड़ा भारी फरक पड़ा कि भीमजी तो हिसा करते को उपदेश देने में पाप श्रद्धते थे. और जीतमलजी ने धर्म लिखा. जेकर परस्पर ही अत्यन्त विरुद्ध है तो फिर सिद्धान्त से तो अत्यन्त विरुद्ध है ही क्योंकि सिद्धान्त का हमने ऊपर मूलपाठ श्री भगवतीजी का लिखा कि जरा सारु मूलजी थावक के ऊपर दूसरे थावक क्रोधभाव लाये. तिसको भी लाभ जाण के परमेश्वर ने उसी वक्त रोका तो बड़ा भारी संग्राम हुवा कि जिसमें १ कोड़ = ० लाख मनुष्यों का यमनाण हुवा अनिच्छोय वधा

तिस क्रोध मेटने में लोकों को शांत करने में परमेश्वर धर्म क्यों नहीं माने. अपि तु निश्चय ही मान और नहीं मानते तो श्रीमुख से श्रावकों को क्रोध करते हुए का क्यों रोकते नहीं २ परमेश्वर तो संग्राम रोकने में इंटर में उपदेश देने में धर्म श्रद्धत हैं परन्तु पाप नहीं श्रद्धते हैं.

पूर्वपक्ष—जेकर भगवान् धर्म श्रद्धत तो फिर विशाला नगरी में जाके संग्राम करते हुए चेड़ा और कोणिक राजा को क्यों नहीं बर्जे. या संग्राम होते पहिले ही क्यों नहीं मना किये. क्योंकि चेड़ा और कोणिक राजा दोनों भगवान् के भक्त थे. तो फिर भगवान् समझाने का क्यों नहीं गये.

उत्तरपक्ष—हे भाई यह तुम्हारा कहना अन्यन्त अल्पप्रता का है. क्योंकि जैन सिद्धान्त का थंड़ा साक ज्ञाना को भी ऐसी शंका नहीं होती है. परन्तु फिर उत्तर एकाग्रचित्त करके सुनो कि हे मित्र भगवान् चेड़ा कोणिक का संग्राम मेटने में धर्म जानते थे. परन्तु भगवान् केवल ज्ञानी होने से ऐसा भी जानते थे कि यह अवश्य भावी मिट नहीं सकी है इससे भगवान् नहीं पधारे तथा तुम जैनी नाम धरते हो हम तुमसे पूछते हैं कि संग्राम करने में धर्म हुआ कि पाप.

पूर्वपक्ष—संग्राम में ता एकांत पाप है.

उत्तरपक्ष—जेकर एकांत पाप होता तो फिर पाप छोड़ने का उपदेश देने में तो तुम्हारे गुरुजी भी धर्म मानते ह कि नहीं.

पूर्वपक्ष—पाप छोड़ने में तो धर्म मानते हैं. परन्तु आगामी काल में पाप करने की मनाई करत हैं.

उत्तरपक्ष-तो भगवान् को जिस दिन से केवल ज्ञान उप-  
जा है तिस दिन से ज्ञान से जानते थे कि अमुक दिन चेड़ा  
कोलीक के संग्राम होवेगा तो फिर भगवान् ने चेड़ा कोलीक  
को तारणे वास्ते एक महीना पैस्तर आके ऐसा उपदेश या  
त्याग क्यों न कराये कि अमुक दिन तुम्हारे द्वार दार्थी के  
निमित्त से संग्राम होवेगा सो तुम लड़ाई मत करना. वर क्रोध  
नहीं बधाना. ऐसा क्यों न कहा.

पूर्वपक्ष-भगवान् ज्ञान में जाणते थे कि अवश्य भावी  
नहीं टरे. जिससे संग्राम करने का त्याग का उपदेश नहीं  
दिया मनादि करने को महीने पहिले नहीं आये.

उत्तरपक्ष-तो भाई कहो महीने पहिली संग्राम का त्याग  
कराने को भगवान् नहीं आये. तो संग्राम के त्याग कराने में  
धर्म है कि नहीं.

पूर्वपक्ष-धर्म तो है परन्तु निश्चय ज्ञानवान् श्री भगवान्  
जैसे ज्ञान में प्रदरना देखे वैसे करे. क्योंकि हमारे गुरुजी ने  
भी इसी ढाल की ४३ वीं गाथा में लिखा कि ( ज्ञानदर्शन  
चारित्र्य को छिछोरे बध तो जाये उपाय रे. करे अनुकंपा  
जीवरी. वीर विगर पुलाया जावरे ) ४३ ऐसा कहना हमारे  
गुरुजी का है.

उत्तरपक्ष-तो कहो भाई चेड़ा कोलीक भगवान् के भक्त  
थे. तो इनको संग्राम के होते एक महीने पहिली आके भग-  
वान् संग्राम करने का त्याग कराने तो ज्ञानदर्शन की वृद्धि  
होती कि नहीं.

पूर्वपक्ष ज्ञान दर्शन की वृद्धि तो संग्राम के त्याग कराने

में होती है. परन्तु उस वक्र श्री भगवान ने अपने ज्ञान में चेड़ा कोणीक के लाभ की फरना नहीं देखी. जिससे त्याग कराने नहीं आये.

उत्तरपत्र तो है पत्र इसी में ही हम कहते हैं कि भगवान चेड़ा कोणीक की लड़ाई मदन में हम ज नत थे. परन्तु पिटने की फरना नहीं देखी जिससे भगवान मदन को नहीं आये. परन्तु तुम्हारे गुरु भी पत्नी जीरदया से दूध धार के यह ज्ञान कर्षोकर निन्दी कि भगवान ने संग्राम हान पहिले भी उपदेश नहीं दिया या सारा का उपदेश देन का नहीं मेले. या आप मुद नहीं गये क्या तुम्हारे भीपत्नी आगम्य काल में प्रेग अमान में या पम नहा मानने य जो एसी अनुचित दाल भाउ क लोका क दृश्य म दया उदान के निमित्त यह चष्टा करी.

पूर्वपत्र इसमें गुरु भीपत्नी का आरना काल में प्रेग पिटने में पाप उदान में रम मानने य क्योंक प्रेग पिटने का उपदेश उनही बनाई दूध भाउ में रदून है.

उत्तरपत्र-है पत्रो तो तुम सोचो कि पाप मदन का उदा उपदेश था तो फिर ऐसा क्यों कथन किया कि संग्राम नहीं करने का उपदेश चेड़ा कोणीक को संग्राम करने पहिले भगवान ने तब जानके नहीं दिया. हा ! हा ! हा ! नरदा पर जो सिद्धता का ज्ञान का ही नक हरे मरे परन्तु ह पुद्गलानो ज्ञानम में देव के निर्देश हरे पुद्गल में मर रहा.

पूर्वपत्र आर श्रीक श्रीक

या



फिर घर २ में जीवों को क्यों नहीं बचाने को जावो या बाजार में या जंगल में चातुर्मास में ढांडों के पैर नीचे अनेक गजायां मरे उनको सोज २ के इकट्ठे करके क्यों नहीं लावो. जेकर धर्म होवे तो आपको यह काम करना चाहिये.

उत्तरपक्ष—हे भाई जीव बचाने में तो साधु को लाभ ही है. परन्तु तुमने कहे वह काम तो साधु का व्यवहार नहीं. सो वह तिससे नहीं कर सक्ते हैं. तिसका हेतु मुनो. प्रथम तो साधु नहीं हनने का उपदेश देना अच्छा समझते हैं परन्तु घर २ में जाके मत हणो इत्यादिक उपदेश घर २ में विस्तार पूर्वक कहने का कल्प नहीं अगर गृहस्थों के घर २ जाके विस्तार पूर्वक उपदेश देवे तो तीर्थंकर की आज्ञा का भंग होवे.

पूर्वपक्ष—घर २ में साधु को विस्तार से धर्म कथा कहने की मनाई कहां करी है.

उत्तरपक्ष—सूत्र बृहत्कल्प में है सो लिखते हैं ध्यान लगा के श्रवण करो.

सूत्रपाठ—नो, कप्पइ, निगंधाणवा, अंतरागहंसिवा, जावच-उगाहंवा, पंचगाहंवा, आइखिजएवा, विभावित्तएवा, कीटित्तएवा, पवेइत्तएवा, नन्नत्थ, एगणाएणवा, एगवागरणेणवा, एगंगाहाएवा, एगसिलोएणवा, सेवियाडिच्चे, नोचेवणं, अट्टिच्चा, इति ॥ २२ ॥

अस्यार्थः—साधु साध्वी को गृहस्थ के घर में विस्तार पूर्वक चार या पांच गाथा का कथन नहीं करना धर्म नहीं मुनाना. किन्तु कोई समय में मुनाना पड़े तो खड़े खड़े एक श्लोक का अर्थ संक्षेप से मुना देवे. सो वह भी खड़े खड़े मुनावे परन्तु

में होती है. परन्तु उस ब्रह्म श्री भगवान् ने अपने ज्ञान में चेड़ा कोणीक के लाभ की प्ररना नहीं देखी. जिससे त्याग कराने नहीं आये.

उत्तरपक्ष-तो हे मित्र इसी से ही हम कहते हैं कि भगवान् चेड़ा कोणीक की लड़ाई में धर्म जानते थे. परन्तु मिटने की प्ररना नहीं देखी जिससे भगवान् मिटने को नहीं आये. परन्तु तुम्हारे गुरु भीपमजी जीवदया से द्वेष धार के यह बात कर्णोकर लिखदी कि भगवान् ने संग्राम होते पहिले भी उपदेश नहीं दिया. या साधों को उपदेश देने को नहीं मेले. या आप खुद नहीं गये. क्या तुम्हारे भीपमजी आगम्य काल में क्लेश मिटाने में भी धर्म नहीं मानते थे जो ऐसी अनुचित ढाल जोड़ के लोकों के हृदय से दया उठाने के निमित्त यह चेष्टा करी.

पूर्वपक्ष-हमारे गुरु भीपमजी तो आवता काल में क्लेश मिटाने में पाप छोड़ाने में धर्म मानते थे क्योंकि क्लेश मिटाने का उपदेश उनकी बनाई हुई जोड़ में बहुत है.

उत्तरपक्ष-हे मित्रो तो तुम सोचो कि पाप मिटने का उनका उपदेश था तो फिर ऐसा क्यों कथन किया कि संग्राम नहीं करने का उपदेश चेड़ा कोणीक को संग्राम करते पहिली भगवान् ने पाप जानके नहीं दिया. हा ! हा ! हा ! तुम्हारे मत की बिरुद्धता का कथन कहां तरु कह सके परन्तु हे बुद्धिमानो ज्ञाननेत्र से देख के निर्णय करो पक्षगत में मत पड़ा.

पूर्वपक्ष-आप लोक जीव बचाने से धर्म समझते हो तो

सिद्ध घर २ में जीवों को क्यों नहीं बचाने को जानो या बा-  
ज़ार में या जंगल में चातुर्मान में डांशों के पैर नीचे भेदक  
गजायां भरे उनको नोज २ के इकट्टे करके क्यों नहीं लाया,  
जेकर धर्म होने तो आपसो यह काम करना चाहिये.

उत्तरपक्ष-हे भाई जीव बचाने में तो नाशु को त्याग ही है.  
परन्तु तुमने कोई यह काम तो नाशु का व्यवहार नहीं. तो यह  
विमते नहीं कर सकते हैं. विमता हेतु तुमों. कथन तो नाशु  
की हानि का उपदेश देना अच्छा समझते है परन्तु घर २ में  
जाके मत हसी इत्यादिक उपदेश घर २ में विमता पृथक  
करने का कल्प नहीं अगर दुहन्धों के घर २ जाके विमता पृथक  
उपदेश देने तो तीर्थकर ही आशा का भंग होवे.

पृथक् घर २ में नाशु को विमता में धर्म करा करने  
की बनाई नहीं की है.

उत्तरपक्ष नृप दुहन्धल में है तो लिखते हैं-मान लता  
के धरम करो.

नृपराज जो, कपडा, निर्मोधावका, अंतगाहंनिका, आरव-  
उगाईका, इंचगाईका, आहंनिकवहा, विवाहिनपका, कोटिल-  
पका, इरोपका, नक्षत्र, एतगाहका, एतगाहका,  
एतगाहका, एतनिरीपका, नोरिपदिदे, नोरिपका, इतिहा,  
इति ॥ २२ ॥

अन्वयः-नाशु नाशु की दुहन्ध के घर में विमता पृथक  
कार या जान लता का कथन नाशु करता है नाशु तुमका,  
विमता को नमक से तुमका रहे तो नरुदे नरुदे नरुदे नरुदे नरुदे नरुदे  
अर्थ नरुदे में तुमका रहे. तो यह भी नरुदे नरुदे तुमका परन्तु

बैठ के नहीं गृहकल्प उद्देश तीसरा सूत्र २२ मा ॥

तो भ्रव देखो सूत्र में विस्तार से धर्मोपदेशना गृहस्थ के घर में सुनाने की भगवन्त की मनाई है, तो धर्मोपदेश सुनाने में तो लाभ ही है, धर्मोपदेशना पाप में नहीं, परन्तु गृहस्थी के घर में ज्यादा देर तक ठहर के धर्मोपदेशना सुनाने में साधू की लोकों में अप्रतीत होती है, लोक निंदा करे, साधू को गृहस्थ के घर ज्यादा बैठने से दूसरे भिक्षुक की भिवा की अंतगण होंगे, गृहस्थ की स्त्री से राग उत्पन्न होंगे, इत्यादिक भ्रवगुण को उत्पत्ति होंगे, निमसे साधू को गृहस्थ का घर में विस्तार से धर्मोपदेशना नहीं देनी कल्पे, ऐसे ही साधूजी जीव बचाने में धर्म समग्रते हैं परन्तु घर घर से जीवों को चुन २ के लाने से साधू की प्रतीत उठे, और गृहस्थ लोकों में साधू की निंदा होंगे निमसे जीव चुन २ के नहीं लावे गृहस्थ के घर उपदेश देनेवन्.

पूर्वपक्ष-गृहस्थ के घर में तो एक श्लोक का उपदेश साधू खड़ा थका कर सकता है.

उत्तरपक्ष-हां वैसे तो गृहस्थ के घर में साधू गोचरी आदिक गुण धरुं गृहस्थ को जीव बचाने का भी कर सकते हैं, स्वयं भी बचावने लायक होय तो बचाय लें हैं.

पूर्वपक्ष-कोई गृहस्थ न्याग पचग्याण करने को साधू को बुलावे तो साधू जावे कि नहीं.

उत्तरपक्ष-नेकर कोई गृहस्थ साधू के मर्पीय आनि समर्थ नहीं होंगे तो न्याग दगाने को जाय

पूर्वपक्ष-कोई गृहस्थ करे कि इ पदागत भद्रुक टिछाने

जीव मरते हैं आप जाके बचावो. तो जावे कि नहीं जावे.

उत्तरपक्ष-हां जो जीव गृहस्थ से बचते नहीं हों और साधू के ही उपदेश से बचते हों तो अवश्य बचाने को जावे.

पूर्वपक्ष-कोई आके कहे कि अमुक ठिकाने ईलियां विखरी हुई पड़ी हैं. आप जाके बचावो तो जावे कि नहीं.

उत्तरपक्ष-ईलियांदिक् तो गृहस्थ भी बचा सकता है तो फिर साधू की क्या जरूरत है. क्या ईलियां बचाने में उपदेश देना पड़े जो साधू को बुलाने आवे. ऐसे छोटे जीव को तो गृहस्थ भी बचा सकता है साधू को बुलाने के लिये क्यों आवे. हां अलवृक्षां कोई मोटा पंचेन्द्री जीव गृहस्थ मारता होवे. और गृहस्थी उस जीव को छोड़ने समर्थ नहीं होवे. और साधू के उपदेशादि करके छोड़ने को संभव होवे तो जरूर जाके छोड़ावे परन्तु जो काम गृहस्थ सहज से कर सके उसमें साधू को जाने की जरूरत क्या है.

पूर्वपक्ष-कोई जगह लट्थनोरघा प्रमुख बहुत जीवों का गंज है उसको कोई गृहस्थ ने नहीं देखा तहां साधू ने देखा तो उस जीवों का गंजसु सोज के पात्रे प्रमुख में भर भर करके एकांत आयादिक् में छोड़े कि नहीं.

उत्तरपक्ष-हे भाई जीवों की करुणा में तो धर्म है परन्तु साधू का व्यवहार सोवे नहीं इस वास्ते नहीं सोजे. सो ऐसे ही हम तुमसे पूछते हैं कि तुम्हारे गुरुजी धर्म सुनाने में धर्म समझते हैं तो दो चार पंथ मिले तहां खड़े हो के ईसाई पादरिजियों की नाई उपदेश गली गली में चौक चौक में क्यों नहीं सुनावे.

पूर्वपक्ष-साधू को तो योग्य स्थान में बैठ के उपदेश सुनाना

योग्य है, परन्तु गली गली में चौक चौक में ईसाई पादरियों की तरह नहीं सुनाते हैं.

उत्तरपक्ष—व्यों नहीं सुनाते धर्म का काम है. इससे तुम्हारे जितने साधू होय उतने सर्व गली गली में सुनावे तो बहुत लाभ होवे कि नहीं.

पूर्वपक्ष—व्याख्यान सुनाने में तो लाभ ही होता है परन्तु ऐसे गली गली चौक चौक में खड़े होके सुनाना साधू का व्यवहार नहीं शोभे.

उत्तरपक्ष—वस भाई इसी तरह से समझ लें कि जीव दया में साधू धर्म समझते हैं. मौका होवे तो वचाने का उद्देश देते हैं. स्वयं वचाने भी हैं परन्तु ईलियां का गंज नहीं सोजे इसका कारण तो यह है कि जैसे व्याख्यान भी गली गली में सुनाने का व्यवहार नहीं शोभे ऐसे यहां भी समझ लें. जीव दया से छोड़ना अच्छा है. और करुणाभाव रखना चाहिये जिससे आत्मा का कल्याण होवे. प्राणी की अनुकंपा से साता वेदनी का बंधना सूत्र भगवतीजी का पाठ से है. सो पाठ लिखते हैं सुनिये.

सूत्र—कहणं, भंते, जीवा, साया, वयणिज्जा, कम्मा, कज्जई, गो, पाणाणु कंपाए, भूयाणुकंपाए, जीवाणुकंपाए, सनाणुकंपाए, इति ॥

अब देखो यहां भी कहा कि प्राणी भूत जीव सत्वकी अनुकंपा करने से साता वेदनी बंधने का कहा. तथा सूत्र ज्ञातानी का पहिन्द्रा अध्ययन में मेघकुमार ने इप्पी का भव में प्राणी भूत जीव सत्वकी अनुकंपा करने से संसार को

पड़त करा.

पूर्वपन्न-मेघकुमार ने तो हस्ति के भव में एक ससले की दया पाली जिससे संसार पड़त करा. परन्तु दूसरे मंडल में जीव अग्नि से बचे उन जीव से संसार पड़त नहीं करा.

उत्तरपन्न-हे भाई ससले को बचाने से तुमने संसार पड़त करना रूप फल मान लिया तो जीव बचाने से लाभ तो तुम्हारे कहने से ही सिद्ध हुआ. और ससले के मित्राय जो एक योजन का मंडल में जीव अग्नि से बचे उन जीव की कल्पना से मेघकुमार का जीव ने संसार पड़त नहीं करा यह कहना भी तुम्हारा अपने स्वच्छंद करने का है क्योंकि मूत्र का अभिप्राय तो ऐसा है कि ससले के कारण से सब जीवों पर दया करी. ससला तो मुख्यता में है परन्तु गौयता में तो सब जीव मंडल के लेना ऐसा संभव होता है.

पूर्वपन्न-ऐसा मूत्र ज्ञानाजी में कहाँ लेत्व है.

उत्तरपन्न-हां भाई ऐसा ही मूत्र ज्ञानाजी में तुलासा लेत्व है. सो ध्यान लगा के श्रवण करो.

मूत्र-नंससयं. अनुपविट्टं. पालइ र चा. पाणानुकंपयाए. भूषानुकंपयाए. सचायु कंजयाए. सेयाए. अंगरा. चैव. संधारिए. पांचेवणं. दिक्खित्ते. तएणं. तुयं. नेहा. वार. पापायु. कंजयाए. जावसषाणुकंपयाए. संसार परिचोद्धए.—इति.

अस्त्यार्थः—ते समये पंड प्रते देत्वे. देत्वी ने प्राणी वैद्विन्द्रियादिक जीवनी दया थी. मत्व पृथ्वी. पाणी. अग्नि वायु ने हनी दया थकी अंगवीचाले निशंग उंचो निमज एग रात्ते. चैव निद्वय धरनी पै एगमूके नहीं. विचार पड़ी वृ हे मेघ ने

माणीनी अनुकंपा दया धकी जाव सत्व पृथिव्यादिक नी दया धकी शशा जीवनी दयाये करी संसारनो परीत कीधो. इति सूत्रार्थः.

अब देखो मकट पाठ में ऐसा कहा कि ( पाषाणु कंपीए ) परन्तु ऐसा न कहा कि ( सस अनुकंपीए ) जेकर केवल ससले को ही दया का कथन होता तो सूत्रकार ( सस अनुकंपीए ) ऐसा ही क्यों नहीं कह देते. परन्तु नहीं ससले के कारण से समस्त जीवों पर करुणा आई. तिससे संसार पड़त किया तथा जहां एकही जीव की करुणा करी. वहां पाठ भी एकही कहा है. जैसे सूत्र भगवतीजी का शतक १५ वा में जहां भगवान् ने गोशाले को बचाया है. तहां ऐसा पाठ है.

मूत्र-तएणं, अहं, गोयमा, गोसालस्त, मंखलि, पुत्तस्त, अणुकंप, द्रुयाए, इति ॥

यह देखो श्री भगवान् ने एक गोशाले की ही दया करी तो एक गोशाले का हीज नाम कहा. जैसे ही जो एक ससले की ही दया मंगलुमार ने इस्यी के भव में करी होनी तो ऐसा पाप पाठ होता कि ( सस्त, अणुकंप, द्रुयाए ) परन्तु ऐसा पाठ सूत्र में नहीं. सूत्र में तो ( पाषाणु, कंपयाए ) इत्यादि पाठ है. इससे ससले का निमित्त से घने जीवों पर करुणा आई ऐसा संभव होता है. इति.

अब देखो तुमको कहने हो कि जीवनों वंछे तो एकानपाप होवे. और भगवंत तो ठाम ठाम मूत्र में जीव बचाने से संसार का पड़त करना आदिक महा लाभ कहा है.

पूर्वपद-जीव का दया रूप जीवणा वंछे सो धर्म में ३ रेमा





माखीनी अनुकंपा दया थकी जाव सत्व पृथिव्यादिक नी दया थकी शशा जीवनी दयाये करी संसारनो परीत कीयो. इति मूत्रार्थः.

अब देखो प्रकट पाठ में ऐसा कहा कि ( पाषाणु कंपीए ) परन्तु ऐसा न कहा कि ( सस अनुकंपीए ) जेकर केवल ससले को ही दया का कथन होता तो मूत्रकार ( सस अनुकंपीए ) ऐसा ही क्यों नहीं कह देते. परन्तु नहीं ससले के कारण से समस्त जीवों पर करुणा आई. तिससे संसार पड़त किया तथा जहां एकही जीव की करुणा करी. वहां पाठ भी एकही कहा है. जैसे मूत्र भगवतीजी का शतक १५ वा में जहां भगवान् ने गोशाले को बचाया है. तहां ऐसा पाठ है.

मूत्र-तण्डं, अहं, गोयमा, गोसालस्त, मंखलि, पुचस्त, अणुकंप, ट्टयाए, इति ॥

यह देखो श्री भगवान् ने एक गोशाले की ही दया करी तो एक गोशाले का हीज नाम कहा. तैसे ही जो एक ससले की ही दया मेघकुमार ने हस्थी के भव में करी होती तो ऐसा पाप पाठ होता कि ( सस्त, अणुकंप, ट्टयाए ) परन्तु ऐसा पाठ मूत्र में नहीं. मूत्र में तो ( पाषाणु, कंपयाए ) इत्यादि पाठ है. इससे ससले का निमित्त से घणे जीवों पर करुणा आई ऐसा संभव होता है. इति.

अब देखो तुमको कहने हो कि जीवणो बंधे तो एकांतपाप होवे. और भगवंत तो ठाम ठाम मूत्र में जीव बचाने से संसार का पड़त करना आदिक महा लाभ कहा है.

पूर्वपद-जीव का दया रूप जीवणा बंधे सो धर्म में है ऐसा

में भी परिग्रह अनर्थ करे हैं. वैमेही असंजती जीव ही रक्षा करने में भी असंजती जीव अनर्थ करते हैं इसलिए जीवरक्षा और परिग्रह रक्षा सरिणी कहते हैं.

उत्तरपक्ष-हे भाई यह कहना अव्यक्त विष्ट है. क्योंकि मध्यम तो हमने मूत्र का पाठ दिखलाया है कि ( मन्त्र, जग, जीव, रन्वण, ठयाए, ) ऐसा पाठ तो मूत्र में है. परंतु (परीणह, रन्वण, ठयाए, ) ऐसा पाठ कहां भी नहीं है. जेकर (परीणह, रन्वण, ठयाए, ) ऐसा पाठ को भी सिद्धांत में बला देवो तो हम तुमको धन्यवाद देवें. और तुमको ठीक समझे परंतु सिद्धांत में तो कहां पि नहीं है तो परिग्रह सरिणी जीवरक्षा भी कहरी भिण्या है. क्योंकि परिग्रह की रक्षा तो मूत्र में कही नहीं. और जीवरक्षा तो ठाम ठाम मूत्र में कही है और फिर हम तुम ने पूछते हैं कि एक भाई ने तो कीही पर पग नहीं दिया. और एक जखे ने देवे पर पग नहीं दिया. तो कही नया किमको हुआ.

पूर्वपक्ष-नया तो जीव से पग नहीं देनेवाले को हुआ परंतु देवे पर पग नहीं देने वाले को क्या नया हुआ. क्योंकि जीव से पग नहीं देने में तो कसब कसबा आह. जिनमे कसबा का नया हुआ. परंतु देवे पर पग नहीं देने में तो कसबा होवे ही ना और मूत्र में भी ( पारण, बेरीए, बहा, पण्डू परि-भाण्ड, बेरीए, बहा, और बेरुमान की भी पारण, बे-रीए में मन्त्र पर कसबे का बहा परण्डू देना बहा भी कहन ना कि देना आदि से पग नहीं देने में मन्त्र पर कसबे में भी बहा

कहा परंतु ( परिग्रह, रक्खण, ठयाए ) पाठ नहीं कहा. यानी परिग्रह की विरती रूप व्रत की रक्षा का पाठ है. परंतु परिग्रह को राखने का पाठ नहीं. पहिला संमरद्वार का और पांचवां संमरद्वार का सरीसा पाठ नहीं. तो हे भाई तुम अच्छी तरह से विचार लेंगे कि पहिला संमरद्वार का और पंचमा संमरद्वार का पाठ में यह प्रत्यक्ष फेर है परंतु एक सरीसा नहीं है.

पूर्वपक्ष—जैसे यहां भी परिग्रह की निवृत्ति रूप व्रत को राखने का है तैसेही पहिले संमरद्वार में प्राणातिपात बेरमण. उसकी रक्षा यानी हिंसा से निवृत्तरूप व्रत की रक्षा करने का कथन समझ लेना.

उत्तरपक्ष—हे अल्पज्ञ मित्र अनंत ज्ञानी श्रीमहावीर प्रभुजी का श्रीमुख का कथन से व्यतिरिक्त बर्तने चाली तुम्हारी स्वच्छंदपणा की कथनी को कौन बुद्धिमान पुरुष मानेगा. अपितु संसार समुद्र से डरने वाला तो परमेश्वर के हीज बचनों को मानेगा क्योंकि श्रीभगवान ने तो सर्व जगत के जीवों की रक्षा करनी फरमाई है ( सच्च, जग, जीव, रक्खण, ठयाए, ) ऐसा पाठ है कि सर्व जीवों की रक्षा निमित्ते परमेश्वर ने मूत्र रचे हैं परन्तु केवल यूँ हीज नहीं कहा कि प्राणातिपात बेरमण की रक्षा वास्ते मूत्र कहे तो फेर तुम जीव दया से ड्रेप क्यों रखते हो. परमेश्वर ने तो जीवरक्षा ठाम ठाम कही है. और जीवना बंधे बिदून जीव रक्षा होनी ही नहीं. कारण बिना कार्य नहीं होता है जैसे मृत्तिका बिना घट भी नहीं होता है. तैसेही जीवणा बंधे बिना जीवरक्षा कभी नहीं होती है.

पूर्वपक्ष—हमारे गुरुजी तो कहते हैं कि परिग्रह रक्षा करने

से भी परिग्रह अनर्थ करे हैं. वैसेही असंयती जीव की रक्षा करने से भी असंजती जीव अनर्थ करते हैं इसलिये जीवरक्षा और परिग्रह रक्षा सरीसी कहते हैं.

उत्तरपक्ष—हे भाई यह कहना अत्यन्त विलुद्ध है. क्योंकि प्रथम तो हमने मूत्र का पाठ दिखलाया है कि ( सञ्च, जग, जीव, रक्षण, ठयाए, ) ऐसा पाठ तो मूत्र में है. परंतु (परीग्गह, रख्खण, ठयाए, ) ऐसा पाठ कहां भी नहीं है. जेकर (परीग्गह, रख्खण, ठयाए, ) ऐसा पाठ को भी सिद्धांत में बता देवो तो हम तुमको धन्यवाद देवें. और तुमको ठीक समझें परंतु सिद्धांत में तो कहां पि नहीं है तो परिग्रह सरीसी जीवरक्षा भी कहणी मिथ्या है. क्योंकि परिग्रह की रक्षा तो मूत्र में कही नहीं. और जीवरक्षा तो ठाम ठाम मूत्र में कही है और फिर हम तुम से पूछते हैं कि एक भाई ने तो कीड़ी पर पग नहीं दिया. और एक जण ने पैसे पर पग नहीं दिया. तो कहो नफा किसको हुवा.

पूर्वपक्ष—नफा तो जीव पै पग नहीं देनेवाले को हुवा परंतु पैसे पर पग नहीं देने वाले को क्या नफा हुवा. क्योंकि जीव पै पग नहीं देणे से तो प्रत्यक्ष करुणा धाई. जिससे करुणा का नफा हुवा. परंतु पैसे पर पग नहीं देने से तो करुणा होवे ही नहीं और मूत्र में भी ( पाखणु, कंपीए ) कहा. परन्तु परिग्गहाणु, कंपीए नहीं कहा. और मेघकुमार को भी पाखणु, कंपीए से संसार पड़त करने का कहा. परन्तु ऐसा कहां भी कथन नहीं कि पैसा आदि पै पग नहीं देने से संसार पड़त कोई ने भी करा.

उत्तरपक्ष-तो फिर हे भाई तुम्हारे गुरुजी का कहना ऐसा था कि जैसे परिग्रह की रक्षा बरमेही जीव की रक्षा यह कहना अनन्य तीर्थंकर केवली साधु माध्वी की श्रद्धा से विपरीत श्रद्धा का हुवा.

पूर्वपक्ष-हमारे गुरुजी ने ऐसा दृष्टान्त देने हे कि जैसे कोई चोर चोरी करता हुवा को साधु उपदेश देने तो धन राखण को नहीं देवे. परंतु चोर को नारण को देवे. तथा कोई कसाई बकरा मारे तो बकरे बचाने को साधु उपदेश नहीं देवे परन्तु कसाई को नारण वाम्ने उपदेश देवे क्योंकि धन बचाने को उपदेश देवे तो धन से संसारी पाप करे तो साधु को उसकी अनुमोदना रूप पाप लगे तथा बकरे बचाने को उपदेश देवे तो बकरा बचे तो अनेक हरी खावे. कच्चा पाणी पावे इत्यादिक बकरा पाप करे तिसकी अनुमोदना रूप पाप बकरे को बचाने वाले को भी आवे. इस वाम्ने जीव बचाने में हमारे गुरुजी पाप कहते हैं.

उत्तरपक्ष हे भाई वास्तव में तुम्हारे गुरु भीषमजी और जीतमलजी ने तुम्हारे ग्रंथों में ऐसा दृष्टान्त बोले लोकों को निर्दय करने को कहा है तथा तुम्हारे गुरु ऐसे चित्राम के पाने तथा कंकरमेल के बालों को भग्माने हैं और एकान्त मिथ्या कहते हैं सो ध्यान देके सुनो कि प्रथम तो यह दृष्टान्त तुम्हारे गुरु ने अपनी श्रद्धा से ही विपरीत लोकों को भ्रमाणे के लिये कहा है. क्योंकि तुम्हारे गुरु ही श्रद्धा तो बनवाने काल में जीव माग्ना हुवा को चोरी करने हुए को उपदेश देने में पाप मानो पनाई काले में पाप कर्म लगना रहते है इसका कथन

हमने ऊपर तुम्हारे गुरुजी की बातों से ही लिया है. क्योंकि  
 जेकर कर्माई को मारने हुए को तारणे में उपदेश देने में भ्रम  
 समझते हो तो श्रावक को तारणे निमित्त उसके पग के नीचे  
 जीव बतावे उसमें पाप क्यों कहा. या चंडा कोणीक राजा का  
 संग्राम भगवान ने पाप जानके नहीं भिटाया ऐसा क्यों कहा.  
 तो निश्चय हुआ कि तुम्हारी श्रद्धा तो बरकरे मानते हुए कर्माई  
 को उपदेश देने की है नहीं तो फिर यह दृष्टांत का देना विश्राम  
 आदि का देवाना फल लोगों को यहकाने के लिये ही दृष्टा  
 तथापि हम इसका उत्तर देते हैं मुनिये कि बरकरे को बचाने  
 का उपदेश तो प्रत्यक्ष परुषा में ही है और कर्माई भी निम्ना  
 है. इसलिये साधु कर्माई को तारणे को और बरकरे को बचाने  
 को उपदेश देते हैं जैसे कि कोई शीलवती स्त्री का कोई दुष्ट  
 पुरुष शील संभन कर रहा है. तो साधु उस शीलवती स्त्री  
 का शील संभने है और दुष्ट पुरुष को भी पास से बचाने है  
 जैसे ही जीवदया में समझ लेंगे और पण्डित को मत्ता में तो  
 परुषा का पारण नहीं तो फिर भ्रष्टवती स्त्री का संभन क्यों  
 करना कि पण्डित की रक्षा करने उपदेश ना देना कि यह  
 भी प्रत्यक्ष दीवना है कि जीव बचाने का उपदेश देवे उन  
 बरकरे को जीवों का ही संभन क्या जाता है कि वे सा. यह  
 और विश्राम नहीं है अनाथ है इनका दुःख उचलता है  
 इनको बचाने का उपाय है यह बरकरे उपदेश देना ना देना है  
 प्रत्यक्ष दीवना का बचाना क्या है. दुष्ट को दुष्ट को बचाने का  
 क्या है. उचलना ना क्या जाता है. या का उचलना उचलना  
 है इन नाने उचलने का दुःख उचलना है. उचलना बचाने का

उत्तरपत्र तो फिर हे भाई तुम्हारे गुरुजी का कथना ऐसा था कि जैसे परिग्रह की रक्षा वैभेदी जीव की रक्षा यह करना अनंत तीर्थंकर केवली साधु माध्वी की श्रद्धा से विपरीत श्रद्धा का दुसा.

पूरुषोत्तम इमां गुरुजी नां ऐसा दर्शन देते हैं कि जैसे कोई चोर चोरी करना हुआ हो साधु उपदेश देवे तो धन चोरण हो नहीं देवे परन्तु चोर को तारण को देवे. तथा कोई कमाई बहुरंग वचि ना बहुरंग बचाने को साधु उपदेश नहीं देवे परन्तु कमाई का तारण चाम्ने उपदेश देवे क्योंकि धन बचाने का उपदेश देना तो धन में संसारी पाप करे तो साधु को उमड़ी अनुमोदना रूप पाप लगे तथा बहुरंग बचाने को उपदेश देवे तो बहुरंग वचि ना धनेक होगी खारे. कया पाली पावे इत्यादि बहुरंग पाप करे तिसकी अनुमोदना रूप पाप बकरे को बचाने वाले को भी धारे इस शम्न जीव बचाने में इमार गुरुजी पाप कहने ई

उत्तरपत्र इ भाई शम्नर म तुम्हारे गुरु भीषमजी और जीवनमठजी म तुम्हारे प्रया म ऐसा दर्शन बोले लोको को निंदर ह न का हक दे नया तुम्हारे गुरु एवं विद्या के पावे तथा इहकाल इ न का हक बचाने ई सोर जहाज सिद्धा काल के म न का हक तुम्हारे क मय न पर श्रानेही तुम्हारे लुन न का हक देवे सोर शम्नर म का धमज के विदे हक म का हक तुम्हारे लुन इ देवे सोर शम्नर म जान में जोर म का हक देवे सोर शम्नर म का श्राने देने में पावे कया बचाने काल म पावे काल शम्नर म कहने ई उमहा काल







उत्तरपत्र—हे भाई यह बात असत्य कही. क्योंकि जीव बचाने का उपदेश देनेवाला तो जीव की कल्याण करने वाला है. परन्तु उस जीव को पाप कराने का कामी नहीं. जैसे कि कोई पुरुष ऊपर से छटक के पड़ता है. और कोई पुरुष ने खेल लिया. पड़ने वाला पुरुष बच गया. वह पुरुष चोरी-आदि पाप करे तो सजा चोरी करने वाला पावे. परन्तु बचाने वाला नहीं पावे. बचाने वाले ने तो अपना धर्मरूप लाभ वास्ते कल्याण करी सो फल ही हुआ. जैसे मेघकुमारजी ने जीवों की कल्याण करी तो उनको तो धर्म का फल ही हुआ. और जीव पाप करेगा तो वह भुक्तगा. परन्तु बचाने वाले को पाप नहीं. तथा जेकर बचाने वाले को पाप लगे तो मेघकुमार हाथी का भव में चार कोश का मंडल बनाया था. तहां अनेक सिंह तियाल मृगादिक जंगल के जीव अग्नि के दूब से बच गए. और जीव जीवते रह गये. तो फिर बचाने का फल तो परमेश्वर ने बताया. परन्तु जो जीव जीवते रहे उत्तका पाप हाथी को लगा होता तो फिर भगवान् पाप क्यों नहीं बता देते. सो तो मूत्र में कहीं भी नहीं कहा. तो निश्चय जानो कि तुम्हारी श्रद्धा शुद्ध नहीं क्योंकि जीव बचाने में पाप नहीं बल्कि दया धर्म है जीव की रक्षा करखी उत्ती का नाम दया मूत्र में कहा है और हमने प्रश्न व्याकरण का पाठ टीका सहित ऊपर लिखा है. तथा फिर भी तुम्हको याददान्ता के लिये लिखते हैं सो याद रखवो दया ११ यह नाउ नाम पहिले संस्कृत के है उनमे का ११ मा नाम है. इमका अंका १ दया देहि ग्भा । दया कहिये देह के धारने बाले देही यानी जीव तिनको ग्वा

करना उसको दया कहते हैं. इति. अब देखो जीवरक्षा करने को ही दया कही तो फिर तुम दया के द्वेषी होके जीवरक्षा में, जीव बचाने में, जीवरक्षा में पाप क्यों कहने हो.

पूर्वपक्ष—तुम तो मिद्धांत के पाठ दिग्घाते हो परन्तु हमारे गुरुजी तो बहुत दृष्टांत देके कहते हैं कि मरती गाय को बचाई अब वह गाय पानी पीने को गई वहां पानी में बहुत कीड़े थे गाय पानी पी गई. या जीव सहित अब खा गई. अब देखो के तो एक गाय मरती. अब गाय को बचाई तो वह गाय जहां तक जीवे तहां तक अनेक जीवों को मारेगी. निमसे उम गाय का पाप गाय बचाने वाले को भी लगे. इसमें जीव बचाने में पड़ा पाप कहते हैं वह हमारी शंका कैसे दूर होवे.

उत्तरपक्ष—भाई तुम्हारे गुरुजी ने जरूर ऐसे दृष्टांत कथन करके और चित्र के पाने में कि जिसमें गाय का आकार जीवों का कुंडे का आकार बना के लोको को बना के ही लोकों को निर्दयी करे हैं परन्तु एकाग्र चित्त रुके. इसका समाधान सुनो कि प्रथम तो गाय बचाने वाले की अपेक्षा करुणा दया करने की है. परन्तु गाय को पाप करने की नहीं. तथापि तुम्हारे गुरुजी जीव बचावे उममें ही बचाने वाले को पाप लगाना बतावे तो उनसे यह पूछना है कि कोटे कमाटे बरुंगे आदि पंचमूत्री जीवों का मार्गनेवाला था उसको तुम्हारे गुरुजी ने उपदेश दिया. जिस में उम कमाटे ने जीवरक्षिमा छोड़ दी और तुम्हारे गुरु का भक्त हो गया. अब के तो पर कमाटे जाव मारके नरक में जाता और अब तुम्हारे गुरुजी ने जिम का त्याग उसको कराने से वह कमाटे. तुम्हारे श्रद्धा ५ १५

बड़ा अद्वितीय देव हुआ अनेक हजारों कल्प पानी बोल के  
 अभिषेक स्नान किया हजारों देवांगना से भोग विलास किया।  
 अनेक पत्नीपम मागरोपम लगे, यानी असंख्य वर्षों तक देव-  
 लोक में क्रीड़ा विनोद हास्य आनंद जल क्रीड़ादिक करके  
 अनेक ब्रम स्थावर जीव को वेदना उपजाये पाप करे तो देवता  
 का पाप तुम्हारे गुरुजी को लगे कि देवता पाप करे उसको लगे  
 जेकर कही कि गुरुजी को लगे तब तो इस पंचम काल के  
 जन्मे आराधिक साथ तो सर्व देवलोक में ही जाते हैं या आ-  
 राधिक धावर तो देवलोक में ही जाते हैं तो फिर जो कोई  
 उपदेश देके साथ धावर को करे तो फिर वह उपदेश देने बा-  
 ले महापाप कर्मा टटरे, क्योंकि इस मनुष्य लोक का थोड़े काल  
 का काम भोग जोड़ाया, और तुम्हारी श्रद्धापूर्वक अनेक अस्त-  
 रूप वर्षों के देवलोक के काम भोग में दाखिल करने से तुम्हारी  
 श्रद्धानुसार उपदेश देनेवाले जो तुम्हारे गुरु हैं वह सर्व महा-  
 पाप करके दृष नावेंगे।

पूर्वज्ञ-हमारे गुरुजी तो उपदेश देवे तो तारणे के बाले  
 देवे परन्तु देवलोक के आदर में तारणे बाले नहीं देवे, इनमें  
 हमारे गुरुजी का अभिषेक पानी मन देवलोक में बेलने का है  
 नहीं तो उनको पाप करने लगे, जिनमें हमारे गुरुजी को  
 हमारे का धर्म है परन्तु देवलोक का पाप हमारे गुरुजी को नहीं,  
 उपदेश देने हैं। यह उद्योग नहीं करना है कि जिन  
 देवों का मन देवलोक धर्म का नहीं परन्तु हमारे का  
 धर्म है तब तब का धर्म ही है तब तब का धर्म ही है तब तब का  
 धर्म ही है तब तब का धर्म ही है तब तब का धर्म ही है तब तब का



उत्तरपक्ष—वैसेही जीव बचाने में धर्म है इस वास्ते अवश्य जीव को बचाना चाहिये जिससे श्रावक भी उपदेश देते हैं अनेक राजसभा में प्रत्यक्ष दृष्टांत से प्रतिबोध करते हैं जैसे जितशत्रु राजा को सुबुद्धि प्रधान ने खाई के पानी का दृष्टांत देके प्रतिबोधित किया. मूत्र ज्ञाताजी का १२ मा अध्ययन में कहा है. वैसेही अनेक उपाय से जीवों को भी बचावे और साधुजी उपदेश देते हैं परन्तु जैसे सुबुद्धि प्रधान ने जल का प्रत्यक्ष दृष्टांत दिखलाया वैसे नहीं दिखा सकते हैं परन्तु योग भूमि में उपदेश अवसर देख करके देते हैं वैसेही जहां योग देखते हैं वहां साधु जीव भी बचाने का उपाय अवश्य करते हैं.

पूर्वपक्ष—ऐसे जीव बचाने में धर्म होवे तो सकेन्द्रीजी महाराज बड़े सामर्थ्य हैं जो धारे तो सर्व मनुष्य लोक के जीवों को कसाई प्रमुख से हर उपाय से बचा सकते हैं तो फिर वह ऐसा धर्म का काम क्यों नहीं करे.

उत्तरपक्ष—हे भाई जीव का बचाना तो धर्म का काम है परन्तु सकेन्द्रीजी तुम्हारे सरीसे तुच्छ बुद्धिमान् नहीं है. किन्तु तीन ज्ञान करके सहित है सो लोक की स्थिति होनहार जैसा जानते हैं वैसे करते हैं. परन्तु खैर जीवदया से तो तुम्हारा द्वेष है. परन्तु तुम लोग तरेपंथी का धर्म बढ़ाने में श्रावक करने में धर्म मानते हो कि नहीं.

पूर्वपक्ष—हां हम बड़ा उपकार धर्म मानते हैं कि जो कोई तरेपंथी हो जावे तो हम उमकी अच्छी तरह से दलाली करते हैं.

उत्तरपक्ष—तो हे भाई तुम्हारी श्रद्धा के अनुसार तो तरेपंथी





उत्तरपक्ष—हे भाई बहुत से महापुरुषों ने किया है. जिनका अधिकार सिद्धांतों में साफ गुत्याना लिखा है. जिनका वर्णन श्री नेमीनाथजी के पशु के छोड़ने का हमने ऊपर सिद्धांत टीका सहित लिखा है. तथा एक और भी वहाँ हम गुत्याना साक्षी लिखते हैं कि मूत्र उपासक दशा का अव्ययन १० मा में श्रेणिक राजा ने पड़ाहा बनाया. यानी इंडी पिटाई कि कोई जीव को मारो मत वह पाउ लिखते हैं एक चित्त में धरख करो.

मूत्र—तेणं, रायग्निहे, खयरे, अयसा, कयाइ अनादाए, पृष्टेयावि, होत्था. इति ॥

अर्थार्थः—निवार राजगुही नगर ने बिषे एक दार स्तारने बिषे एहो अमार वर्तायो श्रेणिक राजा कोई जीवने बिना सो मती ऐसो दूत दारे कहावे. इति मूत्रार्थः.

अस्य टीका अनादातो रुद्र शब्दत्वात् अनागिरित्त्वर्थः ॥

टीकाार्थः—अनादात रुद्र शब्द है तिनने इनका अर्थ जीव को मत मारो ऐसी अनागी बर्ताई ॥

कोई जीव मत मारो ऐसा दूत दारा कहावे. देखो भाई यह मन्वध मूत्र का पाउ है कि राजा श्रेणिक ने जीव नहीं मारने का दंडेरा किगया बरोकि राजा श्रेणिक मन्वहाष्टि श्री राम भगवान का राम भक्त था सो दया उसे को अंगर के नई दार के परांगुस्तारि जीव का मारना उपासक मन्वहाष्टि अनादात नाम जीव बर्ता का उपासके रूप दार का है. सो राजा ने दंडेरा ऐसा क दया जब दंडेरा अनादात नाम का जीव दंडेरा का मन्वध दार है.

पूर्वपक्ष—अमारी नाम मरते जीव को छोड़ने का कहा है।

उत्तरपक्ष—प्रथम तो यहां ही सूत्र अर्थ टीका में कहा है कि राजा ने मरते जीव को अमारी कराई, यानी जीव को मर मारो ऐसा ढंडेरा पिटाया, तथा फिर सूत्र प्रश्न व्याकरण के पहिला संमग्द्वार में भी कहा है, सो हमने ऊपर तो लिखा है परन्तु यहां फिर लिखते हैं ( अमायाद्यो ) ५४ अर्थार्थः ( अमारी राग्ववा नेमीनाथ नी परं, देखो यहां भी कहा कि नेमीनाथ की परं अमारी बनावे, यानी मरते जीव को छोड़वे उसका नाम अमारी है, ए दोनों मूत्रों का एकसा पाठ है और अर्थ का आशय भी एकसा ही है क्योंकि जैसे नेमीनाथजी ने जीव छोड़ाये वैसे ही श्रेणिक ने ढंडेरा फेरा के जीवों को बचाये तो हे भाई तुम जीव बचाने में द्वेष क्यों कर नहीं छोड़ते हो।

पूर्वपक्ष—हमारे गुरुजी तो कहने हैं कि ढंडेरा पिटाया तिसमें भगवान् ने धर्म नहीं कहा, सगाया भी नहीं, इससे यह तो कोई राजनीति का काम है, निमकी हमारे गुरुजी भीषमजी ने अनुकंपा की ढाल पंचमी गाथा।

( सेणिक राय पढ़हां । फेरियोये तो जाणो हो मोटाराजां री रीत, भगवंत न सरायो तेहने तो किम आवे तिखरी प्रतीत, भ. ३७ पढ़हो फेरयो हणो मनी, इनरी छवो मूत्र में बात, कोई धर्म कहे सेणक तखो, तेतो बोले हो चोडे झुंठ मिथ्यात्, भ. ३८ ॥ ) इत्यादिक कह के यह बात हमारे गले उतारते हैं कि श्रेणिक ने जीव छोड़ाया सो धर्म में नहीं।

उत्तरपक्ष—तुम कहते हो जैसे ही तुम्हारे गुरुजी कहते हैं। सिद्धांत के वचनों को ठेप लगा के बोलते हैं सो एकांत विरुद्ध है। क्योंकि प्रश्न व्याकरण के पहिले संमरद्वार में कहा कि— ( अमाघात्रो ) अमरी राखवा नेमिनाथ नी परे. ऐसा लेख प्रश्न व्याकरण में है. और वहां प्रश्न व्याकरण में भी इस कार्य का फल भी चतुर्गति संसार तिरणे का कहा है. और जैसे ही राजा श्रेणिक ने भी ( अमाघाए, घुट्टेयावि, होत्था, ) ऐसा कहा है. अब देखो प्रश्न व्याकरण में ( अमाघात्रो ) यानी अमरी वर्ताने से चतुर्गति संसार का तिरणा कहा और उसी प्रमाणे राजा श्रेणिक ने अमरी का ढंढेरा पिटाया. तो फिर तुम्हारे गुरुजी का कहना असत्य है कि नहीं. जो कहते हैं कि श्रेणिक को धर्म नहीं हुवा. हे भाई गुरुजी का कथन तो देखो कि प्रश्न व्याकरण का ( अमाघात्रो ) पाठ और उपासक दशा का ( अमाघा ) पाठ दोनों सरीसे हैं. और दोनों का अर्थ भी सरीसा है कि जैसे नेमिनाथजी ने जीव बचाये. जैसे ही श्रेणिक ने जीव बचाये. तो फिर तुम्हारे गुरुजी प्रश्न व्याकरण का पाठ तो निरवद्य दया में कहते हैं. और श्रेणिक का ( अमाघा ) पाठ को सावद्य दया में कैसे कहते हैं.

पूर्वपक्ष—हमारे गुरुजी रेणा देवी की अनुकंपा की साक्षी देते हैं.

उत्तरपक्ष—हे भाई रेणा देवी का कथन में भी अनुकंपा का पाठ नहीं. वहां तो ( समुपन, कलुण, भावे ) ऐसा पाठ है सो मोह विकार का है. सो हम पहिले कह चुके हैं परन्तु हम तो अनुकंपा की या कोलुण बडिया की साक्षी का पाठ नहीं पृछते

हैं हमतो ( अमाघा ओ ) ऐसा पाठ कोई मोहराग में या सांसारिक वस्तु का कथन में किसी मूत्र में आया होवे तो बतावो. याद रखो किसी मूत्र में कोई जगह ऐसा पाठ नहीं है. फल परमेश्वर की आत्मा दया का प्रयोजन रूप काम है. वहां ही ( अमाघा ओ ) शब्द आया है. और उसी माफिक कार्य को राजा श्रेणिक ने किया है. तो जानो कि भगवंत ने तो सराया ही है. अमाघा ओ कार्य अमारी करण की तीर्थकर की आत्मा है. और बांही राजा श्रेणिक ने कगी है तो अमरी का कार्य तीर्थकर की आत्मा में है तो राजा को लाभ हुआ. यह मूत्र से ही खुलासा है तो तुम्हारे गुरुजी का दया प द्वेष का कथन सत्य नहीं. किन्तु मूत्र का प्रमाण सत्य है. हम ऐमेही मानते हैं तुम्हारी आत्मा का कल्याण चाहो तो तुम भी ऐसा ही कार्य करो जिससे संसार से तिगे.

पूर्वपक्ष-जेकर धर्म का कार्य था तो श्री भगवान् ने ऐसा क्यों नहीं कहा कि श्रेणिक नेने भन्ना काम किया. या गणधर्मो ने मूत्र में क्यों नहीं खोल दिया. कि श्रेणिक का जावाडिसा का रोकना धर्म में है.

उत्तरपक्ष-हे भाई मूत्र में तो ( अमाघाओ ) शब्द कहा. जहां से ही दया का अर्थ धर्म में हो ही चुका. परन्तु दया की श्रद्धा ऊठाने में तुमको मान्य नहीं पड़ता है. जैसे कि अमृत कहा तो मीठा हो ही चुका जैसे ही ( अमाघाओ ) कहा तो धर्म में होही चुका और मूत्र में कडे जगह क्रिया और फल दोनों का वर्णन होता है. और किमी जगह क्रिया का ही वर्णन होता है. परन्तु नैसी क्रिया वैसा फल ममअ लेना सो ही हम दिखाने





हैं कि इसी राजा श्रेणिक ने सूत्र दशा धृतस्कंध के अध्ययन नवमे में ऐसा ढंढेरा पिटाया कि जिसकोही के राजगृह नगर में फामुक मकान ( उपासरा ) पाट पाटला, या डाभादिक के संधारे जो मुनि के कलयनीय होवे उसकी जो भगवान् महावीर स्वामी जो पधारे तो उनको आज़ा दी जो ऐसा राजा श्रेणिक तुमको जनाता है आज़ा देता है इत्यादिक बहुत विस्तार से सूत्र में कथन है कि जो राजा श्रेणिक ने ढंढेरा पिटाया, परन्तु वहां सूत्र में तो ऐसा कथन नहीं आया कि राजा ने शय्या संधारा मुनि को दिलाने की दलाली करी, तिसका अमुक फल हुवा.

पूर्वपक्ष—यह तो प्रकट है कि मुनि को १४ प्रकार का दान देवो, दिवावो, देते हुए को भला जाणो तो महालाभ होता है, यहां सूत्र में नहीं कहा, तो क्या परन्तु अन्य सूत्र में बहुत ठिकाने कहा है.

उत्तरपक्ष—हे भाई वैसे ही समझ लेवो कि राजा ने अमारी का जीव बचाने का ढंढेरा फिराया उसका भी प्रत्यक्ष लाभ है कि जीव दया पालो, पलावो, पालते हुए को भला जाणो तमें महा लाभ है, तो यहां उपासक दशा में नहीं खुला तो ता, परन्तु प्रश्न व्याकरणादिक बहुत से सिद्धांतों में वर्णन हो हमने पहिले खुलासा लिखा है.

पूर्वपक्ष—हमारे गुरुजी कहने हैं कि श्रेणिक ने जीव बचाया तो राजा की रीत है, कोई राजा के पुत्रादिक का जन्म चाहादिक कारण से यह कार्य किया है, परन्तु धर्म में तिस विषय में इनी पंचमी शाल में ऐसी गाथा है.

( एतो पुत्रादिक जाया पराशिया, उत्सवादिक होवणरी सीतला जाण, एहवे कारण कोई ऊपने श्रेणिक राजा हो फेरी नगर में आण. भ. ४० ॥ ते तो रुकिया नहीं क्रम आवतां नहि कटि हो तिणरा आगला कर्म, वले नरक जातो रयो नहीं, न सिखायो हो भगवंत यह धर्म. भ. ॥ ४१ ॥ )

इत्यादिक कथन हमारे गुरुजी श्रेणिक के जीव छोड़ाने के विषय का कहते हैं.

उत्तरपक्ष—हे भाई देखो २ तुम्हारे गुरुजी ने कैसा अंधा-धुंध कथन जीव दया से देपी होके करा है जिसका पार नहीं. कहो भाई तुम्हारे गुरुजी का कहना यह है कि कोई पुत्रादिक का जन्मोत्सव में या विवाहोत्सव में जीव छोड़ाये. यह किस सिद्धांत में है. देखो पुत्र जन्म महोत्सव का विवाह का अधिकार राजा श्रेणिक का पुत्र मेशकुमार का मूत्र ज्ञानाजी का पहिला अध्ययन में बहुत विस्तार पूर्वक संपूर्ण जन्ममहोत्सव विवाह महोत्सव का वर्णन चला है. तो वहां जीव छोड़ाने का कथन क्यों नहीं चला. या और भी मूत्र भगवतीजी में महाबल कुमार का अधिकार. और अंतगढ़ दशांगजी में अनेक राजकुमार के जन्म विवाहादि महोत्सव अधिकार चले जहां जीव नहीं इनने का डंडेरा फेराने का अधिकार क्यों नहीं चला. तो फिर निश्चय हुआ कि तुम्हारे गुरु भीषमजी ने फक्त जीव बचाने से दृष्टांतुर हो के. जो कदा भी कथन नहीं था. उसकी असत्य दाले जोड़ने नहीं हरे. हा ! हा ! हा ! मिथ्यात्व का आश्रय है. और गजनीति में जीव छोड़ाये यह भी कहना. स्तकरोल कल्पित है. क्योंकि गजनीति होना न





उसका फल नरक नहीं जाने का क्यों नहीं हुआ. नरक में कैसे गये.

पूर्वपक्ष-धर्म के फल से तो तीर्थंकर गौतम बांध्या अवतार काल में मोक्ष जावेगा. परन्तु नारकी का तो पैलानीकाचिंद्र बंध पड़ गया उससे गये.

उत्तरपक्ष-हे भाई अब निरपेक्षपणे से तोलो कि राजा श्रेणिक ने जीवदया का भी हंडेरा फिराया था. और साधु को शय्या उपामग देने का भी हंडेरा फेराया था. तो वह तो दोनों काम धर्म के हैं तो फिर तुन्हागे गुरुजी ने ऐसी मिथ्या जोड़े क्यों करी कि जीव बचाने से राजा की नारकी बंध नहीं हुई. तिससे राजा का जीव बचाना धर्म में नहीं. किन्तु पाप में है क्या उनको मान्य नहीं था कि राजा श्रेणिक नरक में गये. इससे राजा श्रेणिक का जीव बचाना पाप में कथन करता हूँ परन्तु कोई मेरे से पूछेगा कि राजा श्रेणिक ने भगवान् की भक्ति करी वो भी क्या पाप में है. क्योंकि राजा श्रेणिक नरक में गये इससे.

पूर्वपक्ष नहीं श्रेणिक राजा ने भगवान् की भक्ति करी वो पाप में कभी नहीं. बंदना नमस्कारादि भगवान् की भक्ति करने में तो धर्म ही है. और नरक का तो निश्चय बंध पड़ गया था. उसमें गये. परन्तु भक्ति आदि का फल तो आगामी काल में अच्छा ही होवेगा.

उत्तरपक्ष तो हे भाई भीषमजी को यह क्याल क्यों नहीं आया. जो जीव दया से बड़ा उदाने वास्ते पैसा लिये दिया कि श्रेणिक राजा नरक में गये तिससे राजा का जीव छोड़ने

में धर्म नहीं, किन्तु पाप है ज्ञान नेत्र खोल के ऐसा भीषमजी ने क्यों नहीं किया, कि जीव बचाने का अच्छा ही है, परन्तु नारकी तो पहिला बंध पड़ जाने हैं, सो भीषमजी का जीवदया पर अल्पना द्वेष था, कि जीव बचाने में पाप बनाना तो द्वेष करने का काम नहीं, राजा श्रेणिक का डंडेरा जीव बचाने का तीन जने को नहीं लगता है, एक तो भांसाहारी, दूसरा कसाई, तीसरा जिसकी श्रद्धा जीव बचाने से उठ जावे इन तीन जने को इस काम में पाप दीखता है, बाकी तो सब बुद्धिमान् इस का को धर्म में समझते हैं।

पूर्वपक्ष—जेकर ऐसे जीव बचाने के डंडेरे फेरने में धर्म होता तो जैनधर्मी तो अनेक राजा हुये हैं तो उन सब ने ऐसा डंडेरा क्यों न.ग किया।

उत्तरपक्ष—हे भाई और ने नहीं फिराया ऐसा कथन नूत्र तो है ही नहीं, परन्तु वहां वर्णन एक श्रेणिक राजा का ही चला है, तो जिसका मतलब आवे उसका कथन चले, परन्तु नूत्र में तो नहीं कहा कि राजा श्रेणिक के सिवाय अन्य कोई राजा ने जीवदया का डंडेरा नहीं फेराया।

पूर्वपक्ष—हमको तो दूसरे राजा ने डंडेरा नहीं फेराया इससे उस काम में सन्देह है कि धर्म का काम का कथन शास्त्र में क्यों नहीं चला।

उत्तरपक्ष—हे भाई नूत्र ज्ञानाजी के ५ मा अव्ययन में श्री-कृष्ण महागज ने धावरापुत्र के दीजा के अदगर पर दीजा की टलाली करी कि दीजा लेवे उनको भेरी आज्ञा है, पिछले

कुटुंब की सार संभार में करुंगा ऐसा ढंडेरा फिराया. तिसमें एक सहस्र पुरुषों ने दीक्षा ली. तो कशे भाई दीक्षा की दलाली श्रीकृष्ण महाराज ने करी. ढंडेरा फिराया. तो फिर अन्य राजा तो बहुत से जैन धर्मी हुए उनका ढंडेरा फेराने का कथन क्यों न चला. तथा उमी राजा श्रेणिक का कथन दशा भुक्त-स्कंध के नयमें अध्ययन में चला कि महावीर जी के साधु कां गय्या संथागतिक देने का ढंडेरा फेरया. तो अन्य राजा भी बहुत से जैनी थे उनका कथन नहीं चला तो कशे भाई दीक्षा की दलाली में या गय्या संथागतिक दान की दलाली में धर्म है कि नहीं.

प्रवेपत्त उन कामों में तो धर्म है. अन्य राजा का अधिकार का कथन नहीं चला तो क्या परन्तु यह तो मत्स्य लाभ का कार्य है. कि दीक्षा दिलाना गय्या संथागतिक दान का दिलाना.

उत्तम्पत्त है भाइ क्या तरह में विचार लेंगे कि जीवदया का भी मृत में या जीव कट करा है. परन्तु कथन तो कोई का चले जिसका मतलब जानें. इममें जानों कि अन्य राजाओं का जीवन देने में या जीव नहीं चला. तो क्या परन्तु राजा श्रेणिक का ज्ञान नरक का भागें ढंडेरा फेराने का भी धर्म का कार्य है. निमन राजा का भी धर्म हुआ ॥ इति ॥

तजो कुरा नरक पुण्य ॥

अइ इमने सिद्धान्त न मत्स्यसु दीक्षा अर्थ में जीव के कथने में सब सिद्ध किया है. अइ ऐसा स्पष्ट पाठ मत्स्य-स्कंध में पाठित मनस्वान्त में है कि या मगरान सिद्धान्त भी

सब जगत् के जंतु की रक्षा के लिये फरमाये हैं या और भ  
 मेयकुमार ने नेमीनाथजी ने राजा श्रेणिक ने इत्यादिक करुणा  
 वान पुरुषों ने जीव बचाये ऐसा मूल मूर्तों का पाठ अर्थ टीका  
 सहित दिखाया है उत्तको मध्यस्थता ग्रहण करके तुम लोक  
 समजु होवो तो समज लेवो कि जीव का जीवन वंछे विदून्  
 जीव दया पल ही नहीं सकती है, और जीव बचाने में धर्म  
 स्पष्ट रीति से सिद्धांतों से सिद्ध है और हमने ऊपर लिख  
 दिया है, तो अब तुन्हारा लिखना मश्रोत्तर के १२ मा पृष्ठ में  
 है कि जो साधू श्रावक ब्रह्म जीव का जीवना वंछते हैं और  
 अनुमोदते हैं उन दोनों के विषय में श्री भगवान् ने चौमासिक  
 प्रायश्चित्त आना कहा है यह तुन्हारा लिखना तो एकांत मि-  
 थ्या है, क्योंकि प्रथम तो ब्रह्म जीव का जीवना वंछने का  
 प्रायश्चित्त किसी मूत्र में है ही नहीं, और तुमने जीवना वंछने  
 का चौमासिक प्रायश्चित्त लिख दिया तो मिथ्या है और नसीय  
 की साक्षी देते हो वह भी मिथ्या है, जिसका खुलासा हमने  
 पहिले अच्छी तरह से किया है क्योंकि नसीय का १२ मा  
 उद्देश में तो दयावर्णी वृत्ति करके साधू कोई ब्रह्म जीव पशु  
 आदिक को खोले तो चौमासिक प्रायश्चित्त आवे तो साधू को  
 पशु, परन्तु श्रावक का तो नाम भी नहीं और तुमने श्रावक  
 को भी चौमासिक प्रायश्चित्त आना लिखा, तो फिर तुम तेरे-  
 लते हो बांधते हो तो फिर प्रतिदिन चौमासिक प्रायश्चित्त  
 काम करके तुम चतुष्पदों को खोलने बांधने वाले सर्व  
 क तुन्हारी गुरु की श्रद्धा के लेख से तुम सर्व श्रावकपना

रहित और जिन आज्ञा बाहिर ठहरे हा ! हा ! हा ! मूत्र में नहीं लिखा उसको भी मूत्र के नाम ले के लिखते नहीं हरे. इतना भी नहीं समझते हैं कि काई मूत्र का लेख पूछेगा तिस-वक्त क्या उत्तर देंगे. तथा तुम्हारा लिखना है कि मूत्र आचारांग के पंचमे अध्ययन के छठे उद्देश में श्री भगवान ने ऐसा कहा कि आज्ञा के बाहिर उद्यम, और आज्ञा में भातिस यह दोय बात मत होयो. शिष्य से गुरु का यह कथन है. तिसका उत्तर. यह तुमने व्यर्थ काला पत्र किया. क्योंकि जीव बचाने की परमेश्वर की आज्ञा है. सो हमने सिद्धांत से गिद्ध कही है तो फिर यह गाली बतलानी निरर्थक है. यहां ऐसा लेख नहीं है कि हे शिष्य तू जीव बचाने का उद्यम मत कर. जीव बचाने की ठाम ठाम परमेश्वर की आज्ञा है. ( रक्खा ) ऐसा मूत्र प्रश्न व्याकरण का पाठ है. रक्खा नाम रक्षा करने का है. सो भगवान की आज्ञा है. तथा तुम्हारा लिखना है कि मूत्र आचारांग के दूसरे अध्ययन के दूसरे उद्देश में कहा कि श्री वीनगंग की आज्ञा के बाहिर धर्म वृत्त करे वह तप संयम से भ्रष्ट है.

( इसका प्रत्युत्तर ) यह भी लिखना व्यर्थ है ॥ क्योंकि यहां भी ऐसा नहीं कहा कि जीव रक्षा करने वाला भ्रष्ट है जीवरक्षा की तो परमेश्वर की आज्ञा है. नाहक इतने लोहों को देवाने बाम्ने शास्य रूप लख लिखा. ३ तथा तुम्हारा लेख है कि मूत्र उवाड़े के २० में मन्त्र में कहा है कि श्रावक को केवली प्रहारे धर्म दिना अन्य धर्म नहीं मानना चाटिये. ( इसका प्रत्युत्तर ) यह भी तुम्हारा लिखना हमारे मन्त्र विषय में

निरर्थक है. क्योंकि यहां भी ऐसा नहीं कहा कि श्रावक को जीव वचाने का धर्म नहीं मानना. जीव वचाने का तो श्रीमुख से कहा है. कि मैंने सिद्धांत सर्व जीव की रक्षा वास्ते रचे हैं. सो पाठ दिखाते हैं सुनिये.

मूत्र-सव्य. जग, ज्जीव, रक्खण, ठ्याए, पावयणं, भगव-या, मुक्काहियं, -इति.

तो फिर जीवरक्षा तो करणे का ही भगवान् का उपदेश है. हां अलवत्ता इस उवाई का बीतमां प्रश्न में श्री भगवान् ने श्रावक को ( धन्मीया, मुसीला, सुव्यया, सुपाड़िया, खंदा, ससुहिति, ) इत्यादिक पाठ से श्रावक को श्री भगवान् ने धर्मो मुसीली कहे हैं. परन्तु तुम्हारे गुरुजी तुम तेरेपंथी श्रावकों को कुपात्र और नहर के डुकड़े समान कहते हैं. सो गुरुजी से समझ लेंवो. कुपात्र पथे के कलंक से दूर होयो ॥ ४ ॥ तथा तुम्हारा लिखना है कि मूत्र आचारांग के दूतरे अध्ययन में श्री भगवान् ने कहा कि साधू की आज्ञा के बाहिर धर्म श्रद्धे उसको काम भोग में लुता कहना चाहिये. और हिंसा करने वाला कहना चाहिये ( इतका प्रत्युत्तर ) यह भी साची लिखनी सींग के डिकाने पूंछ बतानी रूप है. क्योंकि जीवरक्षा का प्रश्न में ऐसा उत्तर देना अनुचित है. जीव वचाने की तो श्री परमेश्वर की भी आज्ञा है. तो फिर साधू की क्यों नहीं अपितु नि-श्चय ही है ( ५. ) तथा तुमने लिखा कि मूत्र उत्तगध्ययन का २८मा अध्ययन की ३१ वीं गाथा में कहा है कि समाहिति को चाहिये कि केवली के प्रत्ये धर्म विना अन्य धर्म नहीं माने ( इमका प्रत्युत्तर ) यह भी लिखना तुम्हारा है तो ठीक परन्तु

तुम्हारी आस्था उल्टी है कि जीव को बचाने की केवली की आज्ञा नहीं, क्योंकि मृत्यु प्रशक्तव्याकरण का पठित्य संग्रहकार का १४ वा नाम ( समजागहणा ) कहा है, यानी दया है, सोही समाहित की आज्ञा है, तो फिर जीव बचाने का प्रथम यह उचर देना विवर्तित है, जीवदया तो केवली का परम धर्म है, परन्तु इस उचर/अध्वयन मृत्यु की ३१ वीं गाथा से तुम्हारी श्रद्धा ही उल्टी है सो हम ३१ वीं गाथा मूल अर्थदीक्षा सखि लिखते हैं सो ध्यान लगा के सुनो,

मृत्यु निमंक्रिय, निष्कंपिय, निविरतिगिच्छा, अमृद, दि-  
द्वीय, उरवृह, धिगीरुग्णे, वच्छल्ल, पभारणे, अट्ट ॥ ३१ ॥

अर्थात्: तन्व नी संका न आणे ? अनेरो धर्म न वांछे  
२ फल प्रति संदेह न आणे ३ पिच्छान्धी ना धर्म नी मारिषा  
देवीनि वांछा न करे, ४ धर्मवत ना गुण करे, ५ धर्म थकी  
सीदना ने मान देहे निच्छल करे, ६ साशदिक जनने भक्त  
पानादि के कभी उचित भक्त नो करवुं ने वान्मन्य कदिये ७  
प्रभावना पोताने नीचनेष्टा ने रिषे प्रवतारूप प्रभावना करे ८  
इति सूत्रार्थः

देवो यदां तो मास्मी की भक्ति भ्रष्टादिक करके करे तो  
समाहित का आचार कया थीं तुम्हारे गुरुजी कहते हैं कि  
धर्म निमित्त आरक का पाप हान का महान कांठे आरक देवे  
तो उसका वेदना का दया नार पाप हान राज्य को देवो,  
प्रेमा करन है ना यह उचर/अध्वयन मृत्यु का २८ वा अध्वयन  
को ३१ वीं गाथा से तुम्हारा श्रद्धा इतिहस यानी साहित होनी  
है परन्तु पिच्छ वरा वरा इस गाथा का संका व नी वच्छलान  
से मास्मी का भक्ति करणा समाहित का आचार है ॥



तथा च दीक्षा ॥ पुनर्वात्सल्यं साधर्मिक्यां भक्तानां वै  
 भक्तिकरणं पुनः प्रभावना च स्वतीर्थोद्गति करणं एव अर्थो  
 आचाराः सम्यक्तस्य ज्ञेयाः इति ॥

टीकार्थः—समान धर्म वाले की अथवा पानी उनके भक्ति  
 करणी उनको वात्सल्य करने हैं फिर अपने तीर्थ की उद्गति  
 करणी उनको प्रभावना करते हैं यह अष्ट आचार सम्यक्त  
 का जानना.

अब देखो अष्ट पान उनके साधर्मो यानो सर्गीला धर्मवान्  
 साधु साधु की अथवा पानी उनके वात्सल्यता करे. और धारक  
 धारक की अथवा पानी उनके वात्सल्यता करणे में सम्यक्त का  
 आधार है. और तुम्हारे गुरुजी तो धारक धारक को समोदरो  
 पूजणी भुषणि आदि देने में भी पाव करते हैं ११ की पहिना-  
 पानी धारक को भी प्रस्तुत आहार देवे उनके पाव करते हैं  
 सो इन सूत्र का लेख में तुम्हारी प्रथा सिद्ध है. ( ६ ) तथा  
 तुम्हारा लेख है कि सूत्र गुरुगणों के पहिना अभ्यसन के  
 इनके उद्देश की १३ की भाषा में कहा है कि केवलों की प्रक-  
 रणा बिना अपने आप प्रकृष्टता को विनोके विविध साधु भी  
 जासु पदा नी. ( इनका प्रस्तुत ) केवली भगवान् की तो  
 और तथा श्री हो प्रकृष्टता हास सब सूत्रों है समुत्तुन करने  
 बन के बने प्रकृष्टता हो कि और बराने में पाव है तो इनके  
 सिद्ध हुआ कि अपने लेख में अपनी प्रकृष्टता गति बने  
 ( ७ ) तथा कि तुम्हारा प्रकृष्टता है कि जो भगवान् ने कहा  
 कि . अस्तुत्तुन प्रकृष्टता प्रकृष्टता केनी आसु है  
 केनी सब सब इहो पदा . इनका प्रकृष्टता . या ही लेख

तुम्हारी समझ में विपरीत है. क्योंकि श्री भगवान् ने तो जीव-  
 दया जीव-रक्षा की आज्ञा ठाम ठाम मूत्र में दी है. तो फिर प्रभु  
 पूछा तो जीव बचाने का. और उत्तर आज्ञा में धर्म का दिया.  
 तो हम तुमको प्रत्युत्तर में कहते हैं कि परमेश्वर की जीव बचाने  
 की मूत्र में ठाम ठाम आज्ञा है सो आत्मा का हित चारों तों  
 पक्ष छोड़के हमने ऊपर मूत्र की साची बताई सो मध्यस्थता से  
 ताल के सत्यमार्ग की आस्ता लावो. वस हमारा प्रभु यह था  
 कि गायों को लाय से बाहिर काढ़ने में तुम पाप बताते हो सो  
 मूत्र का पाठ दिग्याभो. तिसका उत्तर में तुमने ऊटपटांग मूत्र  
 का नाम ले के साक्षी लिखी वह एक भी इस प्रभु के उत्तर  
 विषय में सत्य नहीं तिसका हमने प्रत्युत्तर में मूलपाठ अर्ध  
 दीक्षा सहित विस्तार से लिखी है सो बुद्धिमान् होरो तो बुद्धि-  
 बल से अच्छी तरह से विचार करके सत्यपथ की पारणा  
 करणी चाहिये. इति प्रत्युत्तर दीपिकायां पंचम प्रभु का उत्तर  
 का प्रत्युत्तर संपूर्णम् ॥

( प्रभु ६ )

असंयती पोषणिया पन्द्रहवा कर्मदान करने हो सो और  
 मित्रलात हो सो पाठ दिग्याभो.

उत्तर तेराशियों का-मूत्र में पाठ ( अमई नश है ) और  
 इसका अर्थ असतीजन है. और असतीजन का भारार्थ अमं-  
 यती है. और असंयती को पोषने में श्री भगवान् ने एकान्त  
 पाठ बताया है तिसका लिये पाठ ऊपर लिख आये है.

इसका प्रत्युत्तर इत्या भाई यह तुम जानने हो कि मूत्र  
 में ( अमई, नश, कामनशा. पाठ है ना फिर तुम्हारे मुक ने

असंजती पोसणया. एक जकार और सकार के अनुस्वार अधिक क्यों किया क्या तुम नहीं जानते कि जो कोई जाल के एक मात्र यानी इस्व दीर्घ भी लिखे तो परमेश्वर के वचनों का उत्पापक है. तो फिर तुम जानते हो कि सूत्र में असंजण पाठ है तो फिर असंजती क्यों किया. यानी एक तो सकार कोरा था जिसपर अनुस्वार तुमने लगाया और दूसरा जकार ज्यादा लगाया तो यह प्रत्यक्ष परमेश्वर की आज्ञा का भंग किया. और मिथ्यात्व का उपादान किया. क्योंकि वीतराग के वचनों से न्यून प्रत्ये तो भी मिथ्यात्व. और अधिक प्रत्ये तो भी मिथ्यात्व. तथा आवश्यक सूत्र में भी १४ ज्ञान का अतिचार कहा. वहां भी ऐसा पाठ है कि ( हीलुक्त्वरं ) ( अचवत्वरं ) हीन अक्षर वाले अधिक अक्षर वाले तो ज्ञान में अतिचार लागे. जेकर अजापपले अधिक न्यून अक्षर वाले तो अतिचार लागे तो फिर ज्ञान के सूत्र से अधिक अक्षर मतपक्ष के लिये बोले वह तो ज्ञान के विराधिक ही है. और जाप के मतपक्ष के लिये अधिक अक्षर सूत्र के पाठ में वाले वह तो संसार वृद्धि के करने वाले हैं. समकित और ज्ञान दोनों से रहित है और समकित के बिना साधूपत्या श्रावकपणा होताही नहीं. तो फिर जो लोग ( असंजण ) का पाठ को लोप के असंजती का पाठ पढ़ते हैं पढ़ाते हैं. और फिर इसी को पुष्टि करते हैं उनका क्या होगा. हे भाई तुम जाप गए हो कि सूत्र में ( असंजण ) पाठ है तो फिर इस पाठ को असंजती ऐसा उल्लय क्यों मगोड़ो सूत्र का भय रक्तो यह जिन वाणी है.

पूर्वपक्ष—( असंजती, पोनणी, अ.क्रमे ) ऐसा पाठ हमने कहां बनाया है.

उत्तरपक्ष -प्रथम तो तुमने प्रश्नोत्तर में जवाबों हैं, परन्तु कदाचित्त तुम कह देओ कि यह तो हमने अर्थ लिया है, तो तुम्हारी पुस्तक तैय्येथी कृत देवधर्म की उल्लेखण उसके पृष्ठ २१३ में सातवां व्रत का अतिघार का पाठ है, तहां ऐसा लिखा है. ( भ्रमंजनी, पामगीअ, कम्म ) देवो भाई ऐसे साठे पाठ बनाने का क्या फल मिलेगा.

पूरुपक्ष अमंजनि और अमइरण का अर्थ एकही है इनसे यह पाठ हमारे गुरु भीषमजी ने बदल दिया तो क्या दोष है.

उत्तरपक्ष है मित्रों क्या गणधर भगवान जो गुरु के पाठ बनाने वाले उनमें भी तुम्हारा गुरु भीषमजी को अधिक शोधा था. जो गणधर कृत पाठ को उल्लेख के अन्तर्गत कथोच करके पाठ धर दिया और शानो पाठ का एकमात्र अर्थ था तो फिर गणधर कृत पाठ में कर्म का क्या प्रयोजन था. जो तुम्हारे गुरुजी ने कर्म का अर्थ लिया बिना अधिक धून हीन करे. परन्तु निश्चय जाना कि अर्थ का अन्वय करने वाले ही भीषमजी ने । अमइरण. इस मूलपाठ को उल्लेख के ( भ्रमंजनी, पामगीअ, कम्म ) ऐसा पाठ लिया है.

पूरुपक्ष बताइये कि अमइरण ) और अमंजनि नाम के पाठ का अर्थ में क्या फरक है

उत्तरपक्ष मुनिव साः तुम्हारे गुरु भीषमजी ने तो ( भ्रमंजनि, पामगीअ, कम्म ) पाठना के निगदा अर्थ मातृ निगार मर अमरांत है जब तुम्हारे गुरु भीषमजी की कथाएं १२ व्रतों की इत्यादि लिखी हैं । ही अमइरण की इत्यादि वेना लेना है । मातृ बिना मतलब करके बनयो अमंजनी

प कहोजे ) इति देवगुरु ब्रालत्वाण पुस्तक का पृष्ठ २१ ना.  
 त्व देवो तुम्हारे गुरु का तो यह अर्थ है. अथ मूत्र का  
 अर्थ तुमो—

( असती, जन. पोषणीया, कन्मे ).

अस्यार्थः—नाम ने अर्थ असती ने कुशील हिसक जीव-  
 तज्जर श्वानादिक जीव तथा दास दासी तेनो भाइो कन्या  
 पोस्ते. तेनो नाम असती, जय. पोषणीया, कन्मे, जायना इति.  
 तथा टीका में भी कहा है मूत्र भगवतीजी का अतक ८ ना  
 उद्देश पंचना की टीका असइपो सखसवि. दास्तास्तद्भाषी ब्रह्-  
 णाय. अनेन च कुबकुट बाजारादि क्षुद्र जीव पोषण मया दिते  
 हयामिति ॥

तथा उपानक दमा का अधरपन पहिला की टीका—  
 असइ, जन, पोषणीया.—असती जनस्य दासी जनस्य पोषणं  
 वद्भाषिकोपजीवनार्थं यत्तथा. एतन्नन्दरि कूरुर्ध्वं कारियः  
 नाग्निः पोषणं नमतीजन पोषणं मेवेति ॥ १५ ॥

टीकाथेः—असती जन जो प्यभिवागिदी दासी. उनका  
 पोषण करना अर्थात् उनका भरीर का भाड़ा ने आजीविका  
 ( कनई ) करने की पोषण करना. तेनी आजीविका निमित्त  
 और भी कूरु धर्म करने वाले दासी या पोषण करना. उनको  
 असती जन पोषण करते हैं. अथ देवो देवो टीका का अर्थ  
 है कि असती दासी प्यभिवागिदि र्वं का कूरु धर्म दासी  
 जिनने कूरु धर्म करा के उनका देह भाड़ा की आजीविका प्य-  
 णा करने को नीत पोषण तथा जिनके विती कुबकुटादिक  
 को नानार्थ नई पोषण पोषे के १५ वा कन्दान नने यह

सिद्धांतों का टीका सहित लेख है. तो फिर तुम्हारे गुरुजी ने साधू मित्राय सर्व को असंजती अर्थ किस मूत्र टीका दीपिका से किया है. हे भाई निश्चय जानो कि ( असंजती, पोसणीअ, कम्मे, ) ऐसा पाठ इसी खोटा अर्थ के स्थापना के लिये किया है नहीं गणधरजी महाराज कुत ( असइ, जण, पोसणिया ) ऐसा पाठ है उसको पलट ही क्यों. परन्तु जिसको परलोक का भय नहीं होवे. और भोले लोकों को भ्रम में पाड़ने के लिए ही मूत्र के मूलपाठ. और अर्थ को छोड़ के नवीन पाठ और अर्थ बनाए हैं. परन्तु बुद्धिमान होवो तो निर्णय करना. और तुम्हारा लिखना भी है कि केवली की प्ररूपणा बिना अपने मन के मते प्ररूपणा करे जिसको किंचित मात्र भी जाणपणा नहीं. तो जेकर इस बात पर तुम्हारा सधा ध्यान होवे तो विचारना कि जो मूत्र के पाठ को फरफार करके नवीन पाठ पढ़के मनमान्या अर्थ तुम्हारे गुरुजी ने किया है उसको क्या समझना. सो विचार लेना.

पूर्वपक्ष—साधू मित्राय और कोई भी ५ महाव्रत को पालने वाला नहीं. इसमें हमारे गुरु उनको असंजति कहते हैं और असंजति को पोषे तो श्रावक को १५ वां कर्मादान लागे.

उत्तरपक्ष—हे भाई प्रथम तो पनरमा कर्मादान में असंजति का नाम ही मूत्रपाठ में अर्थ में टीका में कहाँपि नहीं तो गुरुजी का लेख को तुम कैसे सत्य मानते हो. दूसरा यह भी कहना मिथ्या है कि साधू के मित्राय सर्व असंजती हैं. ऐसा किसी मूत्र में नहीं है. क्योंकि जब साधू के मित्राय सर्व को असंजति कहोगे तो फिर श्रावकों को तो श्री भगवान् ने संजता

संजती कहे हैं. परन्तु असंजती किसी नूत्र में नहीं कहे  
 फिर साधू सिवाय सर्व को असंजती कहने में असंख्य  
 के माथे असत्य आल कलंक चढ़ना है. ऐसा समझना च  
 तीसरी वार्ता यह है कि जेकर साधू सिवाय सर्व को अ  
 मानोगे. और उनके पोषण में १५ वां कर्मादान समझोगे.  
 जिस धावक के १५ ही कर्मादान के त्याग होवे और वह स  
 के सिवाय अन्य को पोषे तो उसका सातवां व्रत भांगा य  
 खंडन हुआ. ऐसा मानना पड़ेगा. तो फिर भगवान के आ  
 दादिक १० धावक १५ ही कर्मादान के त्यागी थे. और उ  
 सर्व धावकों के हजारों गायों थीं. दास दासी थे न्यातादिक  
 को जिमाने थे. तो उनका व्रत तुम्हारी धृदा के लेख से भग्न  
 हुआ होगा. क्योंकि १५ ही कर्मादान का तो भगवान् के बारे  
 व्रतधारी धावक को करखा, कराखा, अनुमोदना इन तीनों  
 कामों में बर्जित किये हैं तो फिर आनंदादिक उत्कृष्ट धावकों  
 के तो १५ ही कर्मादान के करखे, कराखे, अनुमोदने का त्याग  
 था. और नवादिक पोषते थे. न्यातादिक को जिमाने थे. और  
 उनका सातवां व्रत कैसे रहा. तो करो—

पूर्वपक्ष-पंद्रहों कर्मादान धावकों को करखे कराखे अनु-  
 मोदने का त्याग है ऐसा किन्तु नूत्र में है नो बतावो.

उत्तरपक्ष-नपन तो नूत्र उपासक दत्ता के पवित्रा भक्ष्य-  
 यन में ही है. कि जहां आनंदादिक ने व्रत धारण किया है.  
 वहां ही भगवान ने धरनाया है.

नूत्र कर्मनाशं, नवगोबानधरं, पद्मगन्ध, कन्नादाद्यां.

जानियन्वां. न नवापयिन्वां. —

अस्यार्थः-कर्म धर्मी भ्रमणोपासक ने १५ कर्मादान मा-  
गया. पण भ्रमणोपासक श्रावक ने अंगीकार करवा नहीं. इति  
सूत्रार्थः. तथा सूत्र भगवतीनी का अर्थक ८ मा उदेश ५ वा  
में भी करा है

सूत्र-पूण, जेइमे, समणोपासका, भवंति, तेसिंणो, कर्णंति,  
इमाई, एणम कम्मदाणाई, सयं, करेत्तएवा, करंतीरा, मणं,  
समण, जाणेतए.

अस्यार्थः बलि जे समणोपासक हूवे ते इच्छे नहीं. तेने न  
कल्ये. यह पदं कर्मादान हेतु ते मने पाने करवा. अथवा भने-  
रु पावे करवा. भनेरा कर्मा मने कल्ये नहीं जाणं. एउथे  
अनुमोदे नहीं. इति सूत्रार्थ भव दयां श्रावक को तो १५  
कर्मादान कर्मण करारण कर्म का बला जाणना कल्ये नहीं तो  
छिट्ट आनेदादिह न गाया का पाणी ग्यान निमाई उमये उन्-  
का श्रावक पणा भागा कि रहा.

पूरेव-मानदादिह दन श्रावक ना भगवान् की भाडा  
के आगादिह हूय है. एम उन्का श्रावकणा तो नहीं भागा.

उपपन्न एम नाः दया एम ही एम कहने है कि तुमारे  
गुणों ने मुझसाह श्राव भव दाना बदल दिये. उन्का कपव  
पर विधान कर देना अशुभ नहीं. दिन्नु गिद्धीए उपायक  
दना ने कहा कि (मम, अम, पामांमया) नमोदत्तन तो  
दामोदत्तन उन्का आन-वगादिह कर्मक पैसा नहीं कमाना. या  
दिह वि. श्रावकादिह हूय मने ही आनावे नहीं. अथवा,  
यह निदान देना दाना का भवे है एमने दान गुणासा निम  
दिहा है. उन्का दानक एउठे दानक दान-वग के इच्छे ही



आस्ता लावो जितसे आनंद पावो. इति. यह तुम्हारा छत्र  
 प्रश्न का उत्तर देना विरुद्ध है. तो हमने मूलपाठ टीका से प्र-  
 त्युत्तर में लिखा है ॥ इति प्रत्युत्तर दीपिकायां छत्र प्रश्न का  
 उत्तर का प्रत्युत्तरं संपूर्णम् ॥

( प्रश्न ७ )

असंजति का जीवना नहीं बंधते हो तो पाठ दिखलाओ.  
 उत्तर तरेपान्थियों का-असंजती का जीवना असंयम जी-  
 वितन्य कहा है. और असंयम जीवितन्य का बंधना तथा बाल  
 मरण बंधना. श्री भगवान ने सूत्रों में ठाम ठाम में बर्णित किया  
 है उसको संक्षेप से सूत्र साक्षी दे के लिखते हैं तो एकाचिंत  
 हो के श्रवण करिये.

( इसका प्रत्युत्तर )—यह तुम्हारा लिखना अत्यंत विरुद्ध  
 है. क्योंकि हमारा तो प्रश्न यह है कि असंजती का जीवना नहीं  
 बंधते हो तो पाठ दिखलावो. क्योंकि जीवना बंधे विद्वान दया  
 होती ही नहीं है और दया विना धर्म ही नहीं है. और तुम  
 उत्तर में लिखते हो कि असंयम जीवितन्य का सूत्र में ठाम ठाम  
 बर्णित किया है. और असंयम जीवितन्य का जहां जहां सूत्र  
 नहीं बंधना लिखा है वहां वहां तो मुनि को काम भोग सं-  
 र के नहीं बंधने का नाम असंयम जीवितन्य है. परन्तु मरते  
 ही का जीवना नहीं बंधना नहीं बचाना ऐसा कहाँपि नहीं  
 लिखा है. क्योंकि जीव के जीवन बंधे विद्वान तो दया होती  
 इतसे सूत्र प्रश्न व्याकरण का पाठिका संमरद्वार में कहा  
 दया ) देही यानी जीव की रक्षा करना नाम दया का है.  
 ठाम ठाम दया पालने का उपदेश सूत्र में है तो फिर तुमने

मिथ्याही मूत्रों का नाम ले के ऊटपटांग लिख दिया. सिद्धांतों में तो जहां जहां असंयम जीवितव्य नाम काम भोग की आशा तृप्या का निषेध किया है तो यह निषेध जैनमत में तो मुख्य ही है परन्तु जैनमत के सिवाय दूसरे मत के ग्रंथों में भी है. परन्तु जीव रक्षा नहीं करणी जीव को नहीं बचाना धर्म जान के जीव बचावे जिम्को १८ पाप लागे ऐसा कहना तो जैन-सिद्धांत के ग्रंथ भाष्य टीका प्रकरण आदिक में कहां भी नहीं है. केवल भीषमजी की कल्पना से ही यह बात उत्पन्न हुई है. परन्तु भूत भविष्यत वर्तमान कालके तीर्थंकरादि महापुरुषों का यह कहना नहीं है. तीर्थंकरों ने तो ठाम ठाम जीवरक्षा के धर्म का उपदेश दिया है ॥

( महणो महणो ) ऐसा उपदेश सर्व तीर्थंकरों का है कि किसी जीव को मत हणो.

पूर्वपक्ष-मत हणो ऐसा उपदेश तो है. परन्तु जीव की रक्षा करो करो ऐसा तो नहीं कहा.

उत्तरपक्ष-हे भाई मत हणो ऐसा कहना तो रक्षा के लिये ही है कि यह जीव गर्गव है इनको मत हणो यह तो उन जीवों की रक्षा का ही उपदेश है. मूत्र सूयगङ्गा का अध्ययन १६ वे में ( माहणनिवा ) त्रस अने धावर जीव मत हणो ऐसा जिनका उपदेश है. तिनको माहण कहिये. टीका में भी ऐसा साफ़ लेख है ॥

तथा च टीका-प्राणिनः स्थावर जंगम सूक्ष्म वादर पर्याप्तक भेद भिन्नान् ( माहणत्ति ) प्रवृत्तिर्यस्या सा माहनो-

टीकार्थः-प्राणी जो स्थावर सूक्ष्म वादर पर्याप्ता अपर्याप्ता

इनके भेद करके मिले हुए जो जीव उनको मत हयो ऐसा पहने की है प्रवृत्ति जिसकी उमको माहल कहिये. इति.

यह देखो स्थावर जंगम सूक्ष्म वादन पर्याप्ता अपर्याप्ता सर्व जीव को मत हयो ऐसी जिनकी प्रवृत्ति होवे उमको माहल कहिये. तो विचारो कि जीव का जीवन बँधे बिना सर्व जीव की रचा का उपदेश होता ही नहीं है. और जीवों को मत भागे. या जीव की रचा कगे एकही परमाथे है. जैसे कोई हिन्दू पशु आदिक जीवों को मत गहा है. जिसको किन्ही दयावान ने कहा कि इनको मत मार. दूसरे ने कहा कि इनकी रचा कर तीसरे ने कहा इनको दुग्न मत उपजा इन सब का एकही मत-लव है सर्व जीव बचाने की ही कोशिस है.

पूर्वपक्ष-इसको मृतपाठ रचा का जिवल्लासो.

उत्तरपक्ष-यह रचाना गो मृतपाठ ही है. तथा किं दि-  
स्तलाने हैं सूत्र मक्ष मरुकारण का पहिला मन्त्रद्वारमे ( रचया )

अस्तु धीमा. जीवकलन मरुभावरुवाद् दीक्षापेः-जीवरचा का मरुभावे होने ने रचा कहे है तथा पुनः ( मन्द, जग, ज्जीर, मय, ष, टपाए, सावपने, भगवता, मुकहिये ) यह देखो श्री दुग्ग का कथन है कि मागीशुव जीव मरु की रचा के स्थिये भगवान ने मरु कग्माथे है. तो किं पत करना दुग्गम केने मन्त्र होवे कि जीव का जीवन नो। रचना अस्तु कभी नहीं होवे

दुग्गम केने के रचने विधाने है मरु की माही निगी है

उत्तरपक्ष—हे भाई वह १४ साँच्चियाँ तुम्हारी ऐसी हैं कि जैसे कोई पुरुष ने किसी को पूछा कि रत्न अमोलक पदार्थ है तिनको तुम खोटे कैसे कहते हो. तब उस रत्न नष्ट करने वाले ने उत्तर दिया कि जैसे विलोरी पत्थर कठिन होता है तैसे रत्न भी कठिन होते हैं तिससे एकही सरीसे हैं तो कहां भाई रत्न को विलांरी पत्थर के तुल्य का उत्तर कभी ठीक नहीं. तैसेही असंयति जीवों की दयारूप्य जीवणा बंधने में पाप करते हो ऐसा मन्त्र हमारा है. तिसके उत्तर आशा तृष्णा नहीं बंधनी ऐसा देना अति विरुद्ध है. मन्त्र तो जीवों का जीवन बंधने का और उत्तर तुमने आशा तृष्णा का दिया. तो यह अति विरुद्ध उत्तर है. क्योंकि असंयम जीवितव्य का उत्तर लिखने से. असंयम जीवितव्य नाम तो आशा तृष्णा का है. इससे तथापि हम तुम्हारे उत्तर साथही प्रत्युत्तर लिखते हैं सो सुनो ( क ) १ मूत्र ठाणों के दशवे ठाणें में दश बाँझा बर्जा जिनमें असंयति का जीवना मरणा बंधना बर्जा है. असंयम जीवितव्य आसरी ( इसका प्रत्युत्तर ) देखो भाई तुम्हारी विपरीत बातों का कहां तक कथन कर्मिये. मूत्र में तो जीवों का जीवना नहीं बंधना ऐसा नाम मात्र भी नहीं है. हा ! हा ! हा ! विध्या साँची लिखने नहीं डरे उनको क्या कहें.

पूर्वपक्ष—मूत्र में क्या अधिकार है.

उत्तरपक्ष—मूत्र में दश प्रकार की इच्छा यानी तृष्णा का व्यापार उद्यम नहीं करणा कहा. सो यह पाठ है ध्यान लगा के सुनो—

मूत्र- दशविदे, आशेम, पउगे, यश्चनं ॥

अस्वार्थः—इस प्रकार आत्मता इच्छा नेहनी प्रयोग यही व्यापार करती इत्यर्थः.

देखो मूत्र में तो ऐसा कहा है कि १० प्रकार की इच्छा तृप्ता जगत् में होती है. तिलकी चौथी और पंचमी आत्मता का पाठ यह है। जीविषा. संतपडगे. नरणा. संतपडगे, )  
अस्वार्थः—ये चिंतनीयों होते जो शीघ्र मुक्तने नरणा हुइयो. इति.

अब देखो मूत्र में तो ऐसा लेख है कि ऐसी तृप्ता नहीं करती. मैं बहुत कार्य जाता रहूं. या शीघ्र नर जाऊं। परन्तु ऐसा नहीं कहा कि किसी जीव की अनुकंठा द्वात्त्व जीवना नहीं बंझना. तो फिर तुमने उद्वेग मूत्र से विरुद्ध लेख क्यों लिखा. तथा यहां मूत्र में तो संतपति असंतपति श्रावकादिक कर्मों का नाम नहीं. यह तो समुच्चय सब जीव के बाले कहा है कि बहुत जीवने की या शीघ्र नरने की तृप्ता नहीं रखती. और तुमने लिख दिया कि द्मव डाले में असंतपति का जीवना नरणा नहीं बंझना कहा है. हे भाई द्मव डाले में तो असंतपति का नाम मात्र भी नहीं. यहां तो ( जीविषा. संतपडगे. ) यह पाठ है तो अरने जीवितव्य की तृप्ता का रूपन है. तो अरने जीवितव्य नरख की तृप्ता नहीं करनी. ऐसा लेख जैन सिद्धांत में तो है ही. परन्तु जैन ने अन्य अन्य खुल्यति में भी कहा है. ( ताभिनंदेन नरने ताभिनंदेन जीविषम् ) इति. तो यह तो नानिद वात है कि तृप्ता मोक्षने का उपाय है कि हे चरन के व्यादा संवने की मायना में नु व्यादा नहीं जाता है. तो किन अरने म्पता को कर्ना है पर तो विद्वान क्या जन्तु साधारण लोक भी मनकते है जन्तु संवने को कर्ना करनी

तो जीवों की जीवना वंछे विना होती ही नहीं इस से जीवों की कर्णा करने की बांछा का निषेध कोई मूत्र में नहीं है तो फिर तुम वृथा कल्पना करके हठवाद क्यों करते हो. वस इस एक साची मुताबिक तुम्हारी चाँदेही साची है. तथापि लिखते हैं. ( ख ) मूत्र मूयगडांग के तेरहवें अध्ययन की २३ वीं गाथा में असंयती का जीवन मरण वंछना वजा है. ( मत्स्युत्तर ) यह भी मिथ्या है. मूत्र में तो यह पाठ है.

मूत्र-णोजीविण, णोमरणाव, कंखी.

अस्यार्थः-साधू पूजा सत्कार नी प्राप्तिर्ये करी जीवितव्य न बांछे अने उपसर्ग परिपह ऊपने थके मरण न बांछे. इति ॥

देखो यहां मूत्र में तो साधू को सुख दुःख में जीवना मरण वंछना वजा है. और तुम मिथ्या मूत्र का नाम ले के असंयती का जीवना मरण वंछना वजा. ऐसा असत्य कथन क्यों करते हो जरा परलोक का डर रखो. इसके आगे जो तुमने फेर मूयगडांग का नाम ले के ( ग ) ( घ ) ( ङ ) ( च ) ( छ ) के चिन्ह की पांच साची लिखी वह सर्व ऊपर सरिती है. सो ब्यर्थ काला कागज किया. और निन पांच साक्षियों में तीसरी साची जो लिखी कि मूयगडांग के तीसरे अध्ययन के पहिले उदेश की तीसरी गाथा में असंयम के अर्थों को बाल अज्ञानी कहा है. ( इसका मत्स्युत्तर ) यह है कि यह बात तो ठीक है कि साधू को असंयम यानी काम भोग को नहीं वंछना. परन्तु मूत्र मूयगडांग का तीसरा अध्ययन का पहिला उदेश का नाम लिखना ब्यर्थ है. क्योंकि यहां पर तुम्हारा लेख का नाम मात्र भी नहीं है. इसमें विदित होता है कि तुमने ऊपटांग

ही मनमाने उत्तर नृप का नाम ले के लिखा तो बड़ा अयोग्य है. तथा भूल गये होंगे तो खैर. तथा इनके प्रागे दमती कालिक सातना अध्ययन की साक्षात् देवी कि देव मनुष्य तीर्थों का परस्पर विग्रह करने देव करके इनके नर पराजय की बांझा नहीं करती ( इमका मन्वुत्तर ) यह भी तुन्हाग लिखना व्यर्थ है. क्योंकि इनाग तो यह मक्ष नहीं है और माधु दोष लड़ने होते तो अमुरुक जीत जावे अमुरुक हार जावे. ऐसा काम काहे को करे. वने तो उपदेशादिक दे के वनेम को पेट देवे. तथा फेर तुन्हे लिखा कि ( ३ ) वायु वर्षा जीत धूर कान मुकाल उपद्रव का अन्धार. इन बात बोलो की होने न होने की बांझा का वर्जन है. ( मन्वुत्तर ) मधुन तो यह तुन्हाग मक्ष से उभयगंग उत्तर है. और द्वितीय नृप में बंझने का नाम ही नहीं. और तुन बंझने का कथा तो नृप में विरगीत कथन का दोष के भागी हुए. नृप ने तो यह पठ है तुनों—

नृप-क्यापु. होइ, ये, पानिपराबाहोउ. वि. नोवर, गति

अन्वयार्थ:-इसी बांझा कह ही ने अधरा मत होयो ऐसा न हो. देवो भिदांत ने तो माधु को तो भासा बोलने का नाम बतलाया. कि इस तरह कि माधु अलान विरर की भासा नहीं बोलनी माधु को और तुन्हे बंझने का लिख दिया.

पूर्वपद देनी भासा क्यों न होये.

उत्तरपद इसी बातों विविध बतलाने की है. तो नृप अन्वयार्थ माधु को लिखित नहीं भासता इतिविध बतलाई है परन्तु इस कथन का उत्तरपद बतला का लिखित नहीं है तथा तुन्हाग मक्ष न नृप मन्वुत्तर इ उर अन्वयार्थ की भासा

में आर्द्रकुमार ने कहा है कि भगवान् उपदेश देवे वह अनेके को  
 तिराने और अपने सुद के कर्मों का क्षय करने को देवे, परन्तु  
 असंयति के जीवने के लिये उपदेश नहीं देवे, इति. ( इसका  
 मत्स्युत्तर ) हे अल्पज्ञ पुरुषों तुम यहाँ तो अपनी संपूर्ण अविद्या  
 को दर्शाई है, क्योंकि तुम लिखते हो कि इसी मूत्र की गाथा  
 में कहा है कि जगत् के जीव की रक्षा निमित्ते परमेश्वर उपदेश  
 देवे, और तुमने लिखा कि असंयति के जीवने के लिये उपदेश  
 नहीं देवे हा ! हा ! हा ! यह ऐसा हुआ कि कोई बालक मूर्ख  
 को दाक के कहे कि मूर्ख किसी को नहीं देखता है, ऐसे बाल-  
 क की चेष्टा से क्या मूर्ख डक सकता है, नहीं नहीं कभी नहीं  
 डक सकता है, हां अल्पज्ञ वह बालक अपनी आँखों को मीच  
 लेवे तो उसके भावे तो मूर्ख का देखना अदृश्य हो जावे, परंतु  
 औरों को मूर्ख नजर आना उस बालक की चेष्टा से नहीं कर  
 सकता है, वैसेही जीवों को बचाने का उपदेश परमेश्वर देवे उस-  
 को तुमने अपनी अज्ञान रूप बालभाव की चेष्टा से चाहते हो  
 कि औरों को यह बात नहीं दीखे तो अपना मनमान्या होजावे  
 तिसको छुती अच्छुती लिखते हो, परन्तु ऐसा कभी नहीं होता,  
 क्योंकि मूत्र का मुलामा पाठ है कि जीव बचाने का महावीर  
 स्वामी उपदेश देवे, हां अल्पज्ञां तुमने अपनी ज्ञान दृष्टि पर  
 अज्ञान का आच्छादन कर लिया, उसमें तुमको जीव बचने  
 का पाठ है तो भी नहीं दीखे, अब हम तो तुम्हारे ज्ञाननेत्र  
 खोलने के लिये अज्ञान का आच्छादन भेदने के लिये मूत्र का  
 मूलपाठ लिखते हैं सो एकाग्र चित्त होकर सुनो, गोशाला ने  
 आर्द्रकुमार को भेग, तब आर्द्रकुमार कहते भये सो मूत्रपाठ—



मृत-सन्निवृत्त, लीला, तत्त. धारणा, नैव करे, समग  
हणे, वा, आइत्ये, मोर्णावि, तदस्त. नडे, एगंतपंता, र  
तद्वे ॥ ४ ॥

अस्वार्थः—लोक जे पट प्रणालिक. तेने सानिय एटने  
बल ज्ञान करी जाणीने व्रत अने स्थावर जे भाणीउ उ ए  
पता चोरानी लक्ष जीवा सोनि देते ने ( नैवकरे ) देव  
ना करत हार. तथा ( समगरे के ) अनय एटने वार भेदे तम  
करनार. तथा ( नाहणे वा. के. ) कोडे जीवने नव ह्यो. एवो  
जेतो जे उपदेश दे ते नाहय अथवा ब्रह्मण एवा जे धीनगावीर  
देव. ते नाणीउना हित ने अर्थे ( आइत्ये, नाणीविनहम्म,  
नष्टे ) रागद्वेष राहित धर्म मनुष्य ना लहय नष्टेनकाय वाडता.  
( एगं, तपंता, रपति, तद्वे ) ते नव पूर्वनी पडे एकांत पणु.  
जसाथे दे एनी पूर्वनी अवस्थानां अनेहवगानी अवस्था नां  
तांही पच संतर न थी. इति सूत्रार्थः ॥

अब जरा ज्ञान नेत्र न्योत्र के देणो कि इन मृत के मृत-  
पाउ अर्थ में क्या कि धी नगावीर नवें जगत् के जीवों के एक  
है. जेन कुम्व के अणुकार को है तो फिर तुम लोगों ने यह  
कैसे लिख दिया कि अनंतपति जीवों की इच्छा के विधि न-  
देव नहीं देवे.

पूर्ववत् अपने दो इच्छा पूर्व अन्तर्द्वेषों ने धारणा कर  
के क्या है.  
अणुकार के भी तुमने लक्षणा की है। अणु तुमने  
अणु तुमने की लिख तो देणो कि मृत के ने जेव सो  
बाने का विना जगत् को ना ब्रह्मण के विना क्या है।  
हम में तुम पूर्व नवने ।

पूर्वपक्ष-हमारे गुरुजी बड़े विद्वान् हैं सो ( खेमकर ) श्रुत का अर्थ कोई दीपिका में और होगा सो हमको उस आशय से बतलाया होगा—

उत्तरपक्ष-मुनिये भाई भ्रूगदांग की दीपिका भी लिख दिखाते हैं.

तथा च दीपिका-लाभार्थं देशनां करोती त्याहं समेत्य लोकं यथा वस्थितं ज्ञात्वा त्रस स्थावराणां चेमं करोरुचकः भ्रमणो द्वादश धा तपः प्रवृत्तः माहणत्ति प्रवृत्तिर्यस्य स माहनः ॥ इति.

दीपिकार्थः-लाभ के अर्थ देशना उपदेश करते हैं. इसी बात को कहते हैं प्राप्त होकर यथावस्थित लोक को जान करके त्रस स्थावर जो प्राणि उनका चेम कारक अर्थात् रक्षक. बारा प्रकार की तपस्या में प्रतिष्ठित मत हणो ऐसी प्रवृत्ति जिसकी उसको माहण कहते हैं ॥ इति दीपिकार्थः ॥

अब देखो दीपिका में भी स्पष्ट लिखा कि भगवान् त्रस स्थावर जीव, के रक्षक हैं. रक्षा का उपदेश देने से तो फिर तुमको तुम्हारे गुरुजी ने कैसे सिखा दिया कि असंयति जीव को जीवने के लिये उपदेश नहीं देवे.

पूर्वपक्ष-न जाने हमारे पूज्यजी ने सिलांगाचार्य कृत टीका के आशय से हमको सिखाया होगा. क्योंकि हमारे भ्रमविध्वंसन में हमारे पूज्य जीतमलजी ने बहुतसी जगह सिलांगाचार्य कृत टीका की सार्थी दी है. तो हमारे पूज्य डालचंदजी भी जीतमलजी के पाठानुयायी हैं. इससे टीका से हमको सिखाया होगा.

उत्तरपक्ष-हां भाई तुम्हारे पूज्य जीतमलजी ने सिलांगा-

चार्य कृत टीका की साक्षी कई जगह दी है. अब हम वही टीका लिख के दिखाते हैं.

तथा च टीका—एतद्धर्म देशनया प्राणिनां कश्चिदुपकारो-  
भवत्युत नवेति भवतीत्याह ( समिच्च लोय मित्वादि ) सम्यग्  
यथावस्थितं लोकं पद् द्रव्यात्मकं मत्वाऽवगम्य केवला लोकेन  
परिच्छिद्य त्रस्यंतीति त्रसास्त्र सनाम कर्मोदया द्वीन्द्रियादय स्त-  
थातिष्ठंतीति स्थावराः स्थावर नाम कर्मोदय । त्थावराः पृथि-  
व्यादयस्तेषामपि जंतूनां क्षेमं शांती रक्षा तत्करणशीलः क्षेम-  
करः श्राम्यतीति श्रमणो द्वादश प्रकार तपोनिष्ठ देहस्तथा माह-  
णञ्च प्रवृत्तिर्यस्या सौ माहनो बाह्यलोवा इति ॥

अथ टीकार्थः—इस धर्म करण से प्राणियों को कोई उप-  
कार होता है या नहीं होता ? इस बात को कहते हैं अच्छी  
तरह से यथावस्थित जो लोक ६ द्रव्यरूप उसको मान करके  
अर्थात् केवल ज्ञान से जाण करके, विवेचन करके, त्रास पावे  
उसको त्रास कहते हैं. त्रास नाम कर्मोदय से द्विन्द्रिय आदिवाले  
प्राणि स्थित रहे उसको स्थावर कहिये. स्थावर नाम कर्मोदय  
से स्थावर पृथिव्यादिक जाणने वह दोनों त्रास स्थावर जंतु है.  
उनका क्षेम शांति रक्षा करने का स्वभाव होय उसको क्षेमकर  
कहते हैं तपस्या विषयक परिश्रम करे उसको श्रमण कहते हैं.  
१२ प्रकार की तपस्या उसमें तपाया है देह जिसने तैसेही मत  
हयो ऐसी है प्रवृत्ति जिसकी उसको माहण कहने हैं ॥ इति  
टीकार्थः ॥

अब उत्तर कागजी अच्छी तरह से विचारो कि टीका में  
नो सिद्धांताचार्य जी अच्छी तरह से व्याख्या करने है कि श्री

‘महावीर स्वामी ब्रह्म स्थावर सर्व जीवों’ की क्षेम शान्ति रक्षा करने का स्वभाव है जिनका ऐसे हैं और जीवना, बंधे बिना जीवरक्षा होती ही नहीं, तो कहो भाई अब गुरुजी ने तुमको यह ऊटपटांग अर्थ का कथन कहाँ से सिखाया, कि जीव के जीवन वास्ते श्री महावीर जी उपदेश नहीं देते हैं, बाहरे समझ-खैर अब भी गुरु जी के कथन के साथ मत चलो और शास्त्र देख के मति शुद्ध करो.

पूर्वपक्ष-हमारे गुरुजी कहते हैं कि भगवान् उपदेश देवे सो गुण वास्ते देवे, तो ब्रह्म स्थावर के गुण क्या हुआ, गुण तो हिंसा नहीं करे उसको हुआ.

उत्तरपक्ष-हे भाई ब्रह्म स्थावर की रक्षा शान्ति को करे तब ही रक्षक के गुण होवे ब्रह्म स्थावर जीव के तो अपने प्राण बचाने का गुण हुआ, और ब्रह्म स्थावर को बचाने वाला को करुणा दया हुई, और दया में संसार पदत करनादिक गुण हुआ, निममे मृत्यु के मूलपाठ में लिखा कि श्री महावीर भद्र स्थावर जीव को क्षेमशान्ति रक्षा के कारण हारे हैं, और दूसरे को भी क्षेमशान्ति रक्षा करने रूप धर्म उपदेश देते हैं सो नेकर तुमको भगवान् का उपदेश की आस्ता होवे तो जीवरक्षा का धर्म श्रद्धा परन्तु जीव रक्षा से द्वेष भाव करके जीव रक्षा में पाप मत करो, जैसे जीव मारने वाला जीव के प्राण वियोग करणें रूप ब्रह्म स्थावर जीव के अवगुण करता है, तिससे हनने वाले को भी दुःख दुर्गति रूप भादिक संसार में परिभ्रमण का अरगुण होना है जैसे ही ब्रह्म स्थावर जीव की रक्षा करने वाला ब्रह्म स्थावर के प्राण बचाने का गुण करता है तो

रक्षा करने वाला भी संसार समुद्र से तिरता है ऐसी शुद्ध श्रद्धा भव्य प्राणी को धारण करना चाहिये तथा तुम्हारा लेख है कि (८) टाणांग नृव के तीसरे टाणे के तीसरे उद्देश में कहा कि कोई जीव किसी जीव को मारता देखे तो धर्म उपदेश देकर समझावे अथवा मौन रखे तथा उठकर एकांत चला जावे यह तीन बोल कहे हैं परंतु जरूरन छोड़ाना नहीं कहा है (इसका मत्युत्तर) यह लेख भी तुम्हारा तुम्हारी श्रद्धा को काटने वाला है क्योंकि तुम्हारे गुरु भीषमजी ने तो कहा है कि कोई जीव पर पग रखता होवे और दूसरा उसको चेता देवे कि जीव नव मारे तो उस चेताने वाले को तुम्हारे गुरु भीषमजी पाप लगना बताते हैं तो तुम्हारी पुस्तक में अनुकंपा की शाल चौथी भीषमजी कृत में लिखा है मो देख लेना और तुम्हारा लेख तो मरने जीव को उपदेश देके छोड़ाने का नृव टाणांगजी के तीसरा टाणा से तुमने लिखा है और भीषमजी का मानना मरने जीव को छोड़ाने का उपदेश देवे उसमें भी पाप है तिसका कथन खुलासा वार हमने भीषमजी कृत शालो से ही नमन पांचना में लिखा है तो हे भाई तुम अपना ही लेख पर कायम रहके जीव बचाने में धर्म को श्रद्धा करो और अन्यथा श्रद्धा को दूर हटावो और उपदेश दे के जीव को बचाना ठीक है परंतु उपदेश भी जैसे को जैसा दिया जाता है क्योंकि देखो जब कोई श्वान माधु के ऊपर भ्रष्ट करने को आवे तो उसको क्या उपदेश देवे तथा माधु को गंभीर कृत्ता खावे तो उस वस्तु क्या करे कि हे भाई कृत्ता माधु को गंभीर मत खा. या माधु का भक्षण मत कर क्या यह उपदेश श्वान को मने

पूर्वपक्ष—श्वान को तो घुरकारा देनादिक ही उपदेश होता है, उत्तरपक्ष—वस ऐसे ही जीव वचाने में भी जो उपदेश से समझ सके तो उपदेश देवे और घुरकारादिक से भी जीव छूटा देखे तो वह भी जीव के वचाने में उपदेश रूप है करुणा रूप है, पूर्वपक्ष—घुरकारादिक से उसकी आत्मा दुःख पावे और जीव के छुड़ाने में गुण क्या होवे,

उत्तरपक्ष—जीव छुड़ाने वाले को तो करुणा का प्रणाम है परन्तु दुःख देने के नहीं क्योंकि कोई लडवादिक खाते होवे तो नहीं छोडावे किन्तु जीव मरता छोडावे तो छोडाने वाले को लाभ हुआ जैसे कोई माता पुत्र को कठिन कह के दवा पिलाती है तो भी वह माता कहलाती है, किन्तु वैरण नहीं, तथा जैसे कोई हकीम बीमार को धमकी दे के अच्छी दवा देवे तो वह उपकारी है, किन्तु वैभी नहीं जैसे जीव वचाने वाला भी कठिन धमकी दे के उसकी हिंसा छोडावे तो गुण का ही कारण है, उस छोडाने वाले को मनु नहीं समझना चाहिये तथा तुम्हारा लेख है कि ( ४ ) मूत्र उपामक दशा के पहिला अध्ययन में ५ अनिचार धावक को बताये जिसमें जीवनामरणा बंधना बनी है, तथा ( ६ ) साधू और धावक दोनों बक्त शतःकाल सायंकाल पट्टिकमणों का जिसमें पांच संश्लेषणा की यह पाठी पढ़ी जाती है इह, लोंगा, संसभोगा, परलोंगा, संसभोगा, जीवियाओ, संसभोगा, मरणाओ, संसभोगा, कामभोगा, संसभोगा, महा, मूज्ज, हूज्ज, मरणांते, तस्म, पिच्छामि, दुक्कदं, ॥ इस में भ्रमना जीवना मग्गा तथा अन्य लोकों का जीवना परमा बंधा होवे तो पिच्छामि दुक्कदं जने हैं, यदि जीवने मग्गे

की बांछा में किसी प्रकार का प्रायश्चित्त न होता तो संलेपणा में मिच्छामि दुकडं लेने की क्या जरूरत है ( इन दोनों उत्तरों का प्रत्युत्तर ) हे मित्रो यह गोलमाल कथन कुछ मूत्र का पाठ द्विपा के अर्थ को अनर्थ करके तुमने लिख दिया परन्तु हम तुम से पूछते हैं कि तुम्हारे साधुजी जीवना बंछे कि नहीं.

पूर्वपक्ष—हमको तो कहते हैं कि जीवना बंछने में पाप हैं तो वह कैसे बंछते होंगे.

उत्तरपक्ष—हे मित्र इतना भी तुमको ज्ञान नहीं कि जो तुम्हारे साधु की जीवने की आशा नहीं तो फिर अन्न क्यों खावे धूप से छया में क्यों आवे सिंह सांड सपादिक को देख के इधर उधर क्यों घरे जिसके जीवने की बांछा नहीं होवे तो फिर इतने काम क्यों करे रोग आवे तो दवा क्यों लेवो.

पूर्वपक्ष—यह काम तो संयम पालने को करते हैं.

उत्तरपक्ष—जेकर आहारादिक नहीं करे तो क्या संयम नष्ट होजाता है भगवंत ने तो जो साधु वैराग्य भाव से अन्न त्यागे तो महा निर्जरा कही है तो फिर तुम्हारे साधु आहार क्यों करते हैं देखो रोज आहारादिक जीवने वाले ताने और जीवना बंछने में पाप की श्रद्धा स्वस्वी इत से तो रोज पाप जान जान के करता और तान को मिच्छामि दुकडा लेना यह साधुपना कैसे रहवे. फिर तुम्हारे साधु की तो यह प्ररूपणा है कि जाल के एक दोष भी बगावे उन में साधुपणा नहीं तो फिर तुम्हारे साधु जाल जाल के रोज आहार करते हैं चले चन्नी को कगते हैं दवा आदिक ताने हैं मांड सपादिक ने मरपट्ट टन्न जानें हैं तो यह जान जाल के जीवना बंछने हैं

और जीवना बंधने में पाप भी कहते हैं तो फिर तुम्हारी श्रद्धा-नुसार तो तुम्हारे गुरु में साधुपणा कैसे रहा और जो साधु भी जीवने के लिये आहारादिक काययत्न करते हैं तो फिर श्रावक का क्या कहना इससे श्रावकपना भी कैसे रहा बाहर बाह श्रद्धा तुम्हारी कि जिससे अपण्य कहने से ही अपने मत में साधु श्रावक का अभाव करा.

पूर्वपक्ष—हमारे गुरुजी तो संयम जीवितव्य बंदते हैं इस-लिये आहार करते हैं.

उत्तरपक्ष—हे मित्र एक बात तो तुम्हारे मुख से ही विपरीत उहरी कि जो तुमने लिखा कि साधु जीवणा बंधे नहीं बंधे तो मायाश्रित्त का मिच्छामि दुकडा लें है और यहां कहते हो कि हमारे गुरु संयम जीवितव्य बंदते है यह विपरीत और विरुद्ध उहरी.

पूर्वपक्ष—आहार पानी दवा वर्गइ तो श्रीभगवान के लिप्य साधु मुनि भी करते थे और साधु सर्पादिक से टरते थे तो वह क्या जीवणे के वास्ते करते थे.

उत्तरपक्ष—हां भाई जीवने के लिये भी आहारादिक करते थे सांड सर्पादिक से टरते थे.

पूर्वपक्ष—तो अब हमको मंत्रपाठ से दिखलाओ कि साधु को जीवने वास्ते आहार करना.

उत्तरपक्ष—हां भाई मुनिये दिव्यज्ञाते हैं मंत्र मंत्र व्याकरण का पहिला संमगद्वार का चौथी भावना का पाठ.

भुनेजा, पाणगण, दृयाण, इति ॥ अम्याधेः आहार लिये माल धारवाने अर्थ.



टीका-तथा भोजने कारणांतर माह-माणधारणार्थ तथा-  
जीवितव्य संरक्षणायेत्यर्थः ॥

टीकार्थः-तैसेही और भी भोजन करने का कारण कहते  
हैं प्राण धारण पूर्वक जीवन आयुष्य की रक्षा करने वाले ।  
इति टीकार्थः ॥

अब देखो यहां खुलामा पाठ है कि साधू को प्राण धारणार्थ  
यानी जीवने के वास्ते आहार करना तो फिर तुम साधू को  
जीवना बंदने में पाप कैसे कहते हो तथा मूत्र उत्तराध्ययन के  
२६ में अध्ययन की ३३ में गाथा में भी यह अधिकार है कि  
मुनि को जीवितव्य के निमित्त आहार करना. तथा च मूत्रपाठ  
( तहपाण वचियाए ) यहां भी कहा कि प्राण धारण के अर्थ  
साधू आहार करे तथा मूत्र टाखांग का पांचवा टाणा में ॥  
मूत्रपाठ ॥ हयाणवा, गयस्तवा, दुदुल्लवा, आगच्छ, नास्तर्भाय,  
रायंत, उरमणु, पवेसेशा, इति मूत्रपाठः ॥

अस्वार्थः-पोहो हाथी दुष्ट विक्रमाल आबतो थको देगे  
ते थी बीहतो थको राजारा अंतउर में पंगे इति ॥

देखो यहां भी कहा कि साधू पोड़ादिक दुष्ट को देवर के  
दरता हुआ राजा का अंतपुर में बंध कर तो आज्ञा उन्हे  
नहीं तथा टाखांग के पांचवे टाणे दूसरा उद्देश में पांच वाक्यें  
साधू चोनातो वहां पिडे हदच्छरी सडिकन्ता पिडे सटिनी  
विहार कर जाय तो आज्ञा उन्हे नहीं ॥ तथा च मूत्रपाठ.

मूत्र भयंमिवा दुभिरन्वं मिवा अन्वार्थः ॥ राजादिक ने  
भये तथा बंी ने भय पही दुभयता में अन्वार्थ विधा नहीं लिखे  
तो इति देवों यहां भी कहा कि भय है बन्ने तथा विधा न

मिले तो चौपासा में विहार कर जाना कहा तो जीवना नहीं बंधने हो वे तो फिर विहार क्यों कर जावे तथा ठाण्ण मूत्र का पंचम ठाण्ण का उद्देश दूसरा में पाठ है सो निस्तंत है मूत्र निग्गंथे सेयसिवा, पंक्कंमिवा, पण्णग्गंसिवा, उद्दंयंसिवा, उरुत्तमाणिवा, उयुत्तमाणिवा, गिएहनिगांथी माणेवा, अवलंब माणेवा, णाइकमई ७ इति मूत्रपाठः ॥

अस्यार्थः साधु साध्वी को जल सहित जेहादानीहा वृद्धिये ( पंक्कंरुता ) का दाने विषे ( पण्णं के ) अनंरा ठामनो भाचिवां पानलो अने दीलो फादव अथवा फुलण ( उद्दं के ) पाणी माहीं ( उरुत्तमाणी के ) पंरुने विषे अनई पत्ररुने विषे लपमती ( उयु० के० ) उदक ने थोत्रे तासी ती श्रुतिो अवलंबन देना थको भात्रा उलंबे नश इति मूत्रार्थः ॥

अब देखो मूत्र में तो मफा पाठ है कि इवनी यही साध्वी को साधु पकड़ लेवे तो भगवान की आज्ञा उलंबे नहीं, पर देखो प्रत्यक्ष साध्वी के जीवने के वास्ते साधु साध्वी को जल में पकड़ें अब यह मूत्र साध्वी अपने साधु को जीवना बंधने में दिग्वाड है सो ममद्व के मध्यस्थपणा प्ररग करे,

पूर्वपक्ष—तुम तो मूत्र में जीवना बनाने हो भीर इनारे गुरुजो ने मनेपणा का पाठ बनाया यह कैसा है क्योंकि मूत्र विरुद्ध तो होता ही नहीं तो पकड़ नगड़ तो कर दिया कि जीवना बंधे तो वायव्यम अंग दूमरी नगर कर दिया कि जीवने के वास्ते आहार कर तो हमको यह संलेपणा का पाठ शीघ्र माहित दिम्यजारी

उत्तरपक्ष—ही पाठ मूत्र विरुद्ध नहीं होता है, परन्तु जो

तुमने उपासक दशा की आवश्यक की सार्थी गोलमाल लिख दी वह सूत्र से विरुद्ध है क्योंकि संलेपणा तो मरणांतक काल की यानी मृत्यु आवे उस अवसर की कही है और तुम ने हमेश का लिख दिया और है तो अपना सुख दुख का विशेषण से तुमने लिखा जीवना मरणा नहीं बंधना सो विरुद्ध है अब हम सूत्र का पाठ टीका सहित लिखते हैं सो श्रवण करो.

सूत्रपाठ—अपच्छिम, मारणंतिय, संलेहणा, ज्ञसणा, राहणाए, पंच, अइयारा, जाणियव्वा, न, समापरियव्वा, तंजहा, इहलोगा, संसप्पओगे, १ परलोगा, संसप्पओगे, २ जीविया, संसप्पओगे, ३ मरणा, संसप्पओगे, ४ कामभोगा, संसप्पओगे, ५ इति उपासक दशा का अध्ययन पहिला ॥

अस्यार्थः—अपच्छिम छेहडली आउखे पूर्ण होता संलेहणा कहीजे. तिणभुपणा अण सण अराद्विवाने विपे थमणोपासक श्रावक ने ५ अतिवार जाणवा. परं अंगीकार करणा नहीं. ते केहा इहलोकै अण सण थकां चित्ते मनुष्य मे राजमंत्री हुई. ज्यो परलोकै विपे चित्ते हुं इन्द्र होइज्यो? अणसणा लीधे पूजा सत्कार देखी जीवतुं बाँडे. जे हुं घणुं जीवुं तो श्राया घणी होवे. सरारै पीडा देखी ने चित्ते. मरण वेगो आवे तो भलो. शब्द रूप रस गंध स्पर्श ५ प्रकारना काम भोग चित्ते. इति सूत्रार्थः ॥

अब टीका कहने हैं सो ध्यान लगा के श्रवण करिये ।

टीका जीविना संन्या प्रयोगो जीविनं प्राणधानं नदा संनयो न्नामिनापन्न प्रयोगो यदि बहु ज्ञान महं जीवेय मिति अयं हि मनेखनावान काश्चिद्वदन्तान्य पुनश्च वाचनार्थे पूजा

दर्शनाद्बहु परिवारा बलोकना ल्लोक श्राया भवता चैवं मन्वे  
 यथा जीवित मेव श्रेयः प्रतिपन्नानशन स्यापि यतएवं कि  
 मदुदेशेन विभूतिवर्तत इति ३ मरणा संसा प्रयोगः उक्त स्वरू  
 पूजाय भावे भावे यन्यसां. यदि शीघ्रं श्रीयेह मिति स्वरू  
 इति टीका ॥

अस्यार्थः—जीवित नाम प्राणाधारण तिसकी जो अभिला  
 पा तिसका जो प्रयोग यानी बहुत काल में जी जाउं ऐसा न  
 मानना उगको प्रयोग कहने हैं. यह जो संलेखना वाला ( संपा  
 रावाला ) कोई वस्त्र माला पुस्तक स्तुत्यादियों की पूजा देखने  
 से और बहुत परिवार के देखने से लोकर की श्राया गुनने से  
 कोई संलेखना वाला ऐसा मानता है प्राप्त किया है अनशन  
 ( मंथाम ) निमने उम पुण्य को जीवना ही कल्याण कारक  
 है. इस प्रकार का विचार में विभूति नहीं बनेती है ( सिद्धि  
 रूप ऐश्वर्ये नहीं बनेता १. ३ पहिले कहा है स्वरूप तिसका  
 उम पूजा के अभाव में भावना करना है संलेखनावान् यदि  
 शीघ्र परजाऊं परमा भावना करना है ॥ ४ ॥ इति टीकार्थः ।

अब देखो भाइ मूर का पाठ अब टीका का तो यह लेख  
 है कि पूजा श्राया के लिये जीवना नहीं बाँचना मंथारा वाले  
 को और पूजा श्राया नहीं होने में या दुष्ट उत्पन्न होने में  
 परम नहीं बाँचना मंथारायान यानी अनशनवान को । अब  
 देखो मूर का पाठ अब टीका का तो यह लेख है कि मुझ  
 दूध में आगा तुम्हा नही करणा और तुमने है वाई कैसा  
 मोननान लिये दिया है कि जीवना बहुत में ही माधु थावक  
 को मयाधन आना है और इस लिये म तुम्हाय मन में माधु

श्रावक का ही अभाव होता है परन्तु तात्पर्य यह है कि पूजा श्लेषा कामभोगादिक न से तो जीवना नहीं बँडना. ऐसा अर्थ सूत्रों का परमार्थ सहित है. और दया के वास्ते परजीव को कल्याण रूप जीवना बँडना बोही अपना संयम जीवितव्य बँडना है. वस यह लेख सिद्धांत से यथार्थ है और जो तुम्हारे तरीसे स्वकपोल कल्पित अर्थ करने से अनेक सूत्र के पाठ को धक्का लगता है और साधु श्रावक का अभाव होता है. सो विचार कर के सूत्रार्थ टीका से सापेक्ष अर्थ करना उचित है.

पूर्वपक्ष—संयम जीवितव्य तो हमारे गुरुजी भी इच्छते होंगे. क्योंकि आहार औपथादिक बहुत से यत्न करते हैं.

उत्तर पक्ष—हे भाई तुम्हारे गुरुजी का मानना ऐसा है तो फिर तुमने लिखा कि साधु अपना जीवना बँडे तो प्रायश्चित्त आवे. तो वह लिखना असत्य ठहरेगा. और साधु को जीवना बँडना नहीं मानोगे तो साधु जीवने के लिये आहार करते हैं और औषध लेते हैं हाथी घोड़ादिक से टरने हैं उनमें तुम्हारी थदा से, साधुपना का अभाव होजावेगा यानी तुम्हारी थदा परस्पर विरुद्ध होजावेगी और सिद्धांत का सापेक्ष अर्थ है वह थदोगा और अपनी छपाई हुई अशुद्धि को मेटेगा सो संसार समुद्र से तरेगा. इति तथा तुम्हारा लेख है कि श्री भगवान के दश श्रावक उत्कृष्ट एका भवतारी हुये जिन में से चूलनी प्रिया सुरदेव चूल जनक मकडाल यह ४ श्रावक पाँपा में थे जिनको चलायमान कर्ण के लिये निधरा हट्टि देवताओं ने माया से उकलंत नेल में इनके पुत्र माना स्त्री आदिक को पढ़ने दिन्वाये जिनमें यह चलायमान हूण उन वक्त उनको माना वा स्त्री ने

पलायमान होने का शब्द सुनके उनके निकट आके कहा कि ( भग्ग, पौपा, भग्ग, नेमा, ) जीवन विषय तेरा व्रत भांगा तेरा पौपा भांगा. यहाँ करुणा करने से व्रत और पौपा भांगने का कदा है किम प्रापश्चित ले के शुद्ध हुए ( आपके प्रभों का उत्तर तो मूर्खों के प्रमाण देकर के ऊपर लिख आये हैं वह आप लोग सरल भार से पक्षपात रहित होकर अवश्य वानेगे ) इति यह तर्कपंथियों का लेख है. ( इस का प्रत्युत्तर ) हे भाई यह तुम्हारा लिखना मूर्ख से अत्यन्त विरुद्ध है. मूर्ख में ऐसा कदा भी पाठ अर्थ शीघ्र में नहीं कि करुणा करने से तुम्हारा व्रत भांगा और तुमने लिख दिया कि करुणा करने से व्रत और पौपा का भंग होता है यह मूर्ख का नाम ले के पिढ्या ही लिख दिया.

पूरुषव जय भग्ग पौपा मूर्ख में कैसे कहा. किम कारण से उनका पौपा भंग होना कहा.

उत्तरपक्ष हे भाई तुमने प्रथम तो मूर्ख का मूल पाठ संपूर्ण लिखा ही नहीं और किंचित लिखा तो भ्रमरूप है क्योंकि ( भग्गवया ) यह पाठ ना छाड़ ही दिये और ( भग्गीणयमे ) पाहिनी का पाठ है और ( भग्गपोगह ) यह पौत्र का पाठ है सो तुमने न जाने क्या जान क उल्टे पलट यानी पाहिने का पौत्र और पौत्र का पाहिने लिखा है.

पूरुषव-आगे मूर्खों क्या मूर्खपाठ नहीं पढ़े हैं तो हमको उल्टे पलट लिखाया

उत्तरपक्ष मूर्खों का लिखा तो मूर्ख इन्कोग तो मानुष हो जायेंगे कि मूर्ख से उल्टे पलट है कि नहीं या तुम्हारे मुँह

जी ने ठीक बताया होवे और तुम लोग मूर्ख नपे  
 भूल मंजूर करना अच्छा है तो अब आप बताइये कि ( भग-  
 वया-भग्नाखियेमे, भग्नापोनटे, विरगति ) इस पाठ का अनुक्रम  
 अथ मंत्र शीपा से कहां निमते हमसे माहुम होवे कि मन्त्र  
 यह है और इंत यह है.

उत्तरपक्ष सुनिये भाई हम अनुक्रम से अर्थ होवा नहि  
 लिखते हैं हम एक चुलनी पोता धारक का कथन लिखित  
 लिखते हैं उस माफिक सर्व का कथन जानना. मंत्र वा भावा-  
 र्थ ॥ वानारसी नगरी का बाली चुलनी पोता धारक को पौष  
 में मिथ्या दृष्टि देखने में हमने को आया और बिकनाय रु  
 करके चुलनी पोता को फटा भी चुलनी पोता जो नृ अर्धे  
 नियम धर्म को नहीं छोड़ता तो मैं तो बड़े पुरु को नरे ना  
 पाव करके उसके बांन के तुले करके तेल में तलके तरे  
 छोड़ता निमते नृ अर्धे से नर जायेगा ऐसे कथन सुने  
 भी धारक बलापमान नहीं हुआ. बाली धर्म छोड़ना बंध  
 किया नर देखने से ही बाया दिखते फिर बड़े बड़े  
 वा दिखलाई फिर लघु से को ही ऐसी ही बाया दिख  
 पौषी बक इनकी अज्ञानता के सिंचे हवा सब उन  
 उत्पन्न हुआ और विद्या कि वा अर्धे कर्म बाया  
 इनको से एक मंत्र सेना का के उते सब देवता  
 आर्य होया और चुलनी पोता के पाप से  
 बाया उनका एकर ह बलापमान एकर जो मे  
 कर फिर कोनाय एकर का मंत्र से एकर बाया  
 काये नरे कि ॥ इत से बलापमान मन्त्र बला

दृष्टान्त कहा तब माता बोली कि हे पुत्र तेरे को विपरीत देव का दर्शन हुआ सो अब पाठ से कहते हैं.

मूत्र पाठ—एसखं, तुमे, विदरिसणे, दिडे, तएणं, तुमं, इयाणि, भग्गवया, भग्गणियमे, भग्गपोसहे, विहरसि ॥ इति मूत्रपाठ ॥

अस्य टीका—एतच्चत्वया विदर्शनं विरूपाकारं विभीषिकादि दृष्ट मवलोकित मिति भग्गवइति भग्नव्रतः स्थूलप्राणातिपात विरतेर्भावतो भग्नत्वात्त द्विनाशनार्थं कोपेनोद्धावनात् सापराधस्यापि व्रत विषयी कृतत्वात् भग्न नियमः कोपोदये नोत्तर गुणस्य क्रोधाभिग्रह रूपस्य भग्नत्वात् भग्नपोपधो व्यापार पोपध भंगात् ॥ इति टीका ॥

अथ टीकार्थ—ए जो तने विरूपाकार भयंकर डरावने वाला देखा इससे भग्नव्रत स्थूलप्राणातिपात की जो विरति यानि निवृत्तिपणा उसके होने में यानी स्थूल जीव का इनने का नियम तुम्हारे होने से उसको यानी माता का विनाश करने वाले पुरुष को विनाश करने वाले कोप से दौड़ने से अपराध करके सहित वह पुरुष था तो भी व्रत में कोप करने से ( भग्नः ) कोप का उदय करके उत्तर गुण जो क्रोध का दूर करने वाला नियम उसका भग्न होने से इनन व्यापार करके पोपा का भंग होने से इत्यर्थः इति टीकार्थः अथ देवों मूत्र में तो ऐसा मुलासा है कि चुन्नी पीता थावक को अत्यन्त क्रोध उत्पन्न होने से उस माता को विनाश करने वाला पुरुष को इनने को दौड़ें वो पुरुष अपराधी या तो भी पोपा में नहीं मारणा कल्ये और मारणे को उठे जिससे व्रत भांगा और तुमने लिये दिया कि जीवन



विषय तेरा व्रत भांगा यानी कर्तव्य करने से व्रत पाँपा भांगा ऐसा वेदंग ऊटपटांग अर्थ कहां से लाये. तुम्हारे भ्रम विध्वंसन के कर्ता ने भी ऐसा अर्थ नहीं करा कि जीवन विषय तेरा व्रत भांगा तो तुम क्या नवीन अलौकिक विद्वान उठे. बाहर भाई क्या तुमको कहें तुमने सिद्धांत विरुद्ध भाषण करने में पूर्ण कसर बांधी. परन्तु थोड़ासा तो इस लोक परलोक का भय रखो. यदि कोई पूछेगा कि ऐसा अर्थ कहां लिखा है तो तिस वक्त क्या उत्तर देवोगे. या इस असत्य अर्थ का फल हमको परलोक में कैसा होवेगा. बाहर भाई तुम्हारी समझ.

पूर्वपक्ष—क्रोध करके मारने को उठने से पाँपा भांगा. ऐसा अर्थ मूलपाठ से निकलता है कि नहीं.

उत्तरपक्ष—हे भाई मूलपाठ बोल रहा है कि महया २ सदेणं, कोलाहले कए ऐसा पाठ है कि मोटे २ शब्द से चुलनी पिया ने कोलाहल शब्द किया. यह तो स्पष्ट रीति से थोड़ासा समझदार भी समझ सकता है कि क्रोध आया बिना मोटा २ शब्द से कोलाहल शब्द करना कैसे होवे. तथा पुरुष के भरोसे स्थंभ पकड़ के कोलाहल शब्द करना कैसे होवे. तो निश्चय जानो कि यह तो सर्व काम क्रोध उत्पन्न होने से ही हुये हैं. सो ही मूलपाठ की टीका में लिखा है कि स्थूल प्राणान्तिपान की वृत्ति श्रावक के थी. और सापराधी को मारने की वृत्ति नहीं थी परन्तु चुलनी पियांजी पाँपा को हुये थे. अतः पाँपा में सापराधी को भी मारणा नहीं कल्पे. अतः चुलनी पियांजी माना को मारने वाला ऐसा सापराधी पुरुष को मारने को उठे उम

से उनका व्रत भांगा और पौषा में नियम या सो भी क्रोध करने से भग्न हुआ. ऐसे ही पौषा भी भग्न हुआ. सो ही मूत्र का सत्य अर्थ है. परन्तु जीवन विषय तेरा व्रत भांगा. यानी करुणा करने से व्रत नियम पौषा भांगा. ऐसा तो मूत्र अर्थ टीका में नाम मात्र भी नहीं है. तो तुम्हारा लिखना ऊटपटांग अर्थ कभी नहीं मिलता. और करुणा करके व्रत भंग कहना ऐसा है कि जैसे अमृत पीने में मरणा कहना तथा तुम हठ करके कहो कि माता की रक्षा करने से व्रत भांगा तो यह किसी प्रमाण से सिद्ध होता ही नहीं क्योंकि रक्षा तो दश ही श्रावण कुटुम्ब परिवार दास दामी आदिक के करते थे. तो फिर उन की रक्षा से व्रत क्यों नहीं भांगे कदाचित्त तुम व्रत भांगणे से एक पौषा ही भांगा कहो तो वह भी नहीं मिले. क्योंकि टीका में स्थूल प्राणानिपात वेग्मण व्रत का भंग हुआ लिखा है और मूल मूत्र में भी व्रत नियम और पौषा तीनों अलग २ क्रिये है और तीनों का अलग अलग भंग होना लिखा है. इससे व्रत भंग से स्थूल प्राणानिपात वेग्मण का ही ग्रहण होता है और स्थूल प्राणानिपात वेग्मण का भंग तो मारणे से ही होता है परन्तु रक्षा करने में कभी सिद्ध नहीं होता. वस सत्य तो यही है कि क्रोध वश हो के चुलनी पीताजी मारणे को उठे जिनसे ही उनका व्रत भांगा है परन्तु करुणा से नहीं. इति ॥

अब अच्छी तरह से विचारो कि तुम्हारी मूत्र की साक्षी बतलानी सर्व विरुद्ध है उमको हमने अच्छी तरह से प्रत्युत्तर में लिखी है मूलपाठ टीका टीपिकादिक में लिखी है. तो यह तुम्हारा जेम्ब है कि भाषका पत्र का उक्त तो हम मूत्रों का

प्रमाण देकर ऊपर लिखे आये हैं यह लिखना तुम्हारा है. परन्तु वह तुम्हारा सूत्रों का प्रमाण देना सिद्धांतों से अत्यन्त विरुद्ध है कई बातें तो सूत्र में हैं ही नहीं तो भी तुमने सूत्र का नाम लेके लिख दी. कई विरुद्ध लिखी. कई जिसप्रश्न का उत्तर से कुछ ताल्लुक ही नहीं. ऐसी सान्नी लिखी है. सो प्रश्नों का उत्तर तो एकभी नहीं आया है. किन्तु आलपाल है. तथा तुम्हारा लेख है कि धर्म को समझना यह काम बुद्धिमान विवेकी पुरुषों का है. यह बात हमने बहुत अच्छी समझी है इससे हम इन प्रत्युत्तरों में तुम्हारी तर्फ से पूर्वपक्ष उठा उठा के कथन विस्तार से किया है. सूत्र खुलासा किया है. सूत्र का पाठ अर्थ दीक्षा से प्रश्नोत्तर का प्रत्युत्तर लिखा है तिसको जेकर बुद्धिमान पुरुषों तुम धर्म के प्रेमी होवो तो अच्छी तरह से पढ़के सत्य धर्म की श्रद्धा को धारण करना चाहिये. यह ही आत्मा का परम कल्याण कारक मार्ग है. इतिश्री प्रत्युत्तर दीपिकायां सप्तम प्रश्नका उत्तर का प्रत्युत्तर संपूर्णम् ॥ ॥ श्री वीतरागो ज्ञाते इति सप्तम प्रश्न समाप्तः ॥ तथा प्रथम भाग संपूर्ण ॥ इत्त में भूल चूक रही होनी अनंत सिद्ध भगवान की साख से निच्छामी दुकड़ं है ॥

तेरापंधियों के दिये उत्तर विलकुल मिथ्या है  
 उसका १ दूसरे फरेक के साधुजी का किया  
 हुवा फैसला ।

॥ ॐ नमो वीतरागाय ॥ अत्र पाठक जन सज्जन पुरुषों  
 से वाइस समुदाय के थावकों का आग्विरी निवेदन है कि हमारे  
 सात प्रश्नों के उत्तर जो तेरेपंधियों की तर्फ से प्रश्नोत्तर नामक  
 पुस्तक में छपवाये हैं वह उत्तर सिद्धांत से विपरीत है. यानि  
 असत्य है निम्नका खुलासा वार सिद्धांत के मूलपाठ अर्थ टीका  
 दीपिका आदिक के प्रमाण से प्रकट इस पुस्तक में दिखलाया  
 है कि इस वजह से तेरापंधियों का उत्तर विपरीत है और तिसमें  
 भी विशेषता यह है कि तेरेपंधियों ने जो उत्तर दिये हैं तिसमें  
 सूत्र की साक्षियों केवल नाम रूप ही लिखी है तिसमें भी कई  
 एक साक्षियों में तो सूत्र का अन्वय ही नाम लिख दिया है  
 और हमारी तरफ से जो प्रत्युत्तर में साक्षियों दी है वह मूलपाठ  
 अर्थ टीका दीपिका का प्रकट लेख दिखलाया है. तिससे भव्य  
 जनों से और हमारे भिन्न तेरेपंधियों से कितने पूर्वक निवेदन है  
 कि हे भव्यों तुम पक्षपात छोड़ के मध्यस्थ दृष्टि से हमारे  
 प्रत्युत्तर को देख के विचारना कि तुम्हारा उत्तर का देना  
 सिद्धांत से विपरीत है कि नहीं और फिर एक प्रत्यक्ष प्रमाण  
 से विचारना कि जो तुमने प्रश्नोत्तर नामक पुस्तक में शुरू  
 शुरू पहिले प्रश्न का उत्तर में श्रीभगवान के चूकने के विषय  
 में लिखा है कि श्रीभगवान मद्रासिग ध्याणी ने दस स्वप्न देखे  
 वह स्वप्न भगवान का मादनी रूप के उदय में आये. तिससे



उसी माफीक लेख पर हस्ताक्षर करके सर्व सभा को डुट यानी खुलासा सुनाया. दोनों तरफ़ लेख लिख के दिये हैं तिसका संपूर्ण हाल सर्व जैतारन वालों को मालूम है सो जान लेना. और पक्ष छोड़ के विचारना कि जब तुम्हारा प्रश्नोत्तर का पहिला प्रश्नका उत्तर देना भी प्रत्यक्ष शास्त्रार्थ करके दूसरे फिरके के पंडित से भी हमने गलत कर दिया है. तो हे भव्यो ! अबतो तुम पक्ष छोड़ के विचारना कि पहिला प्रश्न का उत्तर जो तुमने दिया. वह असत्य यानी गलत होगया. तो अब आगे के प्रश्न के उत्तर सत्य कहाँ से होंगे. जैसे चाँवल के हंडे का ऊपर का कण कच्चा है तो फिर नीचे के चाँवल पके यानि सीजे कहाँ से होंगे. ऐसे ही आपने हमारे प्रश्नों का पहिला उत्तर भी गलत दिया तो आगे के तुम्हारे उत्तर सत्य कहाँ से हैं अपितु नही सो इस पुस्तक में अच्छी तरह से दिखलाये हैं. तिससे हमारा आप लोगों को हित दृष्टि से कहना है कि जो आप लोगों को संसार समुद्र दुःखों से पारावार करे ऐसा थी सर्वज्ञ वीतराग देव का प्ररूपा जैन धर्म तिसकी सत्य श्रद्धा को धारन करने की इच्छा होवे तो इस पुस्तक को सरलता से देखना और सत्य का धारन करना परंतु जो सत्य बातों को आप लोगों के हित के लिये यथा योग्य दिखलाई है वह आप के हित के लिये है. परन्तु आप लोग उस सत्य बात को उलटी समझ के हिन दृष्टि छोड़ के द्वेषभाव को प्राप्त मत होना. क्योंकि मथ-म तो जैनधर्म की यह गति नही है कि किसी को विरुद्ध वाक्य कहके रंज पहुंचाना. तो फिर आप लोग तो जैनी नाम धारक होने से हमारे प्रिय मित्र हो तो आपके लिये तो हम विरुद्ध

वाक्य कहें काहे को. परन्तु सत्य को सत्य और असत्य को असत्य कहने का तो धर्म का कायदा ही है. सो वैसेही इस पुस्तक में दर्शाया है. तिसपर भी आप को असह्य लगे तो हम अपनी तर्फ से तुमको चमाते हैं यानी चमा मांगते हैं ॥

### अथ दूसरा भाग ।

अब वाइस संभदाय की तर्फ से तेरेपंथी श्वेतांवरियों को विद्रित होवे कि हमारे सात प्रश्न का उत्तर तो तुम्हारी तर्फ से संतोष कारक कुछ भी नहीं दिया. सो हमने प्रत्युत्तर में दिखलाया है. अब हमारे सात प्रश्नों का उत्तर संतोष कारक नहीं दिया तथापि हमसे जो तुमने ऊटपटांग सात प्रश्न पूछे हैं उनका उत्तर देते हैं और यह भी दिखाने हैं कि तुम्हारा लेख तुम्हारी प्रतिज्ञा से भी कैसा विरुद्ध है सो प्रश्नकर्त्ताजी मध्यस्थ भाव से अवलोकन कर सत्य धारन करनाजी. प्रथम तुम्हारा प्रश्न पूछने की आदि में यह लिखना है कि हमारी तर्फ से यानि तेहरे पंथियों की तर्फ से आपही के प्रश्नों के यानि वाइस संभदाय के प्रश्नों के अंतर्गत हम प्रश्न पूछते हैं ॥

“समीक्षा” हे तेरे पंथियों जरा सोचना कि तुमने प्रतिज्ञा तो यह करी कि हम आपके प्रश्नों के अंतर्गत ही प्रश्न पूछते हैं और प्रश्न हमारे प्रश्नों से तुमने विलक्षण यानि और ही तरह के किये हैं यानि पूछे हैं तो हमको निश्चय हुआ कि तुम लोगों को सत्य असत्य उल्ट पलट अपनी प्रतिज्ञा में विरुद्ध लेख लिखने का भी न्वयान् नहीं कि अपनी प्रतिज्ञा तो किम प्रश्न पूछने की करी है और लेख में कैसा प्रश्न लिखते हैं तथापि न्व. हमने सोचा कि विपरीत ज्ञान का न्वभाव ऐसाही होना है अब तु-

मद्वारा प्रश्न और तुम्हारी प्रतिज्ञा से तुम्हारा पतित होना. तिसकी समीक्षा. और तुम्हारा प्रश्नों का उत्तर नीचे दिखाते हैं ॥

प्रश्न पहिला—छद्मस्थपने में नहीं चूकने का सूत्रपाठ आर लोग बतलावो—

समीक्षा—देखो भाई यह प्रश्न का पूछना तुम्हारा हमारे प्रश्न से विरुद्ध है. क्योंकि हमारा प्रश्न तो ऐसा था कि श्री भगवान् महावीर स्वामी को दीक्षा लेने के अनंतर छद्मस्थपने में चूके बतलाते हो सो सूत्र का पाठ दिखलावो. और अब आप लोगों ने प्रतिज्ञा तो हमारे प्रश्न के अंतर्गत प्रश्न पूछने की करी. और पूछा समुच्चय कि छद्मस्थ नहीं चूकने का पाठ दिखलावो. तो यह तुम्हारा तुम्हारी प्रतिज्ञा से पतित रहा है. क्योंकि हमारा प्रश्न का अंतर्गत प्रश्न तो ऐसा होता है कि महावीर स्वामी को दीक्षा लेने के अनंतर छद्मस्थपने में नहीं चूकने का पाठ दिखलावो सो ऐसा सीधा लेख को छोड़ के अपनी प्रतिज्ञा से पतित होके समुच्चय छद्मस्थ नहीं चूकने का प्रश्न करा तो निश्चय हुआ कि तुमलोक दंभयुक्त बातें लिखते नहीं करते हो परंतु तुम जैनी नाम धारक हो इसलिये ऐसा दंभ करना युक्त नहीं तथापि तुम्हारी मर्जी अब प्रश्न का उत्तर एकाग्र चित्त करके श्रवण करो—

प्रश्न पहिला का उत्तर छद्मस्थ जीव दो प्रकार के है एक तो वीतरागी छद्मस्थ. दूसरे मगगी छद्मस्थ, तिसमें वीतरागी छद्मस्थ तो इग्याग्में चाम्भे गुण स्थान वाले जीव है. और वह छद्मस्थ वीतरागी काट प्रकार का प्रायश्चित्त नहीं मंत्रते हैं तिससे उनका चूकने का तो नभाव है यह कथन सूत्र भगवती जी का अतक २५ मा उद्देशाद्वय में है अब ग्द मगगी छद्मस्थ. तिनके



तीनभेद, एक तो सराग संयति, यानी सरागी साधू दूसरे संय-  
ता संयति, यानी धारक, तीसरे असंयति, इनमें से असंयति के  
तो व्रत पचखाण्ड हैं ही नहीं, तिसरे उनका तो चूकते नहीं  
चूकते का कथन ही नहीं, क्योंकि चूकना नहीं चूकना तो, व्रत  
प्रत्याख्यान जाने को होता है, लोक युक्ति में भी जाने है कि  
पोड़ा आदि पे चढ़े तो पड़े, परन्तु बिन चढ़े पड़े, बसा, और  
जो संयता संयति धारक जन है, वह अपने नियम जानि व्रत  
प्रत्याख्यान जीतने लिये उस व्रतमें शुद्ध पाले तो, वह नहीं  
चूकते हैं, और जो व्रत को खंडन करते चूक भी जावे, और  
जो सराग संयती उद्भव्य मुनि हैं वह तीन प्रकार के हैं, एक  
तो स्थिरकल्पी, दूसरे जिन कल्पी, तीसरे कल्पातीत जिनमें  
स्थिरकल्पी, और जिनकल्पी मुनि तो, अपने कल्प के बाधक  
बने तो वह नहीं चूकते हैं और कल्प को उल्लंघन करे तो चूक  
भी जाते हैं, अब जो सरागी कल्पातीत उद्भव्य मुनि हैं वह नहीं  
चूकते हैं, क्योंकि वह मुनि कषाय कुशल ( निरपेक्ष ) निर्गुण  
होते हैं, और वह मुनि मूलमुख उदरमुख में दोष नहीं मन्नाते  
हैं इससे कल्पातीत सरागी मुनि का चूकना भी आत्मन प्रकाश में  
नहीं है यह कथन मूल अक्षरों का अर्थक मूल का उद्देश्य जो  
वे हैं ॥ अब विचारना चाहिये कि कल्पातीत मुनि नहीं चूकते  
हैं तो ध्यानवान ब्राह्मण स्वामी आ श्री शंका विवेक के अन्वय  
कल्पातीत मुनि ही हैं ॥ किन्तु उनका तो चूकने का कोई  
वकार से सम्बन्ध ही नहीं और और ध्यानवान ब्राह्मण स्वामी  
का अर्थकमूल से ना चूकने का अर्थक से सम्बन्ध ही नहीं का  
आत्मन प्रकाश का अर्थक से सम्बन्ध ही नहीं का अर्थक

भाउरी में माफ़ लिखा है कि श्री भगरान् महावीर स्वामी ने पाप करा नहीं. कमाया नहीं. करते को भला जाना नहीं. सो मूत्र पाउ लिखते हैं सो मुनिये ।

मूत्र गणमाणं मे, महावीरं, णोविय, पावणं, सयमहासी, अश्रेहिंसा, णरुगिथा, कीरंतेपि, शाणुं, जाणित्था. ॥ ८ ॥ तथा इमी उदेग की पनरमी गाथा का उत्तरार्ध में कहा है कि श्री महावीर स्वामी ने अश्रेय्य पने में एक वक्त भी ममाद कमाया-दिक पाप नहीं करा सो मूत्र पाउ लिखते हैं मुनिये. मूत्र-उत्त-मन्धेरे, परिक्कममाणे, नांपमायं, मयंपि, कुञ्चित्था, इति. इनका अर्थ और इन पाठों के ऊपर तुम्हाग कोणीक राजा का भ्रामण लेना. उन सब को मूत्र के मूत्र पाउ सहित बहुत पूरेपक्ष और उत्तर पक्ष के साथ पहिले वाम में प्रथम पक्ष का उत्तर का प्रत्युत्तर में लिखा है सो. यदि भाव लोग श्री धीरय्यु के नीचे चूड़ने का बकट मिट्टान का पाउ को नहीं मानेंगे तो. हमनाथ सबकेगे कि इन तीनों के मन्थ मोदिनी कर्म का उदय भार हो रहा है निमम श्री धीरय्यु की आजातना करने नहीं करने है. परन्तु है मन्थ कर्माती जग मन्थभार प्रदण करके मन्थपक्ष की पारथा करना सो ।

वन्न इमं नदगोवयो का पुरभी प्रमेजनी इवनी मन-निनी इन्हा दान दान में कर्त्तव्य इसे करने हो सो पाउ लिखजाती.

मन्थिना यह वन्न की पुत्र ने तुम्हागे बलिष्ठा मे विक्रम लिखा है इतोह इनाम वन्न वा यह पाउ कि मानु के मिहाय दान में कर्त्तव्य पाउ इन्हाके हो सो मूत्र का पाउ लिखजाती

यह हमारा प्रश्न था और तुमने प्रश्न कुछ उल्टा ही किया है। और इस प्रश्न में तुम्हारा लिखना है कि असंयती अत्रती अन्य तीर्थों को दान देने में एकांत धर्म कहते हो तो यह तुम्हारा लिखना स्वकपोल कल्पित मनमते का है क्योंकि हमारा असंयति अत्रती का दान देने में एकांत धर्म है ऐसा एकांत मानना हमारा नहीं है तिससे यह प्रश्न का पृथक् तुम्हारा उल्टा है अब असंयति अत्रती का दान का कथन जैन सिद्धांत में है तैसा हम दिखलाते हैं।

प्रश्न दूसरा का उत्तर—गृहस्थों असंयती अत्रती अन्यतीर्थों इनको दुत्ती भुत्ती देत्व करुणा भाव से जो कोई दातार दान देवे उसमें एकांत पाप नृत्र में कहाँपि नहीं कहा है तिससे इस दान का साधु निषेधना या स्थापना नहीं करते हैं क्योंकि मिश्र पत्र पुन्य पाप का सञ्जाव होने से मुनि को मौन रत्तणी कहाँ है। और जो इसका दान को निषेध करे तो नृत्र प्रश्न व्याकरण का दूसरा आश्वर द्वार में झुंड बोलने वाला कहाँ है तिसका सविस्तार कथन प्रश्नोत्तर के तौर से हमने पहिले भाग में दूसरा प्रश्न का उत्तर का प्रत्युत्तर में लिखा है और जो तुम भगवतीजी नृत्र का आडवां शतक का द्वया उद्देश का नाम से के कहते हो कि असंयति अत्रती को दान देने में एकांत पाप है तो नृत्रों से अनभिद्रपने का है क्योंकि वहाँ तो अन्यतीर्थियों के गुरु जो कुपंथ उपदेश देके कदाग्रह में डाले उनको मौन के निमित्ते गुरुवादि से प्रतिलाभे उनका कथन है परन्तु करुणा कर्मके देने का निषेध या एकांत पाप का कथन नृत्र में नहीं

है वहाँ मूत्र का अर्थ में और टीका में इस विषय की यह गाथा लिखी है ध्यान लगा के सुनो.

गाथा-मोकवत्थं, जेदाणं, तंपइए सो विही, मसार, अणुहंभा, दाणं, पुणं, जिणेहिं, नकयाइ, पडिसेदंति, इति ॥१॥

इस भागम प्रमाण से अनुकंपा करके देने का निषेध कोई भी जिनगात्र ने नहीं किया है तिससे हमारा तुमसे कहना है कि हमें मियो जिनन्द्र देव की आज्ञा का खंडन करके साधु भिवाय दान देने में एकांत पाप की प्ररूपणा करके जैन सिद्धांत का नाम ले के धर्म की निंदा मत कराओ यह भाष लांगों में हमारा हित पूर्वक निवेदन है और इस विषय का बहुत सुलामा पहिले भाग में दुमरा प्रत्युत्तर में सविस्तार कहा है तिसको अवलोकन करके मन्व बात की धारणा करना.

प्रश्न तीसरा नेहंगंधियों का क्यालीज दूषण यज्ञ के आहार के मोती पादिवासी उच्छृष्ट आरक वरसी को ४२ दूषण यज्ञ के देते वाले का क्या दूषण अभ्यागत को दान देने में एकांत धर्म कहते हो या मृगयाउ दिग्गजासो.

सर्वादा यह प्रश्न करना तो अत्यन्त शान्धार विवेक शून्य पने का है कि तो क्यालीज दूषण यज्ञ पादिवासी उच्छृष्ट आरक को दान देना और दूषण अभ्यागत को दान देना दोनों को एकांत धर्म में पानी एक मरीचे कहना अज्ञान का है सो तुमने लिखा है पर जेस निग्र राज्या हि दोनों को देने में तुम एकांत धर्म कहते हो सो एकरा निश्चय दूरा हि नेहंगंधियों का हिमा का नाम का प्ररूपणा जस जिनके का अब नहीं. वरन् मोकवत्थं का वाक्य है कि पादिवासी उच्छृष्ट

क में और दुबले भिखारी दोनों का आचार में अत्यन्त  
 है पड़िमाथारी तो मोड़ के निमित्त क्रिया करता है और  
 का आराधिक भी होता है और मंगता को फक्त पेट के  
 लिए प्रलाप करता है. तो इन दोनों का दान एक सरिता  
 शानी के सिवाय दूसरा कोई भी नहीं कहे यह तो अम्व  
 ला आप तरेपंथियों के मत की है. कुपात्र वेड्या चोर को  
 ना और पड़िमाथारी श्रावक को देना इन दोनों में एकांत  
 प कहते हो. अब हम पड़िमाथारी श्रावक का दान और दु-  
 बले अभ्यागत का दान का निर्धार नूत्रोक्त उत्तर में दिखलाते  
 हैं सो श्रवण करो.

उत्तर प्रश्न तीसरे का—पड़िमाथारी श्रावक को तो श्रीभ-  
 गवान ने साधू सरिता धर्म पालने वाला कहा है नूत्र दशा  
 धुतस्कंध का अध्ययन छटा में सो नूत्र पाठ लिखते हैं.

नूत्र—जे, इमे, समणाणं, निगंधाणं, धम्मपएणत्ते, तं, सम्मं,  
 काएणं, फासिमाए, पालेमाए इति नूत्रपाठ ॥

इस नूत्रपाठ में इग्वारमी पड़िमाथारी श्रावक को साधू  
 समान वृत्ति पालने वाला कहा है तो अब आप समझ सके  
 हो कि जैसा पात्र को दान देवेगा वैसा देने वाला दाता को  
 फल होवेगा तो साधू सरिता धर्म पालने वाला पात्र श्रावक  
 को जो दाना फानुक एषणीक दान देवेगा तो देने वाले को  
 फल भी साधू सरिता होवेगा यह तो स्पष्ट सिद्ध है. तो हिं  
 इममे वद के आगम का प्रमाण क्या चाहें हो हिं इन्द्रा  
 विभेष अधिकार इमने पाइले भाग में तानंग नन्धुत्तं मे लिन्दा  
 है इमको देन्व के धट्टा शुद्ध वरणा जो और दुबले भिखारी

को देने में तो करुणा दान तीर्थकर ने मूत्र स्थानांगत्री के द-  
शों ठाणों में कहा है और करुणा अनुकंपा दान का निषेध  
कोई भी अरिहंत परमेश्वर ने नहीं करा है ऐसा प्रमाण हमने  
मूत्र भगवतीजी का शतक ८ मा उद्देश्य छत्रा की साची बतलाई  
है सो पहिले भाग में दूसरा प्रश्न का उत्तर में या दूसरा प्रत्यु-  
त्तर में देख लेना ॥

प्रश्न-चौथा तेरेपांधियों का । किसी मनुष्य को किसी मनु-  
ष्य ने कामी दी, किसी मनुष्य ने खोल दी, तुम उसमें धर्म  
करते हो सो पाठ दिखलाओ ॥

“ सर्मावा ” यह प्रश्न भी तुमने छल रूप पूछा है, क्योंकि  
तुम उसमें धर्म करते हो ऐसा गोलमाल ही लिख दिया है,  
परन्तु क्या हम धर्म फासी खोलने वाले को कहते हैं कि देने  
वाले को हा हा यह छल तो आप लोग मूर्खी सींगे हो परन्तु  
हमारा मिर्दानों की राह में मानना ऐसा है कि कोई दृष्ट पुरुष  
हिमा भादमीको फामा देवे, और कोई दयारान् पुरुष उसकी  
फामा खोल देवे, तो उस खोलने वाले पुरुष को धर्म हों,  
परन्तु पाप नहीं, इस का प्रमाण भाग्य की माधी मति उन  
नौचे लिखने हैं ॥

प्रश्न-चौथे का उत्तर ॥ मिर्दान भी उपाध्यायन जी का  
साईमरी अध्यायनमें कहा है कि श्री साईमरी तीर्थकर नेमानाथ  
जो महाशय ने बहुत से पत्रों को साई व श्री साईमरी व  
उसी तीर्थों को गोकुल दूरे दूरे उन तीर्थों का प्रमाण पानी पान  
होना जान के उनका माग्ने व उपाध्याय व तीर्थ साईमरी का

जीव छोड़ने का जीव वचाने का इनाम में अपने आभूषण यानी गहरे दिने सो मूत्रपाठ लिखते हैं ।

सो, कुंडलाख, जुयलं, मुचगं, च, महायसो, आभरणा, लीय, सञ्वाणि, सारहिस्त, पखामए ॥ २० ॥

इसका अर्थ पाई टीका दीपिका अवचूरिका के अनुसार लिखते हैं ॥ वह नेमिकुमार बड़े यज्ञ के धारण करने वाले ने-मिनाथ के अभिषेक से सम्पूर्ण जीव वंश से छूट गए तब सं-पूर्ण आभरण सारथी को देते हुए कौन से वह आभरण हैं. कुंडलों का जोड़ा, फेर कंडोरा, चकार शब्द से हारादिक जो सम्पूर्ण अंग उपांग के भूषण हैं वह भी सारथी को देते भए इति. इनकी मूलपाठ. टीका अवचूरिका दीपिका देखना होवे गो बहुत विस्तार से हमने पहिले भाग में पंचम प्रश्न का प्रत्यु-त्तर में कथन किया है वहां से देख लेना. और जो तुम्हारे गुरु जीतमलजी का बनाया भ्रमविध्वसन में लिखा है कि दीपिका में जीवों के हितवान् नेमीनाथजी यह कथन नहीं चला है. और नेमीनाथजी ने जीव नहीं छोड़ाये ऐसा लिखा है. तिसपै हमने दीपिकादिक का लेख सहीज सिद्ध किया है कि श्री नेमीनाथजी का जीवों पर हित करना और जीवों को छोड़ना मूलमूत्र और दीपिका टीका अवचूरी से तुलना किया है. उसको देख के हे भव्यो ! हृदय के ज्ञान नेत्र नोन् के विचार पूर्वक देखना. और ज्ञान से नोन्ना कि श्री नेमीनाथजी महागज ने पशु पक्षी को छोड़ाने में भी धर्म माना है निम्ने पशु पक्षी छोड़ने का ही इनाम दिया है. तो फिर सर्वोन्कृष्ट मनुष्य प्रगीर को फानी में वचाने में तो धर्म हीज है इसमें संदेह ही क्या है. निम्ने हे प्रश्न





प्रश्न छद्म तरेपंधियों का-असंजती को पोपने में पोपाने में पोपते हुए को भला जानने में धर्म कहने हो सो मूत्र का पाठ दिखलाओ ॥

समीक्षा-इस प्रश्न में तो तुमने सतरमा पाप की जिसका नाम मायामोषा है, उसको अग्रेसर करा है, क्योंकि हमारा तो कहना यह था कि असंयत्ति पोषणिया पंदरमा कर्मादान कहने हो सो पाठ दिखलाओ ॥ और तुमने प्रश्न तो हमारा प्रश्न के अंतर्गत प्रश्न करते हैं ऐसा कहा है, और प्रश्न करा ऐसा कि जिसको हम एकांत कहते भी नहीं है यानी असंयत्ति को पोषण में एकांत धर्म है, ऐसा एकांत कहना भी हमारा नहीं, तो फिर तुम लोगों ने असंजती को पोषण में धर्म कहते हो ऐसा अच्छता लेख क्योंकि लिख दिया, परन्तु हमने सांच लिया कि हमारे तरेपंधी भोले मित्र इस लोक परलोक का भय छोड़ के मनमाने जो अडंगा लगा देते हैं परन्तु असंजती का पोषण का निर्णय धवण करो ।

प्रश्न छठे का उत्तर- असंजती को पोषण दोषकार का है एक तो अपने स्वार्थ के वास्ते, तिससे जो कोई स्वार्थ के वास्ते असंजती जीव को पोषे, उसमें तो धर्म नहीं, परन्तु मोह ममत्वा-दिक करने से कर्मबंध का कारण है, उसमें पाप में है, दूना कोई गर्ब दुर्वा भुवा अभ्यागत को, गरी आदिक देवे, वह करुणा दान में है तिस का विशेष खुनाया हमने प्रथम भाग में दूना प्रश्न का उत्तर में या दूना प्रत्युत्तर में बहुत विस्तर पूर्वक कथन करा है, उसको देव के शुद्ध श्रद्धा धारण करना सी ।

प्रश्न मानमा तरेपंधियों का असंयत्ति का असंयम जाचिनव्य



अर्थ-फ़ामुक निरदोष आहार भोगवतो यको साधु आत्म-धर्म नहीं उलंघे आत्मधर्म नहीं उलंघतो यको पृथ्वी काय अपकाय तेजकाय वाजकाय, वनस्पति काय त्रसकाय के जीवों का जीना बाँडे ।

अब विचारिये के ब्रह्माया का जीना बंछना कहा तो पृथ्वी आदिक से त्रसतक सर्व जीव संजती तो नहीं है इसलिये असंयति का जीना बंछना मूलपाठ में कहा है. अब भी आप लोग नहीं मानोगे तो मोहनी कर्म का उदय है इति दूसरा भाग संपूर्ण इस पुस्तक में भूल चूक रही हो तो अनंत सिद्ध भगवंत की साख से मिच्छामि दुःख है ॥

### पाठकों को सूचना ।

इस पुस्तक के प्रूफ सुधारने में भूलें रही हो तो पाठकगण चमा प्रदान करें और इस पुस्तक को यत्नपूर्वक पढ़ें. दीपक के सजियाले में नपढ़ें ।

प्र० कर्ता.

## सूचना ।

२२ समुदाय के श्रावकों को सूचना दी जाती है कि हमारे यहां २२ मूत्र मांडिले मूत्र और पात्रे जो कोई दीक्षा लेने वाला हो उसको बिना मूल्य लिये ही दिये जाते हैं जिस जगह दीक्षा लेने वाला हो और इन चीजों की जरूरत हो तो गांव के अग्रेसर आदमियों के हाथ की चिट्ठी हमको देने से हम भेज देंगे सर्व वार्ता ब्यारेवार लिखें अर्थात् किस साधुजी वा महासत्यांजी के पास दीक्षा लेने वाला है तथा कब की दीक्षा है इत्यादि लिखें.

पता—पेमराजजी हजारीमल बांडिया,

मुहाम भीनामर पो. बीकानेर ( राजपूताना )

## सूचना ।

नीचे लिखी पुस्तक नीचे लिखे पते पर मिलेगी जिसको जरूरत हो मंगा लें. बिना मूल्य वितरण होती है.

१ गुणविलास २२ समुदाय.

२—सर्वथा अंत कुंडलियां कृपागमजी महाराजकृत.

३ सत्य मिथ्याथ निर्णय दो भाग श्री रामचन्द्रजी महा-  
राजकृत

४ प्रश्नोत्तर समीक्षा.

५ प्रश्नोत्तर दीपिका श्री नुवारीलालजी महाराज कृत.

पता—रुनागंम बांडिया मंत्रेटी जैन भंडार

मुहाम भीनामर बीकानेर ( राजपूताना )

## जीव दया का स्तवन ।

दया को पाले है ज्ञानी दया में नहि समझै मानी ॥ टेर ॥

प्रथम श्री ज्ञाता नृत्र माहीं, लगी दब वन में भाई ।

पशु सर्व रहे घबड़ाई, दया दिल हाथी के आई ॥

दोहा—इस करनी परताप से, पायो समकित सार ।

श्रेष्ठिक राजा के घर जाया, श्री श्री मेघकुमार ॥

श्रद्धी है वीर तनी बानी ॥ दया० ॥ १ ॥

दूसरा श्री मेघरथ राया, परेवा सरने में आया ।

बाज लारे से चल धाया, भक्ष पेरा दो महाराया ॥

दो०—मास अपना काट काट के, धरा तराजू मांय ।

दैवयोग नहीं उठा पालना, जब शरीरी दिया चढ़ाय ॥

हुए श्री शान्तिनाथ दानी ॥ दया० ॥ २ ॥

तीजा श्री नेमिनाथ स्वामी, जान चढ़ आए अंतर्यामी ।

हिंसा बहु पशुओं की जानी, छोड़ाया पशू दया आनी ॥

दो०—जियेहेउ पाठ है, सोचो दिल के मांय ।

मनुष्य जमाग पा के, प्यारों दया रखवो दिल मांय ॥

दया सर्व धर्मों में मानी ॥ दया० ॥ ३ ॥

चौथे धर्मरुची मुनिगया, पागना माम ग्वमण भाया ।

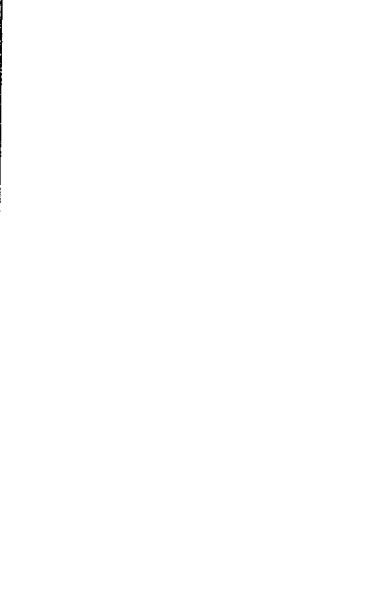
नाग श्री नृंबा रंगया, मुनीश्वर पगडण सिद्धया ॥

दो०—एक टोपा नाखिया, कीडियां आई असंख ।  
 निर्वध कोठा अपना जानके, किया आहार निशंक ॥  
 पधारे स्वारथ सिध खानी ॥ दया० ॥ ४ ॥  
 पंचम श्रेणिक नरेसर जाण, किया नही नाँकारसी पचखाण ।  
 धजाया अमरपड़ा गुणखान, बांधिया गोत तीर्थकर पिदान ॥

दो०—आवती चौबीसी ने विषय, होसी वीर समान ।  
 चारोहिं तीर्थ थापके, सिरे पासी मोक्ष सुधान ॥  
 दया धर्म सब में अगवानी ॥ दया० ॥ ५ ॥ .  
 ऐसे बहु हुए है अवतारे, जिन्होंने दया को दिल धारे ।  
 निपेधे दया जो हत्यारे, सहेंग जमों की मारे ॥

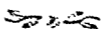
दो०—कर्म छोड़ेंगे नहिं, परसो धर्म मुजान ।  
 कंनौराम कहे मूत्र देख के, करलो सुगुरु पहिचान ॥  
 दया से तिरें ई बहू प्रार्थी ॥ दया० ॥ ६ ॥







## इस पुस्तक का शुद्धाशुद्ध पत्र ।



पाठकगणों ! प्रथम निम्नलिखित अशुद्धियों को सुधार में फिर यत्ना से पढ़ें अबकी प्रकृति नहीं शोधने के सबब तथा थीं भी कई कारणों से अशुद्धियाँ बहुत रह गई तथा पदच्छेदन बहुत गलतियाँ रही हैं इस कारण ज्ञान करे अबकी दूसरे संस्करण में जहाँ तक हुआ शुद्ध कर द्वापेंगे अशुद्धियों को ध्यान में न रख विद्वत् पुरुष आशय का ही ग्रहण करे ।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१७=	४	पदिमा	पड़िमा
„	१६	पालक	पालके
„	२०	थोडे	थोड़े
१७६	१	था, जिससे	था, कि जिससे
„	२१	०	पूर्वपक्ष-इसने आनंदजी के
		के आगे	असंयति अतिरति तरास
			कहाँ लिखा है
„	„	नवप	नवमा
१=०	१७	उगाड़ी	उगाड़ी
१=१	६	अथमी	अथमी
„	१०	संनारी तुम्हारे	संनारी नारीं तुम्हारे
१=२	४	उत्पत्तंग	उत्पत्तंग
„	१=	। जेनिरहु ।	जधिरनु

१=३	२	का तो	को तो
१=४	७	उसका तो	उसको तो
१=४	१६	येहमाणे	येपहमाणे
"	२०	उद्दभु, पायरिएजा	उद्दहु. पाएरिएजा,
"	"	साहदु, पायरिएजा	साहद, पाएरिएजा,
"	२४	सागण	समण
१=५	४	वतो	वतो
"	"	उद्दभु	उद्दहु
"	५	व इन्दी	वेइन्दी
"	७	चालह	चाले
"	१०	झानइमाग्रिचाल	झनइ मार्गचाल
१=६	४	क	क
"	१५	संभव	संभव
"	२०	वालो	वाल
१=७	११	दनेवाले बहुत मे	दनेवाले बहुत मे
"	१२	को भगवान	को भगवान
"	१५	मय्यस	मय्यस
१=८	२४	भव	भट
१=९	७	मातु	मातो
"	=	हुवा	हुवा
"	११	पदन	पदाने
"	१६	न	के
१=१०	१२	मे वारन	मे वारने
१=११	१६	वध शीमना है	वध शिद्ध शीमना है

१८२	२२	चढ़	तथा
१८३	२३	होता है	होती है
१८४	६	निग्रयंचलं	निग्रयंचलं
"	१२	सर्व सर्व	सर्व
"	१५	नौ	नौ
"	१५	इला	इला
"	१६	अपराधी	अपराधे
"	१८	पाये	पाये
"	२३	ने	नो
१८८	=	हो	हो
"	१३	उत्तराने	उत्तराने
"	"	काटने	काटने
२००	१	कोड़ा	कोड़ा
"	३	कपाडी ने पट्या	कपाडी ने पट्या
"	६	होवे	होवे
२०७	४	जेभिरु	जेभिरु
"	८	"	"
"	११	विहार भूनिवा	विहार भूनिवा
"	१२	जेभिरु	जेभिरु
२०५	८	आन	आर रुप
२०६	२०	माधुरता	माधुरता
२०८	२२	गुल . ने आने	अननेदन जहां नह बने वहां
२१०	७	हो	नह करे नो, उनहो नो गुल
			हो

२१३	४	जाणते है	भला भी जाणत हो
२१४	८	उलंघ	उलंघ
"	१७	जेभिणु	जंभिवणु
"	२०	बंधतंवासाइजेइ	बंधंतंवासाइजेइ
"	"	जेभिणु	जंभिवणु
"	२२	"	"
२१५	७	अनुकंपा अर्थ	अनुकंपा का अर्थ
"	१८	मुजपासएणवा चम-	मुजपासएणवा कट्टपासएण-
		पासएणवा,	वाचमपामएणवा
२१६	६	है	है
२१७	२	करणा	करणा
"	६	अवएवखइ	अवएवखइ
"	१६	कों	कों
२१८	५	तुम्हार	तुम्हार
"	१३	उसकी	उसको
२१९	१	भिवणु	भिवणुं
२२०	२१	हानी	हानी
२२३	७	वाहिविणी	वाहिविणी
"	१४	लज्जणा	लज्जण
"	२१	कारण	कारण
२६५	२	मिद्दांत में	मिद्दांत में नहीं कहा है न कहीं प्रायश्चित्त कहा है यांइ
"	"	कावृणय	कावृणया
"	६	वपण	वपण

२३ = ३३  
२४ = ३४  
२५ = ३५  
२६ = ३६  
२७ = ३७  
२८ = ३८  
२९ = ३९  
३० = ४०  
३१ = ४१  
३२ = ४२  
३३ = ४३  
३४ = ४४  
३५ = ४५  
३६ = ४६  
३७ = ४७  
३८ = ४८  
३९ = ४९  
४० = ५०  
४१ = ५१  
४२ = ५२  
४३ = ५३  
४४ = ५४  
४५ = ५५  
४६ = ५६  
४७ = ५७  
४८ = ५८  
४९ = ५९  
५० = ६०  
५१ = ६१  
५२ = ६२  
५३ = ६३  
५४ = ६४  
५५ = ६५  
५६ = ६६  
५७ = ६७  
५८ = ६८  
५९ = ६९  
६० = ७०  
६१ = ७१  
६२ = ७२  
६३ = ७३  
६४ = ७४  
६५ = ७५  
६६ = ७६  
६७ = ७७  
६८ = ७८  
६९ = ७९  
७० = ८०  
७१ = ८१  
७२ = ८२  
७३ = ८३  
७४ = ८४  
७५ = ८५  
७६ = ८६  
७७ = ८७  
७८ = ८८  
७९ = ८९  
८० = ९०  
८१ = ९१  
८२ = ९२  
८३ = ९३  
८४ = ९४  
८५ = ९५  
८६ = ९६  
८७ = ९७  
८८ = ९८  
८९ = ९९  
९० = १००

हैं  
विक्रम नहीं डरने हैं  
विक्रम

उत्तर. विद्या

उत्तर. विद्या

अंगीय

अंगीय

निर्दोष. उत्तर

निर्दोष. उत्तर

उत्तर

उत्तर

अंगी-अंगीय

अंगी-अंगीय

उत्तर

उत्तर

( गणपति )

( गणपति )

उत्तर

उत्तर

( गणपति )

( गणपति )

निर्दोष. उत्तर

निर्दोष. उत्तर

उत्तर

उत्तर

उत्तर

उत्तर

उत्तर

उत्तर

उत्तर

उत्तर

उत्तर

उत्तर

उत्तर

उत्तर

उत्तर

उत्तर

उत्तर

उत्तर

उत्तर

उत्तर

उत्तर

उत्तर

उत्तर

११	१०	निर्षेन्	निर्षेन्
११	१२	साथ	सार्थ
११	१४	अतिशयेन	अतिशयेन
११	१५	निषन्त्रणा	निषन्त्रण
११	१८	कीदृशी	कीदृशी
२४६	१	श्रवणानंतरं	श्रवणानंतरं
११	४	स	से
११	८	हणः	हणः
२४०	४	कंह	कंह
२४४	४	दवाधे	दवाधे
११	१०	जीव	जीव
२४६	७	मूल	मूल
२४७	३	का पस्तर	का पृथे पस्तर
२४८	६	वीथ	वीथ
११	७	भृष	भृषा
११	२०	रम्यण	रम्यण
११	२०	कृद्धिय	कृद्धियं
२६१	२३	कृष्ण	कृष्ण
२६२	२	लक्ष्या परिणम	लक्ष्याःवन परिणमे
२६४	१०	नदी दना घात	नदी दना घात
२६६	२०	घात	घात
२६७	१	पथ	पथ
२७०	७	पथ	पथ
२७३	१०	घात	घात

२७६	१०	उद्देश	उपदेश
"	१४	से बाढ़ना	से टूँप बाढ़ना
२७८	६	को ही	की ही
"	१७	पाप पाठ	पाठ
२७९	२२	कहायो	कयाँ
२८०	१६	रत्नण	रत्नण
२८१	६	"	"
"	७	"	"
"	=	"	"
२८२	१२	पावे	पीवे
२८५	१३	दब	दब
२८७	१३	उत्तपत्त	उत्तरपत्त
२८९	१०	होत्या	होत्या
२९०	१	हुवा	हुवा
२९३	८	सुपाडिया	सुपाडिया
२९७	१०	मिध्यात्व	मिध्यात्व
३१०	५	नहीं	नहीं तो
३१७	५	संसपडगे	संसपडगे
"	८	जीव की	जीव का
३२१	=	( माहणे बा.	माहणे वा
३२७	१८	करता	करना
३२८	१३	दुइस्तवा	दुइस्तवा
"	१४	रायंत	रायंते
"	२६	दुभिंचा	दुभिंच

३३०	५	गिण्डनिगांधी	गिण्डनिगंधी
३३१	१६	अणुसणा	अणसण
३३२	२३	है	है
३३४	१७	दिये	दिया
३३५	४	अथ	अर्थ
,	१६	देवने	देव ने
३३६	१३	भग्नघ्न	भग्नघ्न
३३७	२१	पियाजी	पियाजी
३३८	१०	आदिक रु	आदिक की
२४४	३	सुत्रपाठ	सुत्रपाठ
३४५	=	प्रत्याख्यान	प्रत्याख्यान
३४८	७	इ	इ
३४९	३	मगता '।	मगता तो
३५१	१	आनमण	आनमण
३५२	१=	बाइ	बाइ





